शिक्षा के नये उभरते क्षितिज

(The New Horizons of Developing Education)

डॉ० जमनालाल वायती
एम ए एम एड, साहित्यरत्न,
ए एन आई ई, पी एच डी, आर ई एस

राजस्थान प्रकाशन
त्रिपोलिया बाजार
जयपुर–2

प्रथम संस्करण 1977]   [मूल्य 10 रुपये

लेखक की अन्य रचनाएँ

1 बालकों की सामान्य समस्याएँ, (राजस्थान प्रकाशन, जयपुर)
2 शक्षिक विचार, (कल्पना प्रकाशन, बीकानेर)
3 नैदानिक परीक्षण एवं उपचारात्मक शिक्षण
(राजस्थान प्रकाशन, जयपुर)

प्रकाशक राजस्थान प्रकाशन, जयपुर-2
लेखक डॉ० जमनालाल बायती
पुस्तक शिक्षा के नये उभरते क्षितिज
प्रकाशन वर्ष जनवरी, 1977
मुद्रण मॉडर्न प्रिण्टर्स, जयपुर 3
मूल्य दस रुपये मात्र

आमुख

श्री वायती शिक्षा जगत के सुपरिचित लेखक है। इनकी नई पुस्तक शिक्षा के नये उभरते क्षितिज' इस शृंखला मे एक नई कडी है। विद्वान लेखक ने शिक्षा के अनेक महत्वपूर्ण प्रसगो पर अपने दृष्टिकोण से विचार किया है। ये प्रसग यद्यपि बहुचर्चित है तथा इन पर पर्याप्त गोष्ठिया आदि हो चुकी हैं, किन्तु फिर भी लेखक का विश्लेषण अपना निजी है और एक नए रूप मे इन्हे सवार कर रखा गया है। शिक्षा के क्षितिज पर जिन प्रसगो को उभरता हुआ बताया गया है उनमे से शिक्षा का अर्थशास्त्र, ब्रेन ड्रेन, शैक्षिक-प्रशासन मे निर्णय प्रक्रिया आदि अपेक्षाकृत नए हैं और विशेष उल्लेखनीय हैं। शिक्षा से चिर सम्बद्ध विषय जैसे अपव्यय, शैक्षिक नियोजन, अवकाश के लिए शिक्षा आदि मे समस्याओ का जो विश्लेषण किया गया है वह बहुत उपयोगी है तथा लेखक की अन्तर्दृष्टि का परिचायक है।

पुस्तक वस्तुत शिक्षा के विभिन्न प्रसगो पर लिखे गए विवेचनात्मक निबन्धो का सग्रह है जो शिक्षा के क्षेत्र मे कार्यरत शिक्षको के लिए अथवा विद्यार्थियो के लिए बहुत उपादेय है।

जगन्नाथसिंह मेहता
शिक्षा आयुक्त एव शासन सचिव
राजस्थान

जयपुर
दिनाक २३ नवम्बर, १९७६

आलेख

श्री जमनालाल बायती राजस्थान के एक होनहार व उत्साही शिक्षक व शिक्षाविद् हैं। उन्हें शिक्षा के आर्थिक आधार व उस क्षेत्र से सबंधित विषयों में रुचि रही है। समय समय पर उनके लेख विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में देखने में आये हैं। उनमें नवीनता, जागृति, सिद्धान्त व व्यवहार के सम्बन्ध की झलक मिलती है। प्रस्तुत पुस्तक में उनके चुने हुए सोलह लेखों को सकलित कर प्रस्तुत किया गया है। मुझे आशा है कि शिक्षक प्रशिक्षणालयों के शिक्षक व छात्र तथा शिक्षा की वर्तमान महत्त्वपूर्ण दिशाओं में रुचि रखने वाले सभी व्यक्तियों के लिए यह प्रस्तुत उपयोगी व सामयिक सिद्ध होगी। मैं उनके इस प्रयास की सराहना करता हूँ।

(डॉ०) सत्यपाल रुहेला

9 दिसम्बर, 1976

रीडर (शिक्षा समाजशास्त्र)

जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

आभार प्रदर्शन

प्रस्तुत पुस्तक मे सम्मिलित उच्च शिक्षा सम्बन्धी 18 स्फुट रचनाओं मे से सम्प्रेषण प्रणाली एव शिक्षा प्रशासन, शिक्षा प्रशासन मे मानवीय सम्बन्ध, सामायिक और विशेषज्ञ शिक्षा प्रशासक तथा राजस्थान के शैक्षिक कार्यक्रमो मे नवाचार को छोड कर शेष अध्याय विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित हो चुके है। इन रचनाओ को पुस्तकाकार मे पुनर्मुद्रण हेतु कृपापूर्वक स्वीकृति देने के लिए विभिन्न पत्र पत्रिकाओ के सम्पादको को धन्यवाद है। यथा राजस्थान बोर्ड जनरल ऑफ एजूकेशन, अजमेर, भारतीय शिक्षा, लखनऊ, योजना, नई दिल्ली, राजस्थान गाइडेस न्यूज लेटर, बीकानेर, जन शिक्षण, उदयपुर, लोक प्रशासन, भोपाल, साहित्य परिचय आगरा नया शिक्षक, बीकानेर, आर्थिक जगत, कलकत्ता, हिमप्रस्थ, शिमला।

इन रचनाओ को पुस्तकाकार मे सकलन करने के पूर्व इनमे सशोधन एव परिवर्द्धन की दृष्टि से सर्व श्री विपिनविहारी तथा श्री अवधविहारी वाजपेयी से मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। उनके रचनात्मक सुझावो से पुस्तक की उपयोगिता मे वृद्धि हुई है। लेखक उनको हृदय से धन्यवाद अर्पित करता है। डा० सत्यपाल रुहेला ने पुस्तक का परिचय लिखकर लेखक को प्रोत्साहन दिया है अत उन्हे भी धन्यवाद।

पुस्तक के सुधार हेतु पाठको, मित्रो, सहयोगियो तथा सरक्षको से प्राप्त होने वाले रचनात्मक सुझावो का सदैव साभार सादर स्वागत होगा।

(डॉ०) जमनालाल बायती

विषय-सूची

---

1 सृजनात्मकता के लिए शिक्षा

सृजनात्मकता अंग्रेजी के शब्द CREATIVITY का हिन्दी रूपान्तर है। मोटे रूप से सृजनात्मकता का अर्थ भिन्न भिन्न दिशाओं मे सोच विचार करना है। जन साधारण सृजनात्मकता का अर्थ असामान्य एव नूतन विचार, रचना या आविष्कार से लेते हैं। पर एक उदाहरण देखिए—बच्चो से पूछा गया कि छाते का क्या उपयोग है? आप इसके अधिक से अधिक उपयोग बताइये। कोई चिन्ता या विचार न कीजिए यदि आपके उत्तर पर कोई मित्र हँसे भी तो। आप अजीब से अजीब उपयोग बताने म भी न हिचकिचाइए। विभिन्न बच्चे इस प्रश्न के विभिन्न उत्तर दे सकते हैं। सभावित उत्तर इस प्रकार हो सकते हैं

1 वर्षा से रक्षा करना।
2 धूप से रक्षा करना।
3 वृद्ध व्यक्ति द्वारा हाथ मे लकडी की जगह प्रयोग करना।
4 मदारी के आदेश पर बन्दर द्वारा छाता लगाकर अकड के साथ चलना।
5 टेंट का खम्भा टूट जाने पर छाते से खम्भे का सहारा देना।
6 शिक्षक द्वारा गलती करने पर विद्यार्थियो को मारना।

7 उपयोग करने से इस धन्धे मे लगे लोगो को रोजगार मिलना। इस प्रकार के और भी कई उत्तर बच्चो से प्राप्त हो सकते हैं। स्मरणीय है कि सातवाँ उत्तर प्रत्यक्षत सृजनात्मकता से सम्बन्ध नही रखता है एव छठा उत्तर समाज सम्मत नही है अत इसे स्वीकार नही किया जाना चाहिए। प्रारम्भ के दो उत्तर सामान्य स्तर के हैं इन उत्तरो की हर विद्यार्थी मे अपेक्षा की जा सकती है। तीसरा एव चौथा उत्तर सृजनात्मकता का सूचक हो सकता है इसी भाति पाचवा उत्तर निश्चित रूप से सृजनात्मकता का द्योतक है। पर इन उत्तरो पर सृजनात्मकता के दृष्टिकोण से विचार करने के लिए बच्चो की उम्र वातावरण, पूर्व ज्ञान को भी नही भुलाया जा सकता, इन सब घटको पर विचार करना होगा। तीसरा उत्तर तीसरी कक्षा के विद्यार्थी के लिए सृजनात्मक हो सकता है पर सभव है यही उत्तर 11वीं श्रेणी के विद्यार्थी के लिए सृजनात्मक न हो। इसी भाति उत्तरो के निश्चय करने म पर्यावरण का भी प्रभाव पडता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सृजनात्मक चिन्तन भिन्न भिन्न दिशाओ से चिन्तन (DIVERGENT THINKING)

को कहते हैं तथा इस प्रकार के चि तन से ही नये विचारो का ज म होता है। पर यह भिन दिशाग्रा मे चिन्तन समाज सम्मत हा, समाज की मान मर्यादाग्रो से परे हट कर नही। इसका मतलब यह भी है कि सजनात्मक चिन्तन काल्पनिक, अव्यावहारिक तथा आकाश कुसुम के समान नही हो। बहुविध दिशाग्रा मे चिन्तन का कोई उद्देश्य होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अपनी वतमान स्थिति से सतुष्ट है तो वह सुधार का प्रयत्न ही नही करेगा। यहा तक कि सभव है सुधार की आवश्यकता ही अनुभव न करें।

सृजनात्मकता का विकास समस्याग्रा के हल करने से होता है। सजनात्मकता नये अथ तथा हल की खोज करती है जिस पर विचार, पुनर्विचार विश्लेपण तथा सश्लेपण करके अतिम हल ढू ढा जाता है। बालक जब समस्या देखता है, उसे कोई पहले से अनुभव नही होता ज्ञान नही होता तभी वह नई परिस्थितियों मे काम करता है समस्या हल करता है तभी से इन प्रयत्नो के साथ ही सजनात्मकता का भी श्रीगणेश होता है समस्याग्रा के लाभ हानि सोचता है उनके गुण दोपो पर विचार करता है। यहा स्मरणीय है कि एवविध चिन्तन मे भी सृजनात्मकता ज्ञात की जा सकती है बशर्ते कि यदि किसी विशिष्ट वस्तु के प्रयोग का पुनर्विचार किया जाय या विशिष्ट परिस्थितियो को नये पर्यावरण म समझा जाय। सजनात्मकता के क्षेत्र मे प्रबुद्ध चितक ई० पाल टॉरेन्स के अनुसार 'समाज के दृष्टिकोण से वह व्यवहार जो समस्या को सुलझाने म कोई नवीन निराकरण विधि का ढ ढ निकालना ही सजनात्मकता कहलाता है। शिक्षा के क्षेत्र म सजनात्मकता की परिभाषा देते हुए उन्होने लिखा है कि यह वह प्रक्रिया है जिसम बालक समस्या को समझता है उसकी कठिनाइयो एव कमियो को जानता है और जिनका उनके पास कोई ज्ञात सुझाव नही है। वह अपने ज्ञान द्वारा उस समस्या का सुलझाने के सूत्र ढू ढता है, प्राक्कल्प तयार करता है, उनका निर तर मूल्याकन करता है और परिणामो अथवा निष्कर्षों की घोपणा करता है।'[1] इस प्रकार प्राप्त हुए निष्कप या परिणाम या निराकरण के उपाय आश्चयजनक होने चाहिएँ।

वारटेट के विचारा म 'सजनात्मकता से तात्पय है साहसिकता से सोचना, सीधे माग से हटकर अलग चलना साँचे अथवा ढाचे को तोड फाड देना अनुभव के लिए तयार रहना और एक के बाद दूसरे की ओर अग्रसर होना।

---

1 टॉरेन्स, ई पाल अमरिका म सजनात्मकता के क्षेत्र सम्बन्धी शोध और उनका शिक्षा पर प्रभाव (अनुवादक श्री दिनेशचन्द्र जोशी) जन शिक्षण (हिन्दी शक्षिक मासिक) उदयपुर विद्याभवन सोसायटी, वप 35, अक 4, अप्रेल. 1970. पृष्ठ 14।

इसी भाँति MEDNICK के अनुसार "Creative thinking consists of forming new combinations of associative elements, which combinations either meet specified requirements, or are in some way useful. The more mutually remote the elements of the new combination the more creative is the process or solution." इस परिभाषा में लेखक ने सृजनात्मकता के प्रतिफल की अपेक्षा उसकी प्रक्रिया का विवेचन किया है। इसी भांति हरिस चेस्टर के ENCYCLOPEDIA OF EDUCATIONAL RESEARCH के अनुसार सृजनात्मकता का अर्थ है— विज्ञान मानव सम्बन्ध कला आदि के क्षेत्रों में मानसिक क्रियाओं का उच्चतम भाग।

STEIN के अनुसार "When it (creative process) results in a novel work that is accepted as tenable or useful or satisfying by a group at some point in time." इनके अनुसार नवीनता के साथ ही उपयोगिता भी पूर्व अनिवार्यता है तथा उपयोगिता को विस्तृत अर्थों में ली जानी चाहिए जिससे समझ-बूझ व ज्ञान का क्षेत्र भी विस्तृत हो। GHISELIN इससे भी एक कदम और आगे बढ़ता है तथा नवीनता व उपयोगिता के साथ सार्थकता को सृजनात्मकता की पूर्व आवश्यकता ही मानता है। उनके अनुसार सृजनात्मकता का अर्थ है "The measure of creative product be the extent to which it restructures our universe of understanding."

इस क्षेत्र में अन्य मनोवैज्ञानिकों की भी परिभाषाएँ दृष्टव्य हैं। फिलपट्रिक के अनुसार 'सृजनात्मकता का अर्थ है नये विचार की खोज, नये शब्दों की या शब्द समूहों की रचना, व्यवहार में नयापन जो परम्परित तरीकों से भिन्न हो।'

विल्सन का मत है 'मौलिकता, पुनपरिभाषा संयोजित एवं स्वतन्त्र रूप में प्रकट कर सकने की सोच तथा समस्याओं की संवेदनशीलता द्वारा सृजनात्मकता प्रकट की जा सकती है।'

एण्डरसन मानते हैं कि "सृजनात्मकता सामाजिक अन्त प्रक्रियाओं के अधिकतम विकास के समय झलकती है। विद्यार्थियों की अन्त प्रक्रियाओं का निरीक्षण तथा समाजमिति के निष्कर्ष शिक्षक को जरूरत के समय विद्यार्थियों के समाजीकरण का संकेत करते हैं।

सिम्पसन के अनुसार "जिज्ञासा कल्पना, खोज तथा संरचना वाले सम्प्रत्यय सृजनात्मकता के अंश हैं।"

सृजनात्मक क्रियाओं के मनोवैज्ञानिक आधार

1 बालक के वृद्धि एवं विकास के विभिन्न पक्षों में समन्वय स्थापित करते हुए सृजनात्मकता उसे उचित सर्वांगीण विकास की ओर ले जाती है।

2 पूर्व किशोरावस्था में जो वेग और अत्यधिक कार्य करने की क्षमता होती है उसके लिए सृजनात्मक कार्यों द्वारा ही पूर्ति सम्भव है।

3 बढ़ते हुए किशोरों के लिए सृजनात्मक क्रियाएँ संवेगात्मक तनावों को दूर करने में सहायक होती हैं तथा उनकी शक्ति का मार्गान्तीकरण करती हैं।

सृजनात्मक बालक की विशेषताएं

सृजनात्मक बालक सामान्य बालकों से भिन्न होते हैं, उनमें कई विशेषताएँ देखी जाती हैं। ई पाल टॉरेंस के अनुसार सृजनात्मक बच्चे जंगली या मूर्खतापूर्ण या उपहासास्पद विचार वाले होने के लिए प्रसिद्ध हैं। वे अपने साथियों में इन बातों को देखने पर मजाक उड़ाते हैं। वे अपने समूह के साथियों के साथ आसानी से व्यवहार नहीं कर पाते, यद्यपि वे अपने कुछ मित्र बना ही लेते हैं। उनके माता पिता तथा अभिभावक उन्हें असामान्य बनने से हतोत्साहित करते हैं। उनके विचार असामान्य होते हैं तथा वे रोज के सामान्य तौर तरीकों को दूर हट कर सोचते हैं। इसका आधार यह होता है कि सृजनात्मक व्यक्ति कठोर परिश्रम करने को तत्पर रहता है वे न तो जोर जबरदस्ती से किसी की आज्ञा मानते हैं और न ही किसी की राय से सहमत होते हैं। मूलतः उनके विचार बुनियादी होते हैं। वे कल्पनाओं में आनन्द मनाते हैं। सृजनात्मक व्यक्ति बड़ा से बड़ा कार्य भी विनोद के साथ विश्राम करता हुआ खेल ही खेल में बिना अपने विचारों या काम करने के तरीका में दृढ़ हुए पूरा कर लेता है। सृजनात्मक छात्र कठोर काम भी कम समय व कम प्रयत्नों में कर डालते हैं। उनका काम कितना ही कठोर हो पर वे दूसरों को सुस्त की तरह दीखते हैं। शिक्षक भी ऐसे बच्चों को कक्षा में अधिक श्रेय, पुरस्कार, सामाजिकता देते देखे जाते हैं। *सफलता व आगे बढ़ने का श्रेय अन्य लोगों के अर्थों से उनके लिए भिन्न होता है।* परम्परागत विचारों तथा रीति रिवाजों का वे उपहास करते हैं, उनकी आलोचना या उनकी उग्रता किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं बल्कि समाज के विपरीत होती है।

सृजनात्मक बालक सहज स्वाभाविक गति से चलने वाला परिवर्तन को स्वीकार करने वाला परिस्थितियों में अपने आपको ढालने वाला, उनको स्वीकार *करने वाला, अपने विचारों व कार्यों में मौलिक अनुचित क्रियाओं में चिंतन तथा* साहसी राय करने का खतरा उठाने वाला होता है। वे धाराप्रवाह बातें चलते हैं तथा वे भिन्न भिन्न विचार प्रस्तुत करने को तत्पर रहते हैं विचारों में धनी होते हैं। आत्म निर्भर व्यवहार भी सृजनात्मकता का सूचक होता है। असामान्य प्रश्नों का पूछना साहसपूर्ण काम करने का सूचक, सृजनशील बच्चों की तीव्र जिज्ञासा की ओर संकेत करता है। शिक्षकों को बच्चों में सृजनात्मकता के विकास के लिए इन

सब बातो पर ध्यान देना चाहिए। वे अपने कार्यों मे कठोर परिश्रम के साथ निरन्तर जुटे रहते हैं। सृजनात्मक व्यक्ति कई बार नायक के स्थान पर भी होता है। प्राय वह व्यक्तिवादी होता है तथा उसका काय करने का अपना ढग होता है। वह साहसपूर्ण तथा अस्पष्ट कार्यों को करने म भी नही डरता, अव्यवस्थाओ को सहन भी करता है वह अनिश्चित तथा अज्ञात बातो को जानने का, बहुविध दिशाओ मे सोचने का एव नई चीजें खोजने का खतरा उठाता है। वह सोचने विचारने के नये तरीका पर आग्रह करता है। बहुत कम अवसर ऐसे आते हैं जबकि वह कामा को पूव नियाजित रूपरेखा के अनुसार करता है। उनका साहस तब देखते ही बनता है जबकि वह काय करते करते तत्काल ही उसके करने का तरीका सहसा बदल देता है। गिलफड के अनुसार मौलिक व्यक्ति परम्परा से चले आए नतिक मूल्यो से कम म ही सहमत होते हैं। यह काई आवश्यक नही है कि बराबर कक्षाओ म उपस्थित रहने वाला कक्षा का काय जिम्मेदारी से करने वाला, परीक्षा म अच्छे अक पाने वाला विद्यार्थी सदव ही सजनात्मक हो। कई बार ऐसा भी देखा जाता है कि सजनात्मक बच्चा म बालिकाओ की रुचिया, विचार, प्रवत्तिया मिलती हैं तथा सजनात्मक बालिकाओ म बालका की रुचियाँ, विचार तथा प्रवत्तिया। प्राय ऐसे बालक बालिकाएँ अपने साथिया से भी समायोजन नही कर पाते हैं तथा वे कठिनाइयाँ अनुभव करते हैं। पर यह भी सही है कि एसी कठिनाइया उनके लिए क्षणिक होती हैं।

सजनशील बालक कठिनाइया तथा पेचीदा कार्यों का स्पष्ट ज्ञान रखते हैं। कठिनाइयो का हल सोचते हैं, निष्कर्षो मे सुधार करते हैं, उनम सशोधन करत हैं। यदि आवश्यक हुआ तो पुनमूल्याकन करत हैं। छात्र यह अनुभव करते हैं कि तनिक सा नया नान भी महत्त्वपूर्ण है तथा शिक्षक उनके सृजनात्मक तथा आलोचनात्मक चिन्तन की प्रशसा करते हैं, इससे बालका को भी आत्मसतोष मिलता है।

सृजनात्मकता एव विद्यालय

सजनात्मकता के विकास के लिए विद्यालय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सजनात्मकता के विकास के लिए यदि आवश्यक हो तो, पाठ्यक्रम म भी परिवतन किया जाना चाहिए। शिक्षा के उद्देश्या की सख्या बढ सकती है। ऐसी व्यवस्था का जानी चाहिए कि बालक सजनात्मक चिन्तन की ओर अग्रसर हो सके तथा शिक्षक सृजनात्मक चिन्तन क लिए पढा सके। इसके लिए आवश्यक है कि विद्यालय का अब तक का जो दिन भर का दृढ एव निश्चित कायक्रम रहता है, उसम परिवतन करना होगा। बालको के असामान्य सहसम्बन्ध तथा उपहासपूर्ण उत्तरा को स्वीकार करना होगा। आज विद्यार्थिया स भी यह आशा नहीं की जाती कि वे जसे चाहे काल्पनिक उत्तर लिखें। प्रश्नों के उत्तर लिखने का एक तरीका निश्चित

है, परम्परा से चला आ रहा है उसका अनुसरण करना है। इसी प्रकार शिक्षकों द्वारा दिये जाने वाले गृह कार्य या कक्षा के कार्य में अति दृढ़ता है जो निश्चय ही सृजनात्मकता का ह्रास करता है। जितना शीघ्र हो सके, इसमें परिवर्तन किया जाना चाहिए।

सृजनात्मक के विकास हेतु सबसे महत्त्वपूर्ण घटक यह है कि बच्चों को स्वीकार्य, सहज स्वाभाविक तनावों से मुक्त तथा स्वपहल करने वाला वातावरण प्रस्तुत किया जाए। सृजनात्मकता का आधार खतरा उठाना तथा साहसपूर्ण कार्य करना है। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षक परम्परा से चले आए तरीकों से कुछ सीमा तक दूर हटें बच्चों को एकाग्र चित्त होकर सोचने के लिए अवकाश भी दिया जाना चाहिए। शिक्षक को इसके लिए भी तत्पर व सक्षम होना चाहिए कि वह बच्चों को स्वतन्त्रता दे सके। ऐसी स्थिति में यदि शिक्षक तनिक सावधानी बरते तो कुछ सीमा तक दीवास्वप्न भी इस दिशा में एक उपयोगी साधन हो सकता है। रोज की तरह की कार्य व्यवस्था दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार के चिन्तन को प्रोत्साहन नहीं देता। एक रात में सृजनात्मकता का विकास नहीं होता पूर्व निश्चित तरीके से पूरा किया जाने वाला गृह कार्य या कक्षा का कार्य पूरे मन से सृजनात्मकता के विकास हेतु किए जाने वाले विकास में बाधक होता है। शिक्षक को इन सब बातों के लिए शीतल मस्तिष्क से सोचना चाहिए।

सृजनात्मकता के विकास के लिए ऐसे शिक्षकों की आवश्यकता है जो प्रतिक्रियावादी बच्चों को स्वीकार कर सकें तथा उनके साथ सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार कर सकें। यह निश्चित है कि सभी शिक्षक सृजनात्मक चिन्तनशील नहीं बन सकते पर उन्हें सृजनशील बच्चों की विशिष्ट आवश्यकताएँ तो समझनी ही चाहिए। कई पाठ आज शिक्षक अपने को स्वामी मानकर पढ़ाते हैं, वह व सृजनात्मक तरीके से भी पढ़ा सकते हैं। ऐसी स्थिति में यदा कदा होने वाली असफलताओं के खतरे उठाकर भी शिक्षकों को सृजनात्मक चिन्तन के लिए विभिन्न तरीकों से शिक्षण के लिए, मूल्यांकन की विभिन्न विधियों को प्रयोग करने के लिए स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। विद्यार्थी अपने शिक्षक की मदद से उद्देश्यों का परीक्षण प्राप्त साधनों का सर्वेक्षण पिछले अनुभवों का मूल्यांकन तथा घटनाओं को नये अर्थों में समझने का प्रयत्न करना चाहिए। सृजनात्मक बालक न केवल भिन्न भिन्न दिशाओं व कार्यों में रुचि व रुझान ही बतलाता है बल्कि वह वस्तुओं तथा तथ्यों का नया पर्यावरण में सहसम्बन्ध प्रस्तुत करता है। विद्यालय के पाठ्यक्रम में विभिन्न विषय व सहगामी क्रियाएँ होनी चाहिएँ। सृजनात्मक बालक को अधिकाधिक विषयों व सहगामी क्रियाओं से परिचित कराना चाहिए। विद्यार्थियों का दल द्वारा (एक से अधिक शिक्षकों द्वारा एक साथ) शिक्षण नये मत सम्बन्धों की जानकारी कराना है। ऐसा भी कई शिक्षाविद् मानते हैं।

कई सजनशील बच्चे जल्दी सोच विचार कर काय आरम्भ नही कर सकते, ठीक यही स्थिति कई बार शिक्षको की भी हाती है। कई सजनशील शिक्षको का उनके साथियो प्रधानाध्यापको से तालमल नही बठता, वे उनके लिए सिरदद बने रहते हैं। कई प्रधानाध्यापक परम्परागत तरीका से सोचने विचारने वाले शिक्षक ही पसद करते हैं पर राष्ट्रीय हित का ध्यान रखत हुए सजनशील शिक्षको के विकास को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

विद्यालय बालकों म सजनात्मकता के विकास मे निम्न प्रकार से सहायक हो सकता है —

सुझाव पेटी

नये विचारा का प्रोत्साहन दने के लिए सुझाव पटी भी एक अच्छा एव उपयोगी माध्यम है। कई व्यक्ति जो शर्मीले स्वभाव के हैं और प्रधान के पास जाकर बातचीत करन स डरते हैं पर बहुविध दिशाओ मे सोच सकते हैं उनके विचारा से तो लाभ उठाया ही जा सकता है और उठाया जाना भी चाहिए। शालाओ के प्रशासन म, सचालन म कल्याणकारी सेवाओ क लिए सुझाव पटी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। कई बार छात्रा को एसे ऐसे सुझाव देत हुए देखे गए हैं जिससे ऐसी एसी समस्याओ को बात की बात म हल कर लिया गया जिनको वद्ध व अनुभवी प्रधानाध्यापक भी सुलझाने मे असफल रहे। इससे स्पष्ट है कि केवल वयस्क व्यक्ति ही उपयोगी चिन्तन कर सकते हैं इस धारणा का खण्डन हाता है। कई बार बच्चे अपना नाम नही बताना चाहते हैं क्योकि वे सुझाव को उपहास मानन लगे तथा एसा सही होने पर उनकी हँसी हो। सुझाव उपहास का स्रोत तब हो सकता है जबकि वह एकदम नवीन तथा आश्चयजनक हो। समव है बहुत से सस्था प्रधान इस बात को आसानी से स्वीकार भी नही करें पर बच्चो म सजनात्मकता का विकास करने के लिए यही एक तरीका है तथा इस विचार को स्वीकार कर बच्चों म सजनात्मकता का विकास किया जाना चाहिए।

प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहन

व्याख्यान, भाषण वाद विवाद प्रतियोगिता समाप्त करन के बाद बच्चो को प्रश्न पूछने का समय दिया जाना चाहिए। इससे बच्चा का अपनी शकाओ को दूर करने का अवसर मिलेगा। उनक विभिन्न प्रश्नो से अधिकारियो को नवीनतम जानकारी होगी, बच्चा की जिज्ञासा शान्त हागी। इससे कई एसे विचार सामने आयेंगे जिनका व्याख्यान देने वाले या भाषण दन वाले न अपने भाषण म समावेश ही नहीं किया है। कई सस्था प्रधान जो छडी क बल पर विद्यालय का प्रशासन चलाते हैं बच्चो स इस प्रकार के प्रश्न पूछना पसद नही करते। बच्चो को प्रश्ना का उत्तर दकर उनकी जिज्ञासा शान्त करके उनको बहुविध दिशाओ म चिन्तन का

अवसर दिया जा सकता है, इससे भी मना नही किया जा सकता। एसे प्रधानाध्यापकों को नई परिस्थितियो के लिए तयार किया जाना चाहिए।

सामूहिक मुक्त विचार

बच्चो को इस बात का अवसर दिया जाए कि वे टोलिया म बठें तथा बिना किसी भय या सकोच के विचारो का आदान प्रदान करें, विचार विमश करें, काय करें, अनुभव करें समस्याओ पर विचार करें सुझाव प्रस्तुत करें, उनकी व्यावहारिकता तथा अव्यावहारिकता पर भी अपनी टीका टिप्पणी प्रस्तुत करें। एक बात का ध्यान रखा जाय कि इस प्रकार की मुक्त विचार गोष्ठिया म विचार अभिव्यक्ति पर किसी प्रकार का बन्धन न हो, भाग लेन वालो को हर प्रकार के विचार सूझ बूझ अभिव्यक्त करने का अवसर दिया जाए उन्हे किसी भी रूप मे रोका न जाए, चाहे वे विचार कितने ही उपहासास्पद भी क्या न हो? यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि बिना किसी के नियन्त्रण म व मन खोलकर बातें करेंगे जो बात या विचार मन म आएगा, वे अभिव्यक्त करेंगे। जब दो मस्तिष्क एक ही विषय पर सोचते हैं तो प्राप्त होने वाले निष्कष आश्चयजनक होते हैं। काल्पनिक सतही जगत म बच्चे विचरण कर सकते हैं। प्रयत्न यह किया जाए कि सभी बच्चे समान सामाजिक, आर्थिक धरातल के हो जिसमे उनके मस्तिष्क म ऊच नीच का भाव न आने पाए। हर दल मे कम से कम 5 तथा अधिक स अधिक 10 सदस्य रखे जाएँ। इस प्रकार की सृजनात्मकता का जिसे लाभ उठाना है उसे इस प्रकार की छोटी छोटी गोष्ठिया मे भाग नही लेना चाहिए। बच्चो की सजनात्मकता का लाभ प्रधानाध्यापक को उठाना है उसे छात्रो म सजनात्मकता का विकास करना है तो उसे छात्रों के साथ विचार विमश म नही बठना चाहिए। यदि प्रधानाध्यापक ने भी भाग लिया तो बच्चे शम या डर के मारे कई बातें नही कह पाएँगे। अत बच्चो को मुक्त वातावरण म सोचने विचारने का अवसर दिया जाना चाहिए। ऐसा करने स यह भी समव है कि बच्चे प्रधानाध्यापक जी पर ही निभर रहने लगें या केवल उन्ही की हाँ में हाँ भरने लगे। दल के नेता को भी साथियो के सुझावा, विचारो का मूल्याकन नहीं करना चाहिए। इससे भी विपरीत प्रभाव पडने की सभावना रहती है अत इसस बचना ही श्रेयस्कर होगा। बहुविध दिशाओ मे चिन्तन करने वालो का उनकी सुरक्षा, उनके योगदान के उपयोग आदि के बारे मे स्पष्ट बता दिया जाना चाहिए इससे भी वे दूने उत्साह से काम करेंगे। कुछ मनोवैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि सजनात्मक चिन्तन के विकास के लिए बच्चा के मन से डर निकाल दीजिए। ऐसा अपवाद स्वरूप ही हो सकता है कि असुरक्षा अनुभव करने वाला बालक सृजनात्मक चितक बन सके।

जिन विषयो पर विचार विमर्श किया जाए, वे सामान्य प्रकृति के न होकर विशिष्ठ प्रकृति के हो तो अधिक लाभ होगा। कई विषय या समस्याए एक साथ

जोड़ दी गई तो सम्भव है किसी एक विषय या समस्या पर भी विचार न हो पाय तथा यह भी सभव है कि विचार विमर्श क्षेत्र से ही बाहर निकल जाए। भाग लेने वालों से आग्रह किया जाए कि जिस विषय या समस्या पर विचार किया जा रहा है उस पर हर सम्भव भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से विचार करें। जो भी तथा जैसे भी विचार प्रस्तुत हो, चाहे व्यावहारिक हो या अव्यावहारिक, लिख लिया जाए तथा गोष्ठी की कार्यवाही की समाप्ति पर उनकी उपयोगिता पर विचार किया जाए। कुछ विचार ऐसे भी हो सकते हैं जो व्यावहारिक तो नही है या उनके अनुसार काम तो नही किया जा सकता पर वे अन्य और उपयोगी चिन्तन को अग्रसर करते हैं, इस प्रकार उनका महत्त्व भी कम नही आका जा सकता।

विचार विमर्श का समय सहज हो, आनन्दप्रद हो, मित्रतापूर्ण हो, स्वाभाविक गति से चल रहा हो। कोई भी छात्र यह अनुभव न करे कि उन्हें वहा जोर-जबरदस्ती बिठा लिया गया है तथा न चाहते हुए भी उन्हें बोलना पड रहा है। ऐसी गोष्ठी उपयोगी विचार दृष्टिकोण या सुझाव नहीं दे सकती। आलोचना प्रत्यालोचना होती है, किन्हीं दो सुझावों पर तीसरा नया सुझाव या विचार और सामने आ सकता है। एक विचार जो प्रथम बार अजीब या सनकी लगे, आगे चलकर उपयोगी भी सिद्ध हो सकता है तथा इस प्रकार नये विचारों का जन्म होता है। जितने भी विचार आएँ सब लिख लिए जाएँ, उनका मूल्याकन न किया जाए। जब एक काम समाप्त हो जाए तभी दूसरा काय शुरु किया जाए।

छात्रों को यह सिखाया जाए कि वे समस्या का भिन्न दृष्टिकोण से विश्लेषण करें, जैसे—इसका अन्य क्या-क्या उपयोग हो सकता है? कैसे इसका रूप परिवतन शक्ल-सूरत बदली जा सकती है? कैसे इसमें सुधार कर सकते हैं कैसे इसमें सुन्दरता ला सकते हैं? आदि आदि।

एक विचार को दूसरे विचार से जोड दीजिए तथा उनका अध्ययन किया जाए। इस प्रकार जुडे हुए विचार कई बार अजीब लग सकते हैं। पर ये नये विचारों को भी जन्म दे सकते हैं। विद्यार्थियों को बताया जाए कि जो विचार उनके दिमाग में आएँ, उन्हे लिख लें, अपनी टिप्पणियाँ बनाएँ, दैनिक जीवन में जो समस्याएँ वे पाते हैं, उन पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करें।

सामूहिक असम्बद्ध विचार

इस प्रकार के समूह द्वारा सृजनात्मकता का शुरु से अन्त तक की प्रक्रिया पर विचार किया जाए। दल की हर बात का टेप रेकार्ड द्वारा लिख ली जाए तथा बाद में इन पर नये विचार के जन्म के दृष्टिकोण से विचार किया जाए। इस प्रकार के दल में 5–7 छात्र रहें जो विभिन्न प्रकार के अनुभवों, रुचियों, धारणाओं एवं

बुद्धिलब्धि वाले हों। विद्यालयों के इस प्रकार के दल के कला, विज्ञान, वाणिज्य, कृषि, गृहविज्ञान आदि के विद्यार्थी हो सकते हैं। इस प्रकार के छात्रों में समस्या का अनोखा हल खोजा जा सकेगा। आज स्थिति यह है कि बच्चे अपने ही सन्दर्भ के तरीके से सोचते हैं। उन्हें आज यदि किसी समस्या पर सोचने को कहा जाए तो वे अपने पुराने अनुभव तथा प्राप्त ज्ञान के आधार पर सोचेंगे। प्राप्त स्थिति में हल ढूँढने वाले छात्र को रखकर पूछा जाए कि अब क्या-क्या विकल्प हो सकते हैं? इससे नये ज्ञान तथा जिसके फलस्वरूप नई खोज सम्भव होती है। बच्चों को ऊँची-ऊँची आदर्श कल्पनाओं की भी छूट दी जा सकती है तथा यदि एक बार ऐसी स्थिति पैदा हो जाए तो दूसरी स्थिति आएगी कि इन आदर्श स्थितियों को कैसे प्राप्त किया जाए?

यदि गहराई से इस तरीके को देखा जाय तो कहा जा सकता है कि यह कोई नया तरीका नहीं है। शोध कार्य कर्ता व आविष्कारक प्राचीन काल में भी इसे प्रयोग करते थे। उस वक्त वे इसे स्वाभाविक सहज गति से काम में लेते थे तथा अब इस पर सजग रूप से आयोजित प्रयत्नों द्वारा कार्य होता है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने सृजनात्मकता के विकास के लिए विद्यालय पत्रिका का महत्वपूर्ण स्थान माना है। उनके अनुसार सहज तथा उत्साहवर्द्धन हेतु आरम्भ की गई विद्यालय पत्रिका न केवल सृजनात्मक लेखन के लिए सफल साधन है, बल्कि इससे बच्चों की रुचियाँ समृद्ध होती हैं और उनका बौद्धिक विकास होता है।[1]

जानकारी प्राप्त करना

बच्चों से यह कहा जा सकता है कि किसी समस्या के जितने हल आप ढूंढ सकते हैं ढूंढ लीजिए। इतिहास के विद्यार्थी इसी प्रकार के हलों का उपयोग करते हैं। वे प्राप्त सभी सूचनाओं का संग्रह करते हैं तथा एक चित्र का अनुमान लगाते हैं। इस प्रकार ज्ञान प्राप्त करने का तरीका कार्य तथा कारण (CAUSE AND EFFECT) के सम्बन्ध का ज्ञान कराता है। इस रूप में यह समझ बूझ शक्ति उपयोगी है।

दैनिक जीवन की समस्याओं का हल ढूंढना

दैनिक जीवन की तात्कालिक समस्याओं का हल ढूंढना भी एक उपयोगी तरीका है। इस प्रकार की क्रियाओं में मुख्य महत्व विद्यार्थियों की होती है तथा

---

1 Report of the Secondary Education Commission (1952-53) Ministry of Education Government of India, New Delhi The Publications Division, Sixth Reprint June, 1965 P 88

शिक्षक को अपने विचारों को छात्रों पर नहीं थापना चाहिए। छात्र असंतोष, जन सम्पत्ति की तोड़ फोड़ इस प्रकार के उदाहरण हो सकते हैं जिन पर विद्यार्थी हल ढूंढें।

भावी निष्कर्षों की कल्पना

हर व्यक्ति को समय समय पर निर्णय लेने ही पड़ते हैं। जो व्यक्ति जितना अधिक उत्तरदायी पद पर होता है, उसे उतनी ही अधिक जटिल समस्याएं सुलझानी होती हैं। एक व्यक्ति का निर्णय केवल उसके कार्य को ही प्रभावित नहीं करता है बल्कि वह साथी मित्रों के कार्य तथा उनके जीवन को भी प्रभावित करता है। मनुष्य को निर्णय लेते समय उसके भावी फलों पर भी विचार करना चाहिए। सही निर्णय लेने वाले व्यक्ति सफल होते हैं। कई बार विरोध होते हुए भी दृढ निश्चय करने होते हैं। विद्यार्थियों को लौकिक जीवन की कुछ स्थितियां या समस्याएँ दी जा सकती हैं जिन पर विद्यार्थी सोचें कि ये हमारे भावी जीवन को कैसे प्रभावित कर सकते हैं। भूगोल शिक्षक एक समस्या यह प्रस्तुत कर सकते हैं कि राजस्थान के सभी रेगिस्तानी क्षेत्र में सिंचाई की व्यवस्था हो जाए तो हमारे जीवन पर क्या-क्या प्रभाव होंगे ? यदि राणा प्रताप पैदा नहीं होते तो भारत का इतिहास कैसा होता ? यह भी इतिहास शिक्षक के लिए एक उपयोगी प्रश्न बन सकता है। इसी क्रम में सृजनात्मक चिंतन को इस प्रकार भी अग्रसर किया जा सकता है कि जिसमें बच्चों को काल्पनिक स्थिति में रखा जाय तथा इस स्थिति में उनसे संभावनाएँ पूछी जाए। जैसे यदि सब पत्ती धातु के हो जाएँ तो क्या होगा ? इच्छा होते ही घोड़े प्राप्त होने लग तो क्या होगा ?

वर्गीकरण की योजना बनाना

सभी विषयों में ज्ञान का वर्गीकरण किया जाता है। कुछ विषयों में तो वर्गीकरण अति महत्वपूर्ण होता है तथा अन्य में गौण। व्याकरण शिक्षण वर्गीकरण पर ही निर्भर है तथा इसी भांति जीव विज्ञान में वर्गीकरण से ही अध्ययन उपयोगी व अर्थ पूर्ण हो सकता है। यदि बच्चों को वर्गीकरण का ज्ञान दिया जाए तो वे वर्गीकरण को संचालित करने वाली स्थितियों का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। बच्चे स्वयं वर्गीकरण करें, इसके बजाय बच्चों को जानकारी समग्र रूप से दे दी जाए तथा उन्हें उसका वर्गीकरण करने को भी कहा जाए। विद्यार्थियों के कुछ प्रयत्नों के बाद शिक्षक गोष्ठी का आयोजन कर सकते हैं जिसमें वर्गीकरण के दोषों के निवारण के लिए सुझाव दिए जाएं। इस गोष्ठी में बच्चों के अच्छे कार्य की प्रशंसा भी की जा सकती है।

अन्वेषण करना

विद्यार्थियो के सामने समस्या प्रस्तुत की जाए तथा समस्या के हल के लिए सूचनायें संग्रह की जाए—विद्यार्थी समस्या के हल के लिए सुझाव दे सकते हैं। सृजनात्मकता के विकास के लिए बुद्धि से भी अधिक महत्त्वपूर्ण उत्प्रेरणा है।

सुधार करना

सृजनात्मक चिन्तन का एक तरीका यह भी हो सकता है कि बच्चा से किसी वस्तु के रूप रंग, शक्ल सूरत तथा उसके काम करने की प्रणाली म सुधार के लिए सुझाव पूछे जाए। विज्ञान की कक्षा म भाप का इंजिन पढाने के पहले NEW-COMEN *का इंजिन बताना चाहिये तथा उसके सुधार के लिए सुझाव मागे जायें।* इसी भाति अर्थशास्त्र की कक्षा मे विद्यार्थियो स कुटीर उद्योगो का सर्वेक्षण करवा कर उनके सुधार के उपाय पूछे जा सकते हैं।

निरीक्षण करना

निरीक्षण करना भी सूचना प्राप्त करने का ही एक तरीका है। यह कितनी दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि विद्यार्थी तथ्यो को समझने की अपेक्षा रटते हैं जिन्हे अन्य व्यक्ति अपने निरीक्षण स उक्त रूप देते ह। विद्यार्थियो को स्वय निरीक्षण करना सीखना चाहिये, उन्हे हर प्रकार के मुक्त अनुभव प्रदान करना चाहिए।

शिक्षा आयोग (1964–66) न अपनी रिपोट के 692 पृष्ठो मे कहीं भी सजनात्मकता का नाम नही लिया है। पर इससे यह अथ नही है कि आयोग इस *सम्बन्ध म सजग नही था। आयोग ने प्रतिभा सम्पन्न तथा उच्चतम बुद्धि वाले बच्चा* के सम्ब ध म विभिन्न महत्त्वपूर्ण सिफारिशें प्रस्तुत की है, वे सभी सजनात्मकता के सम्ब ध म भी समान रूप से लागू हो सकती हैं। आयाग के अनुसार "For obtaining the best results in quality talent has to be located early and allowed to grow in the best atmosphere and under the best teachers [1]

The large programme of scholarship proposed at all stages will ensure that all gifted students or atleast the top 5 to 15% of the relevant age group, will be enabled to receive the highest education possible The placement programmes which we suggest will also make it possible for them to study in the best institutions available at each stage [2]

---

1 Report of the Kothari Education Commission (1964-66) Ministry of Education Government of India New Delhi The Publications Division First Edition, 1966 p 240

2 Ibid p 241

A five or six week summer vacation programme can be arranged for a group of academically talented children from different schools brought together to an educational centre having special facilities of staff library, laboratory and equipment The programme may be renewed for a particular group from year to year, so that the students get an opportunity to develop their special talent over a number of years Hostels or day centres may be made available for these students whose home environment is not conducive to proper study Talent students may be brought into contact with persons engaged in the type of work for which the students show special ability or interest The persons may be able to provide occasional opportunities for the students to work in their special fields [1]

सृजनात्मकता का मूल्यांकन

पिछले कुछ वर्षों में शिक्षा शास्त्रियों ने ऐसे कुछ उपकरण तैयार किए हैं जिनसे सृजनात्मकता की मात्रा का पता लगाया जा सके। इस प्रकार के परीक्षण में शाब्दिक, अशाब्दिक तथा संख्यात्मक सभी प्रकार के परीक्षण प्रकाश में आए हैं, जो बहुविध दिशाओं में चिन्तन का परीक्षण करते हैं। कुछ विशेष प्रकार के निबन्ध, लघु उत्तर तथा रिक्त स्थानों की पूर्ति वाले प्रश्न भी सृजनात्मकता का मापन करते हैं। इस सम्बन्ध में अमेरिका में काफी कार्य हुआ है। इनमें अशाब्दिक परीक्षण इस प्रकृति के हैं कि वे संस्कृति एवं पर्यावरण के प्रभाव से मुक्त (CULTURE, FREE) हैं। परीक्षण चाहे भारत में दिए जाएं चाहे लन्दन में चाहे शहरों में दिए जाएं चाहे गांवों में। यह आशा की जाती है कि इन परीक्षणों की उपलब्धि सबमें समान रहेगी। इन परीक्षणों को तैयार करने वालों में पाश्चात्य विद्वान GETZELS AND JACKSON प्रमुख हैं। इसी कार्य को आगे चल कर ई पाल टॉरेंस ने भी शाब्दिक तथा अशाब्दिक परीक्षण तैयार करके अग्रसर किया जिन्होंने सृजनात्मकता के चार प्रमुख क्षेत्रों में मापन का कार्य हाथ में लिया। ये क्षेत्र हैं प्रवाह (FLUENCY) परिवर्तनशीलता (FLEXIBILITY,) मौलिकता (ORIGINALITY,) तथा विस्तार ELABOPATION। मोटे रूप से कहा जा सकता है कि आज की परीक्षा प्रणाली परीक्षण स्थितियां उत्तर को सीखने को तो प्रेरित करती हैं पर सृजनात्मकता के आवश्यक तत्त्व बहुविध दिशाओं में चिन्तन या नये रूप में चिन्तन को प्रोत्साहन नहीं देती। इन बातों के प्रकाश में इनका पुनर्निर्धारण किया जाना चाहिए।

---

1 Ibid p 241

भिन्न भिन्न बच्चे भिन्न भिन्न विधि से सीखते हैं

सृजनात्मकता के क्षेत्र में हुए शोध कार्य से बहुत सी बातों की जानकारी मिलती है। यथा, विभिन्न शिक्षाविधियों के द्वारा किस प्रकार से विभिन्न योग्यताएं काम में लाई जाती हैं। इस जानकारी ने पहले परम्परा से चले आ रहे संदेहयुक्त अध्ययन पर नया प्रकाश डाला है। गोटकिन व मासा ने सजनात्मक विचार करने के परिणाम व सफलताओं में महत्त्वपूर्ण निषेधात्मक सम्बन्ध मालूम किया है। 1934 के बाद STOLUROW ने मानसिक उम्र के और पूर्व नियोजित गणित व परिगणना में वस्तुओं की सफलता में परस्पर सम्बन्ध की अपेक्षा मौलिकता व सफलता के परिणाम में अधिक स्पष्ट परस्पर सम्बन्ध प्राप्त किए हैं। इसमें अन्तर यह था कि गोटकिन व मासा ने वे पूर्व नियोजित वस्तुएं काम में ली जिन्होंने सिर्फ थोड़ी मानसिक उन्नति ही होना संभव किया और रचनात्मकता, पहिचान तथा त्रुटियों के सुधार के कोई अवसर उपलब्ध नहीं किए जबकि STOLUROW ने पूर्व नियोजित सामान आदि को समाप्त करने के ढंग पर अधिक जोर दिया।

1964 में MCDONALD और RATHS ने यह मालूम किया कि ऊंची जाति के सजनात्मक बच्चे निराशाजनक कार्य करने में अधिक उत्साह दिखाते हैं अपेक्षा उसी जाति के कम सजनात्मक बच्चों के। इसके अलावा वे बच्चे एेसे निराशाजनक कार्यों में अधिक आनन्द लेते हैं अपेक्षा उनके दूसरे साथियों के जो कम सृजनात्मक हैं। सबसे कम सृजनात्मक बालक खुले कार्य (OUTDOOR WORK) में कम उत्साही या उत्पादक होते हैं तथा अधिक सृजनात्मक बालक बंद कार्य (INDOOR WORK) में कम मात्रा में प्रत्यावर्तन करते हैं। इस प्रकार से विभिन्न स्तर की सृजनात्मक विचार करने की योग्यता वाले बालक विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम के कार्यों के प्रति विभिन्न प्रकार से प्रत्यावर्तन करते हैं और संभवतया वे भिन्न भिन्न बदलते हुए तरीकों से अच्छी प्रकार पढ़ते हैं।

सृजनात्मकता के शोध से जो आत्म ज्ञान हुआ है उसमें से सबसे आश्चर्यजनक उत्तेजित कर देने वाला आत्म ज्ञान शायद यह है कि विभिन्न प्रकार के छात्र बहुत ही बढ़िया ढंग से सीखते हैं जबकि उन्हें सीखने के अवसर उन तरीकों व साधनों से दिए जाएं जो कि उनकी योग्यता एवं रुचि के उपयुक्त हों। जब कभी शिक्षक अपने अध्यापन के तरीके महत्त्वपूर्ण ढंग से बदलते हैं तो एक विभिन्न श्रेणी के सीखने वाले बच्चे अच्छे सितारे या अच्छे प्राप्तिकर्ता बन जाते हैं। लेखक (ई पाल टॉरेन्स) को

यह मालूम होता है कि एक बहुत बडी मात्रा मे लोगो को ऊँचे स्तर पर शिक्षित करने और हमारे समाज मे ऊँचे स्तर का सम्मान तथा मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने मे यह प्रगति बहुत प्रभाव रखती है।'[1]

शोध से विदेशो म पाया गया है कि सृजनात्मकता का प्रशिक्षण देने के बाद अप्रशिक्षित छात्रो की अपेक्षा प्रशिक्षित छात्रो की उपलब्धि उच्च स्तर की है। आठवी माह बाद उपलब्धि ज्ञात की गई तो भी अप्रशिक्षित छात्रो की अपेक्षा प्रशिक्षित छात्रा की उपलब्धि उच्च स्तर की है। बालक अधिक खतरे उठाने को तयार रहते हैं अपेक्षा बालिकाओ के वे अधिक व साहसपूर्ण कार्यों के लिए शीघ्र पहल कर देते हैं। अत स्पष्ट है कि बालक बालिकाओ से अधिक सृजनशील होते हैं। अधिक बुद्धि लब्धि वाला बालक अधिक सृजनशील होता है, ऐसा शाधो से ज्ञात हुआ है, पर बुद्धि तथा सृजनात्मकता पर्यायवाची शब्द हो, ऐसा भी नही है।

सृजनशील बच्चे वास्तुविद मनोवैज्ञानिक व पत्रकार के कार्यों को अधिक तथा विक्रय अधिकारी कार्यालय सहायक या सनिक के कार्यों को सदव सबसे कम पसद करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि सृजनशील बालक ठोस व व्यावहारिकता की सूक्ष्मताओ का नही बल्कि उनके अर्थ व प्रभाव पर अधिक आग्रह करते हैं। इसी भांति सृजनशील बालक सिद्धान्तो व कलाओ का अध्ययन पसद करते हैं।

सृजनात्मकता के शिक्षण से बच्चो को अपने लिए तथा समस्याओ के समाधान के लिए सोचने के अवसर मिलते हैं। बच्चो से यह आशा नही की जा सकती कि व नई शोध करेंगे या नय ज्ञान का सृजन करेंगे यद्यपि इसकी भी सभावनाएँ रहती हैं। मुख्य उद्देश्य तो यह है कि बच्चो को शोध की प्रक्रिया का ज्ञान किया जाए, ज्ञान का सृजन बताया जाए। इस प्रकार के शिक्षण का एक मुख्य उपयोग यह है कि विद्यार्थी ज्ञान के बारे मे सही दृष्टिकोण बनाएँ वह जानें कि ज्ञान स्थिर नही है बल्कि गत्यात्मक है इसकी सदव वृद्धि होती रही है। बच्चो को यह भी बिना किसी डर के बताया जाना चाहिए कि जो कुछ पुस्तको मे लिखा है वही अन्तिम सत्य नही है। इसके साथ ही विद्यार्थी यह भी अनुभव करेंगे कि वे कक्षा म केवल निष्क्रिय ज्ञान प्राप्तकर्त्ता ही नही हैं। दूसरा प्रत्यय का सही ज्ञान देने से शोध प्रक्रिया उपयोगी प्रविधि है। विद्यार्थी का अधिगम स्पष्ट व व्यवस्थित होता है तथा अधिक समय तक ग्राह्य होता है तथा तीसरा विद्यार्थी भावी जीवन की समस्याओ का अधिक दक्षता से सामना करने का प्रशिक्षण प्राप्त करता है। कई

---

1 टॉरेंस ई पाल अमेरिका म सृजनात्मकता के क्षेत्र सम्बन्धी शोध और उसका शिक्षा पर प्रभाव। (अनुवादक श्री दिनेशचन्द्र जोशी) जनशिक्षण (हिन्दी मासिक) उदयपुर विद्या भवन सोसायटी, वर्ष 35, अक 4, अप्रेल, 1970 पृ 20—21

बार विद्यार्थी ऐसी समस्याएँ पाते हैं जिनका उत्तर कही किसी किताब मे दिया हुआ नही होता है। ऐसी स्थिति मे उन्हे अपने पिछले अनुभवो व ज्ञान की मदद लेनी होती है। यदि विद्यार्थी किसी प्रकार की समस्या के हल करने का अनुभव प्राप्त न करे तथा केवल पुस्तकीय ज्ञान पर ही निभर करे तो बहुत सम्भावना है कि वह अपने भावी जीवन म उस वक्त आने वाली समस्याओ को हल करने मे वह अपने आपको असमथ पाए।

सजनात्मकता के क्षेत्र म शोधकर्त्ताओ ने विचार की योग्यताएँ एव प्रोत्साहन देने के काय मे वयक्तिक विभिन्नता के आधारो का उल्लेख किया है जिससे अध्यापन को वयक्तिक रूप दिया जा सके। सजनात्मक तरीका से अधिगम म भारी शक्ति व उच्च स्तर की योग्यता की जरूरत होती है तथा इस प्रकार की शिक्षा मस्तिष्क को ग्रहण कराने की अपेक्षा मस्तिष्क को स्वय काय करने के लिए अग्रसर करती है तत्पर बनाती है। सजनात्मक मस्तिष्क बारीकी सूक्ष्मता जानना चाहता है, निश्चितता जानना चाहता है जो वस्तुए अब तक अज्ञात हैं उन्हें खोजना चाहता है।

सजनात्मकता राष्ट्र की अमूल्य धरोहर है। इस शब्द का अथ कही अधिक गहरा है। यह गुण सुथार, रसोइया, मशीन पर काम करने वाले श्रमिक तथा सडक पर पत्थर डालने वाले मजदूर तथा अन्य हर व्यक्ति के काय म पाया जा सकता है। सजनात्मकता का यह प्रभाव होना चाहिए कि बनने वाली वस्तु अधिक सुदर, अधिक उपयोगी, अधिक समृद्ध और अधिक सुदर बने। इसस अभावो की दुनियां म भी व्यक्ति सतोष प्रसन्नता अनुभव करेंगे। तीव्र औद्योगीकरण के साथ साथ व्यक्ति को नये समाज मे समायोजन करना पड रहा है सोचने समझने के नये तरीके व नई आदतें बनानी पड रही हैं उनके सामने नई समस्याए आई हैं तथा व्यक्ति ने उनका हल ढूँढा है। समस्याओ का हल न ढूँढना सजनात्मकता से विमुख होना है। सजनात्मक विचार से ही समस्याओ का हल ढूढा जा सकता है। आज देश के सामने हर क्षेत्र म अनेको समस्याएँ हैं। इस दिशा म सही कदम विद्यालयों म काय कर रहे शिक्षको के लिए सजनात्मकता का प्रत्यास्मरण पाठ्यक्रम आरम्भ करना है। क्या आने वाली पीढी को विद्यालयो म पढने वाले बालको को समस्याओ के आश्चर्यजनक मौलिक हल प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षित किया जा रहा है? क्या वतमान शिक्षक इस उत्तरदायित्व को वहन करने के लिए तत्पर है? क्या यह परम्परागत तरीको तथा आदर्शो को छोडने के लिए तयार है? क्या वह विषय सामग्री के प्रस्तुतीकरण के नये तरीके से परिचित है? क्या वह अपने छात्रो के लिए नई तकनीक ग्रहण करने को तयार है? क्या वह अपनी कमियो को स्वीकार करने को सहप तत्पर है? क्या वह बहुविध दिशाओ म चिन्तन के लिए तत्पर है?

यदि सृजनात्मक चिन्तन को प्रोत्साहन नहीं दिया गया, उसका विकास नहीं किया गया तो राष्ट्रीय हानि के साथ ही साथ असन्तुलित व्यक्तित्व के विकास के रूप में व्यक्ति को भी हानि होगी। संस्कृति की रक्षा के लिए काल्पनिक सृजनशील चिन्तन का विकास वांछनीय है। यहाँ के नागरिकों की बुद्धि, विवेक तथा सजनशीलता का यहाँ की समस्याओं को हल करने में उपयोग नहीं किया गया तो ऐसे प्रजातन्त्र का भविष्य अन्धकारमय होगा। आज देश की आवश्यकता है नैतिक, सामाजिक आर्थिक राजनैतिक व अन्य क्षेत्रों में काम करने के लिए उच्च स्तरीय बुद्धि वाले, देश के नव निर्माण में रुचि लेने वाले और नये विचारों को प्रोत्साहन देने वाले ऐसे प्रतिभा सम्पन्न बालकों की जो परम्परागत तरीकों से दूर हट कर सोचें, समझ-बूझ तथा उच्च स्तर की सजनशीलता का प्रयोग करें एवं नये ज्ञान के प्रति सदैव सजग रहें।

2

नेतृत्व की शिक्षा

एक बार लेखक की 6 7 वर्षीया बच्ची अपनी छोटा बहिन से बोली —

गुडिया— इधर चल, मेरी अगुली पकड ।

मीनू— जीजी, जूते ता पहनने दे, अभी चलती हू ।
बाल मन्दिर का समय हो गया क्या ?

गुडिया— हाँ हो गया खाना ले लें
आजा मेरे पीछे पीछे, हाथ पकडले ।

इस बातचीत का विश्लेषण शिक्षा मनोविज्ञान के विद्यार्थी के लिए रुचिप्रद होगा । इससे स्पष्ट है कि छोटे बच्चे भी यदि समय पर उन्हें अपनी जिम्मेदारी से अवगत करा दिया जाय तो वे भी पूरे मन से उत्तरदायित्व के साथ काम करते हैं । पर क्या यह भावना यह गुण सामान्य नागरिको म मिलते हैं ? उत्तर नकारात्मक ही देना पडता है ? स्थिति वडी दयनीय है कि आज सही एव उपयुक्त नतृत्व की वडी कमी अनुभव की जा रही है । आर्थिक, सामाजिक राजनतिक शक्षणिक, आध्यात्मिक सभी क्षेत्रा म सही एव उपयुक्त नतृत्व प्राय नही के बराबर है । कोई किसी काय के लिए अपने का उत्तरदायी नही समझता–आज का काम कल पर टाला जाता है कोई भी निणय नही लेना चाहता । अपना काम 'व पर व वही काम 'स पर तथा 'स वही कामना द पर टालता जाता है इस भाँति सभी अपनी जिम्मेदारी से बचना चाहते हैं फलत निणय म सप्ताह व महीने लग जाते है तथा निणय लेने तक स्थितियाँ ही वदल जाती ह ।

अध्यापन व्यवसाय म लगे व्यक्तियो के सामने वहुत बडी चुनौती खडी है कि *आने वाली पीढी से सही व उपयुक्त नेतृत्व के गुणो का उचित मात्रा म विकास करें ।* इस दिशा म काय करने के लिये उनके सामने वहुत बडा क्षेत्र खुला पडा है ।

अब तक लोगो का यह विश्वास रहा है कि नायक म कुछ विशेष प्रकार के गुण होते हैं । जो जन्मजात होते हैं । इन गुणो मे चातुय, साधन सम्पन्न, प्रत्युत्पन्न मति, दूरदर्शिता शक्तिशालीपन परस्पर निभरता एव शारीरिक सुन्दरता का सम्मिलित किया जा सकता है । पर पिछले वर्षों म हुई खोजो से यह बात निमू ल सिद्ध हो गई है । शोध

के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नेतृत्व का इन गुणो से कोई सम्बन्ध नही है। शक्ति एव आकर्षण आवश्यक एव उपयोगी गुण है पर यही सब कुछ हो, ऐसी बात भी नही है। लेखक वड के अनुसार नायक को बुद्धिमान, पहल करने वाला, वाह्यमुखी एव विनोदी होना चाहिए। स्टागडील आग्रह करता है कि नायक म बुद्धि, अध्ययन शीलता परायणता, कर्मशीलता, सामाजिक कार्यों म भाग लेना, उच्च सामाजिक आर्थिक स्थान, पहल, दृढता, सूझबूझ, आत्मविश्वास, सहकार, समायोजन एव शक्ति होनी चाहिये।

यहाँ हम पदेन नायक एव कार्यकारी नायक म अन्तर समझ लेना चाहिये। पदेन कोई राजा भी हो सकता है तथा स्वायत्तशासी संस्थाओ म प्रधान भी। छोटे गाँवो म शिक्षक भी नायक हो सकते हैं। उस क्षेत्र के व्यक्ति भी उनको कार्यकारी नायक नही पर पदेन नायक मान लेते हैं। चूँकि वे किसी पद पर हैं इसके विपरीत कार्यकारी नायक के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह पदेन नायक भी हो ही। कार्यकारी को जनता स्वीकार कर लेती है उसके नेतृत्व को मान्यता देती है। कई बार आपने देखा होगा कि बच्चे जब खेलते हैं तो वे किसी एक साथी को पसन्द कर लेते हैं उनकी प्रशसा करते हैं तथा वही इस प्रकार नायक बन जाता है। इसी प्रकार नवयुवकों के अनौपचारिक दल मे भी नायक दीख ही पडता है। पदेन नायक कार्यकारी नायक भी हो यह आवश्यक नही है। वह अपना काय दूसरो से भी करवा सकता है। पद प्राप्ति का यह अर्थ कदापि नही है कि वह स्वभावत कार्यकारी नायक बन जाय। कुछेक पदेन नायक तो जीवन भर कार्यकारी नायक नही बन पाते। कुछ बडी कठिनाइयो के बाद बनते हैं। पर इसके लिये सतत प्रयास, परिश्रम इच्छा एव मनोबल बनाये रखना आवश्यक है। यही कारण है कि कुछ स्थानो पर पदेन नायक की अपेक्षा कार्यकारी नायक बडे लोकप्रिय हो जाते हैं।

नायक के गुणो के विकास काय दिनो या सप्ताहो का नही है अपितु यह काय जीवन भर चलता रहता है। इसका तात्पय यह भी कदापि नही है कि नायक अपने मे गुणो की कमी देखकर निरुत्साहित हो जाय पर उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति से तो अवगत रहना ही चाहिए। इनको इस बात का ज्ञान होना चाहिये कि नायक के गुणो का विकास क्षणिक प्रक्रिया नही है। बात की बात म पलक मारते ही तयार नही किया जा सकता। नायक के गुणो के विकास के लिये नीचे कुछ व्यावहारिक सुझाव दिये जा रहे हैं—

नायक सम्बन्धी साहित्य

नायक सबधी साहित्य का अध्ययन कीजिये। पर भारत मे इस प्रकार के साहित्य की बडी कमी है। कोई भी इस क्षेत्र म साहित्य सृजन मे रुचि नही ले रहा है। पिछले कुछ वर्षों से समाज विज्ञान एव मनोविज्ञान के क्षेत्र म इस विषय पर कुछ साहित्य प्रकाश म आया है—उसका अध्ययन करना चाहिये तथा दैनिक जीवन मे

उसे व्यवहार मे लाना चाहिए उनकी तकनीकों के अनुसार काय करना चाहिए पढना ही काफी नही है, महत्वपूर्ण यह है कि उस पर प्रयोग किया जाय। जब भ अवसर मिले नायक के गुणो का व्यवहार कीजिये, नायक के रूप मे काय कीजिये।

जनतान्त्रिक भावना

अपने आपको पहचानिये कि आप कहाँ हैं ? क्या काम किस तरह से कर हैं ? मित्रो को प्रभावित करते हैं ? जिस प्रकार के वातावरण में आप रहते ं आप उसी प्रकार के व्यक्ति बन जायेंगे। यदि आप तानाशाही वातावरण म रह हैं तो *आपका व्यवहार भी वसा ढल जायेगा। लोकप्रिय नायक बनने के लिये साथियं मित्रो की राय के अनुसार काय करने क लिय आवश्यक है कि जनतान्त्रिक वातावर* रखा जाय। यदि सम्भव हो तथा आप पसद करें तो दल के साथ *काय कीजिय* काम करते समय जनतान्त्रिक प्रणाली को ध्यान म रखिये। कुछ अनुभवहीन व्यत्ति एसा व्यवहार करते हैं कि उनके साथ काम करने वाले दब्बू बन जाते हैं जिस उसके नायक के गुणो का विकास नही हो पाता।

एक उदाहरण से जनतान्त्रिक भावना अधिक स्पष्ट हो जायेगी। कक्षा किये जाने वाले विभिन्न कार्यों के लिये एक समिति बना दीजिये। अब कल्पन कीजिये कि एक विद्यार्थी स्कूल देर से जाता है—प्रश्न उठता है—उस विद्यार्थी वे साथ क्या किया जाय ? यह काय अब उसी समिति को करने दीजिये—समिति ने विभिन्न सदस्यो को उस छात्र से बात करने दीजिये, समझने दीजिये, चेतावनी दें दीजिये, जुर्माना करने दीजिये। प्रधानाध्यापकजी को भी इस समिति को मान्यत देनी चाहिये। समिति के सही एव उपयुक्त निर्णयो को स्वीकार भी करना चाहिए, जह वे भिन्न राय रखते हो वहा डाट फटकार से नही *तक से बच्चो को समझाना चाहिय। इससे विद्यार्थी यह अनुभव करेंगे कि स्कूल मे अनुशासन बनाये रखने के लिए उनक* भी बडा योगदान है। स्कूल उनका है। उसे बनाने बिगाडने के लिये वे भी शिक्षव जितने ही जिम्मेवार हैं। स्वय गलती करने वाले विद्यार्थी से उसका अनुभव कराय जा सकता है। इससे होने वाली हानि उसके ध्यान म लाई जा सकती है। साथियं द्वारा आपसी विचार विमश के बाद लिया गया निर्णय अधिक प्रभावी होगा। अपराधी स्वय अनुभव करेगा कि यह निर्णय स्वय उसी का है। उसी के साथियो का है—स्कूल के हित के लिए ऐसा निर्णय आवश्यक समझा गया है—इस सबक सिवाय कि निर्णय अधिकारियो द्वारा इस अपराधी छात्र/छात्रा पर लादा नहीं गया है। इसी का कहते हैं जनतान्त्रिक प्रणाली।

देश भक्ति

विद्यार्थियो म देशभक्ति का विकास कीजिये। पर देश भक्ति विवेक आधारित हो। *विद्यार्थियो को ज्ञान होना चाहिय कि हमारे देश की अतीत*

सभ्यता क्या थी ? संस्कृति क्या थी ? जीवन के मान क्या थे ? उस पर वह आलोचनात्मक दृष्टि से सोचें। देश भक्ति में तीन बातें सम्मिलित होनी चाहिए—(1) देश की सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्राप्तियों के प्रति सराहनीय दृष्टिकोण, (2) स्वच्छंदता में गलतियाँ स्वीकार करना व उनके निवारण के उपाय करना तथा (3) अपनी पूरी शक्ति से पूरे मन से उसे प्राप्त करना सिखाया जाय पर अन्धा प्यार नहीं। इतिहास के महान पात्रों को इस संबंध में महत्त्वपूर्ण स्थान देना उचित होगा।

परिवर्तन में विश्वास

दल में कार्य करते समय विभिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त कीजिये। आप केवल प्रधान के रूप में ही कार्य करने के लिये तैयार न रहें बल्कि मंत्री, लेखक, सेवक, संरक्षक आदि सब के रूप में कार्य करने के लिये तैयार रहिये। इससे आप भिन्न भिन्न अनुभव प्राप्त करेंगे। बड़े-बड़े कारीगरों का काम बदला जाता है। प्रभावी नायक दल के संगठन का विशाल एवं सही दृष्टिकोण से देखते हैं। किसी एक विभाग के एक व्यक्ति को जब पदेन नायक बना दिया जाता है उसे विभिन्न प्रकार के अनुभव नहीं होते हैं—यही उसके साथ कमी रहती है। समय आने पर अपने आपको बदलने के लिये भी तैयार रहिये—किसी भी बात पर दृढ़ता से चिपक न जाइये। किसी पहलू पर फिर से विचार करने की आवश्यकता हो सकती है। बदलती हुई स्थितियों में उस पर निर्णय भी बदला जाना चाहिये। परिवर्तनों के लिए प्रयोग पर आग्रह कीजिये।

दूरदर्शिता

दूरदर्शी बनिए। इससे आपको ही नहीं, राष्ट्र को भी लाभ होगा। यदि पड़ौसी राष्ट्र विध्वंसकारी योजना बनाता है तो दूरदर्शी नायक राष्ट्र को चेतावनी दे सकता है तथा समय पर राय भी प्रकट कर सकता है। बच्चों को यह सिखाया जाना चाहिए कि वे विवेक से सही व गलत, या भले बुरे का निर्णय कर सकें। इस रुझान का विकास सफल भावी जीवन को नये रूप में ढालेगा। नेतृत्व के विकास में लगन, महत्वाकांक्षा सतत परिश्रम, इच्छा शक्ति एवं विचार शक्ति का भी अपना स्थान है। दल के लिये सोचिये तथा सुविधायें जुटाइये चुनौतियों से लोहा लीजिये। स्वच्छ, स्वस्थ एवं सन्तुलित चिन्तन व दृष्टिकोण का विकास कीजिये। नायक को अपनी शक्तियाँ केन्द्रित कर लेनी चाहिये तथा किन्हीं वांछित विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रवृत्त करनी चाहिये। आज जबकि मांगों का अन्त ही नहीं है, चारों तरफ होड़ लगी हुई है तनाव बढ़ रहे हैं ऐसी स्थिति में यह और भी आवश्यक हो जाता है। उसे सभी छोटी बातों तक का भान होना चाहिये।

शक्ति एव बुद्धि

शक्ति से नेतृत्व का विकास होता है अत शरीर को मजबूत बनाइये पर ध्यान रखिये केवल मजबूत शरीर ही सब कुछ नही है, मानसिक योग्यता भी महत्त्व पूर्ण है। कुछ अशो म शरीर की लम्बाई व भार की अपेक्षा मानसिक योग्यता कही अधिक महत्त्वपूर्ण है। अधिक ज्ञानी व्यक्ति अधिक प्रश्नो का शीघ्र उत्तर दे सकेगा व स्थिति को सम्भाल लेगा। भविष्य मे होने वाली घटनाओ का अधिक वस्तुगत रूप से बता सकेगा। किसी भी विषय का सघन एव विस्तृत ज्ञान उसे सदव सफलता के माग पर अग्रसर करेगा। पर कई बार शक्ति ही सफलता म भी बदल जाती है। वह व्यक्ति जो विभिन्न काम कर सकता है वह भिन्न भिन्न समय लोगो को सन्तोष देकर अनुभवी बना सकता है।

सामाजिक सम्बन्धों का विकास

सामाजिक विश्वास का विकास कीजिय। यदि नायक म ही यह गुण नहीं है तो वह मित्रो म इसका विकास नही कर सकता। पर आत्म विश्वास की मर्यादा पार कर लेनी भी अत्यन्त हानिप्रद है। उत्साह दल पर जादू का सा प्रभाव करता है। जो नायक काय पसद करता है वह काय की दुनिया म रहता है। उसका चिन्तक दल एव काय केन्द्रित होना चाहिये। वह चुनौती देता तथा चुनौती पसद भी करता है। नायक का दल का प्रतिनिधित्व करना होता है, उसे दल के भले के लिये सोचना है। नायक स्वय समूह का सदस्य है। अनौपचारिक रूप से मित्रो से मिलिये। मित्रों को सूचनायें दीजिय तथा मित्रो से सूचनायें इकटठी कीजिय। अपनी समस्याएँ सुल झाने मे मित्रो का मदद दीजिय। सामाजिक क्षेत्रो मे सहानुभूति से वह साथियो से सम्पक बनाये रख सकेगा तथा उनकी जरूरतो से परिचित रहेगा। ऐसा करने से वह आपत्तियो से बचा रहेगा। इससे नायक मानवीय कल्याण मे वृद्धि कर सकेगा। सामाजिक सम्बन्धो की वजह से भ्रातृत्व का विकास होगा।

अनुयायियों का ज्ञान

अनुकरण नेतृत्व का प्रथम महत्त्वपूर्ण चरण है। यदि अनुयायी ही नहीं होगे तो नेतृत्व होगा किनका ? सफल नायक के लिये आवश्यक है कि वह अपने अनुया यियो के बारे म पूरा पूरा ज्ञान रखे। नायक अपने आप पर अपने सवेगो पर नियन्त्रण रखे—इससे वह अपने साथियो को आसानी से अपनी राय से सहमत कर सकेगा, अपनी हाँ में हाँ मिलवा सकेगा उनका हृदय जीत सकेगा। स्व नियन्त्रण से ही साथियो पर नियन्त्रण रखा जा सकेगा।

चरित्र

चरित्र नायक की सफलता का बहुत बडा घटक है। नतिक चरित्र के साथ व्यक्तित्व के गुणो का इस तरह से गठबन्धन बनाइये जिस तरह कि दूध से पानी

पथक नहीं किया जा सके। बुद्धि व शक्ति से चरित्र का निर्देश मिलता है। गम्भीरता व पराश्रयता चरित्र के आवश्यक तत्त्व हैं। विशाल नेतृत्व के लिये वयक्तिक दृढ़ता एव सच्चाई नितान्त आवश्यक है। चरित्र म विश्वास को संयुक्त किया जा सकता है। चिड़चिड़ापन, आशाहीनता एव निराशा मित्रों को प्रोत्साहन नहीं दे सकती। अपनी शक्ति म विश्वास, सुनहले भविष्य म विश्वास विश्व म विश्वास आदि सभी उच्च श्रेणी के नेतृत्व के गुणों के विकास म रीढ की हड्डी का काय करते हैं। नतिक एव आध्यात्मिक पहलू भी चरित्र का एक महत्त्वपूर्ण अग है। प्लेटो ने एक बार कहा था कि चट्टानो व वक्षो स राष्ट्र नहीं बनता, पर राष्ट्र निर्माण के लिये उच्च कोटि का चरित्र चाहिये।

भिन्न भिन्न रुचियाँ

अनुयायियों की अपेक्षा कार्यकारी नायक विभिन्न प्रकार की अधिक रुचियां रखते हैं—इस बात के प्रमाण मिलते हैं। उनका अध्ययन विशाल होता है। वे विभिन्न विषयो पर बडी बुद्धिमता से बात कर लेते हैं। विभिन्न प्रकार की रुचियां उन्हें दो प्रकार से लाभ पहुँचाती हैं। प्रथम, इससे काय के भार से मुक्ति अनुभव होती है तथा सतुलन बना रहता है एव द्वितीय, अगली बार जानी हुई समस्या सहसा घटने पर या आने पर बहुमूल्य एव उपयोगी विचार आपकी मदद के लिये प्रस्तुत हैं। कल्पना कीजिये कल्पना से ही आप समस्याओं के हल खोज लेंगे। नायक के लिए आयोजन के रूप मे यह गुण बड़ा उपयोगी है।

स्वमूल्यांकन

अंतिम पर महत्त्वपूर्ण कि अपना मूल्यांकन अवश्य कीजिये। यह बहुत आवश्यक है। इसके लिये कई विधियाँ प्रयोग की जा सकती है। आपको आलोचनात्मक स्थिति म रखिये तथा मूल्यांकन कीजिये। दिन और सप्ताह की घटनाओं की समीक्षा करते समय केवल मित्रों की बात पर ही निर्भर न रहिये। देखिये कि आप किस प्रकार व्यवहार करते हैं। काम ठीक हो रहे हैं या नहीं, आपका व्यवहार व दृष्टिकोण कितना सहायक होता है। अपने मित्रों के साथ आपके कसे सम्बन्ध हैं तथा आप मित्रो का कितना सहयोग प्राप्त कर पाते है? यह भी महत्त्वपूर्ण है।

जिन पर आप विश्वास करते है उनसे यह प्रश्न पूछे जा सकते है। आपको इससे अपनी कमी बेसी का पता लगेगा। अच्छा काय कीजिये तथा अच्छा बुरा सब वस्तुगत रूप से बता सकने वाली प्रविधि की माग दशक चुनिये। आप मित्रों से ही चेक लिस्ट पर उत्तर पूछ सकते हैं आप स्वय भी अपना परीक्षण कर सकते है, जिन मित्रों के साथ आप है जिस दल म आप काय कर रहे है, जो काम आप कर रहे हैं। जिस दल के आप सदस्य हैं। जिस स्थिति मे आप हैं उसी म सत्यासत्य परीक्षण कीजिये। सहकार के साथ विभिन्न स्थानों पर मित्रों के साथ काम करने वाला नायक अपने म तथा मित्रों म भी नायक के गुणों का विकास करता है।

जॅन फ्रसेथ के अनुसार सफल नायक मे निम्न गुणो का होना आवश्यक है—

1 एक नायक को कक्षा के साथिया को बिना डराये धमकाये उनके सामने चुनौतिया प्रस्तुत करनी चाहिये उसे साथियो को अधिकतम निकटता से देखना चाहिये, तभी वह रचनात्मक काय कर सकता है।

2 एक नायक को प्रत्यक्ष तथ्य के विपरीत कभी राय नही देनी चाहिये। निर्णय करते समय इन तथ्यो का आदर करना चाहिये, उसे विश्लेपणात्मक रूप स सोचने की शक्ति का विकास करना चहिये।

3 एक नायक को वातावरण समभने की तरकीब का अभ्यास करना चाहिये जिससे मानवीय शक्ति को अधिकाधिक रचनात्मक काय मे लगाया जा सके उससे दूसरा की भावनाओ, विचारो एव दष्टिकोणा का आदर करना चाहिये।

4 एक नायक को हर समय मित्रो को आगे बढाने के लिय प्रयत्न करते रहना चाहिय। अपने आप मे ही केन्द्रीय रहना सफल नतृत्व के लिय बाधक हो सकता है।

5 एक नायक को अपने साथियो की बात धय पूवक सुनना चाहिये और उद्देश्य प्राप्ति के लिये मित्र अधिकाधिक शक्ति के अनुसार योगदान कर सकें इसके लिये सुविधायें जुटानी चाहिय।

शाला म शिक्षक विद्यार्थियो मे नेतृत्व के गुणो के विकास क लिये पर्याप्त योगदान कर सकते हैं। शाला म व माता पिता के रूप म मान जाते हैं। घर का वातावरण भी इसम मदद करता है। बच्चा म माता पिता आपसी व्यवहार के माध्यम से वांछित गुणा का विकास कर सकते हैं, पर शाला का योगदान अधिक हो सकता है इसीलिय शिक्षका की जिम्मेदारी भी अधिक आती है। विद्यार्थिया की विभिन्न मनोवैज्ञानिक आवश्यक्ता मे भी शाला म हमजोली साथिया के बीच पूरी हानी रहती है। एन सी सी बालचर, गल गाइड सम्मेलन, नाटक, अभिनय, सास्कृतिक कायक्रम विभिन्न प्रकार से मदद करते हैं। बहुत सीमा तक छात्र सभा विद्यार्थिया म उत्तरदायित्व एव पहल करन के गुणा का विकास करने का अच्छा माध्यम है। यदि विद्यार्थिया को अपनी इच्छाओ, सवेगो तथा जरूरतों की अभिव्यक्ति का पूरा अवसर दिया गया हो सहगामी क्रियायें कदम कदम पर सहायक होगी। इसस उनके मानसिक तनाव भी कम होगे। विद्यार्थिया म आत्म विश्वास एव सहकार का विकास होगा। विद्यार्थी समाज से स्वीकृत सम्मान पाना चाहते हैं। यदि वह उसे समाज से मिलना है तो फूल की भांति चमक उठगा तथा न मिलने पर तनाव बढने हैं। ऐसी स्थिति म शिक्षक को बडी सावधानी से व्यवहार करना चाहिये। आज देश को आवश्यकता है ऐसे नायका की जो समस्याओं को सहानुभूति एव विशाल दृष्टिकोण स देख सकें। प्यार सहकार, सेवा, त्याग आदि नेतृत्व के मूलाधार हैं। केवल पुस्तकीय ज्ञान ही काफी नही है। विद्यार्थियों को अवसर दीजिये वे नेतृत्व कर

सकें। छात्र सभा के कार्य, बस में बैठना, डाकघर से पोस्टेज खरीदना, जलगृह से पानी पीना, दीवाल पत्रिका निकालना, श्रम, सेवा सफाई दिवस, अभिनय करना या भ्रमण की व्यवस्था करना आदि कई ऐसे कार्य हैं जिनसे विद्यार्थियों को व्यावहारिक रूप से नेतृत्व के गुणों को विकसित करने के अवसर मिलते हैं। विद्यार्थियों को प्रश्न करने दीजिये तथा शिक्षक उन प्रश्नों का उत्तर देकर बच्चों की जिज्ञासा शान्त करने को तत्पर रहें।

सभा भवन बड़े बड़े राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सन्त महात्माओं के चित्रों से सुसज्जित हो। समय समय पर ऐसे महान व्यक्तियों के जन्म दिवस भी मनाये जायें तथा उनके जीवन पर नाटक भी खेला जाय। सभी धर्मों के सम्मान प्राप्त उनके गीत व भजन गाये जायें। त्यौहारों व पर्वों का आयोजन विद्यार्थियों को नये रूप से सहानुभूति की ओर अग्रसर करेगा। इससे उनमें समूह भावना का विकास होगा। सच्ची बात यह है कि बिना कक्षा में धर्म पढ़ाये भी विद्यार्थियों में सही रूपों में व्यावहारिक धार्मिक शिक्षा के अंकुर बोये जा रहे हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ये कार्य क्रम शाला कार्य के अभिनव अंग बन जाने चाहिएँ। इन सबके लिए आवश्यक है कि प्रधानाध्यापक या शाला प्रधान प्रगतिशील विचारों के हों तथा उनका विश्वास हो कि शिक्षा उनके विस्तृत अर्थों में सामूहिक प्रयास है, उस कार्य करने की जनतांत्रिक प्रणाली में विश्वास हो। उसे अपनी विभिन्न योजनाओं से शिक्षकों व विद्यार्थियों को सन्तुष्ट व जानकार रखकर सहयोग प्राप्त करना चाहिये। उसे शिक्षकों व विद्यार्थियों का विश्वास प्राप्त होना चाहिये। माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार माध्यमिक शालाओं का मुख्य दायित्व यह होना चाहिये कि वे विद्यार्थियों को इस प्रकार के नागरिकों के रूप में प्रशिक्षित करें कि वे नेतृत्व का उत्तरदायित्व वहन कर सकें।

———

3 अवकाश के लिए शिक्षा

जो व्यक्ति बिना विश्राम किये काम करता है, उसे कई बार 'काय के दास' की सज्ञा दी जाती है। निकट भूतकाल म कार्याधिक्य की प्रशसा की जाती थी। माता पिता तथा शिक्षक भी बच्चो को हर समय पढते देखकर प्रसन्न होते थे। उस छात्र को जिसके हाथ मे हर समय पुस्तक रहती थी, अच्छा गिना जाता था। इसी प्रकार कमचारियो व नौकरो को भी प्रात से अधिक देर तक रात म काय करना पडता था। इसी प्रकार ठेकेदारो के नीचे काम करने वाले मजदूरो की, उद्योगपतियो की दूकानो पर काम करन वाल दूकानदारो की स्थिति बडी दयनीय हो रही थी। पर आज सभी के सामने समस्या है कि अवकाश का उपयोग कसे करें ? आज सभी शिक्षा शास्त्री एक मत से कहने लगे हैं कि शालाओ महाविद्यालयो व समाज शिक्षा केद्रो पर अवकाश के लिए शिक्षा दी जानी चाहिए।

अवकाश का अथ

अवकाश का महत्त्व समभने के पूव इस प्रत्यय से परिचित होना आवश्यक है। अवकाश का अथ जानन के लिए विभिन्न विद्वानो की परिभाषायें दी जा रही हैं। इडामा वन के अनुसार अवकाश का तात्पय ऐसी स्वतन्त्र क्रियाओ से है जो जीविकोपाजन के लिए नही की जाती है। वास्तव म देखा जाय तो अवकाश वह समय है जब एक व्यक्ति अपना मनचाहा काय कर सकता है। इसका अथ उस समय है जिसम कोई ऐसा काय न दिया जाय जिससे व्यक्ति को बाध्य होकर आवश्यक रूप से करना पडे। डा० रगनाथन अवकाश के समय को वह खाली समय मानते हैं जो किसी शारीरिक, आर्थिक, स्वास्थ्य सम्बधी या आध्यात्मिक आवश्यकता के काय से घिरा न रहता हो।

अवकाश ऐसा समय होता है जब हृदय म अवस्थित भावो का विभिन्न क्रियाओ के माध्यम से समुचित प्रकाशन होता रहे और साथ-साथ व्यक्तियो के तनावों, उदासीनता और सुस्त कामो से मुक्ति मिलती रहे। इससे उसको दिन भर के किये हुए कार्यों से विश्राम भी मिल जाता है। वह दुगुने उत्साह स शक्ति सचय कर रुचि के साथ काय म सलग्न हो जाता है। इससे उसकी नये काय करने की क्षमता म भी वृद्धि हो जाती है।

अवकाश व आलस्य मे अन्तर

अवकाश व आलस्य म अन्तर है। आलस्य से तो यह अथ निकलता है कि व्यक्ति जब उसे कोई काय आवश्यक रूप से करना है तब भी न करे और हर समय सुस्ती दिखाये। अवकाश स तात्पय है कि काय करने के पश्चात का वह समय जब व्यक्ति अपना आवश्यक कत्तव्य पूरा कर चुका है और उस समय उसे अपने चाहे काय को करने की स्वतन्त्रता है। यह वह समय होता है जब व्यक्ति अपना मन वह लाव कर सकता है। दफ्तर मे या विद्यालय मे या दूकान पर या कारखानो मे जब जब व्यक्ति काय करके और अपन उत्तरदायित्व का निभा कर छुट्टी पाता है तो उसके अवकाश का समय प्रारम्भ होना है। एसे समय मे यदि वह खाली बठा रहे और कुछ न करे तो यह उसका आलस्य कहलायेगा किन्तु यदि वह उस समय मे कुछ ऐसी क्रियाओ मे व्यस्त हो जाय जो उमके व्यक्तित्व के सवागीण विकास म सहायक हो और समाज व नियमों के विरुद्ध न हो तो वह अवकाश उपयोग करने वाला कहलायेगा।

अवकाश का उपयोग न करने से खतरे

Saint Thayumcueauer के अनुसार यह असम्भव है कि व्यक्ति बिना काम के एक क्षण भी रह सके। अवकाश म करने के लिए कोई न कोई काय होना ही चाहिए। बिना काय के अवकाश व्यक्ति को खा जायगा, उसका सवनाश कर देगा। इसी प्रकार आलस्यवश गप्पें लगाना एक धुन है जिसस आने वाली पीढी भी पथभ्रष्ट हो सकती है। अव्यवस्थित अवकाश राष्ट्र की चेतना शक्ति समाप्त कर देता है। एसे अवकाश व प्रति सावधान रहना चाहिए जिस अवकाश म कोई काय न करना हो। अवकाश म कोई न कोई काय किया ही जाना चाहिए। अवकाश के सदुपयोग के लिए पूव तयारी व सुविचार पूण योजना आवश्यक है। अवकाश के समय म पढ़ने के साथ साथ यदि अवकाश के उचित उपयोग की शिक्षा व्यवस्था नही है तो समाज का पतन निश्चित है क्योकि खाली समय म मानव बिना किसी उचित शिक्षण के बुरे रास्ता को अपना लेगा। पुरानी कहावत के अनुसार खाली दिमाग शतान का घर होता है।

अवाछनीय व्यवहार व बालापराध के निवारण हेतु भी अवकाश के लिए शिक्षा आवश्यक है। न्यूनतम रूप स 13 स 18 वष के अपराध करने वाला मे म० गोविन्द स्वामी के अनुसार 15 से 20 प्रतिशत तक किशोर होते हैं। यह भी समझ लिया जाना चाहिए कि बच्चे जो स्कूल के समय के बाद गग के साथ रहते हैं वे भी गैंग वाले ही काय करते हैं। प्रयोग व साहसी कार्यों की उनके पास कोई योजना नही है न व्यक्तिगत योग्यताओ के अनुसार ही काम लेन की योजना है। शहरी क्षेत्र के बच्चो के पास घर म जगह भी नहीं होती है जहाँ कि वे अपने सामान्य कार्यों को

सम्पन्न कर सकें। इसलिए आवश्यक है कि विद्यालय उन्हे मनोरञ्जन के लिए पर्याप्त सुविधाएँ प्रदान करे।

यह भी अनुभव किया जाता है कि अवकाश से सभ्यता का निर्माण होता है, व्यक्ति जब स्वतन्त्र होता है तो सृजन करता है वह कविता लिखता है सगीत सीखता है, अभिनय करता है, हस्त उद्योग या कला का एक आदर्श नमूना प्रस्तुत करता है। इन सब सृजनात्मक कार्यों की नीव विद्यालय मे पडती है यद्यपि बच्ची में मानवीय सृजनात्मकता की प्रवृत्ति से आरम्भ होती है।

लम्बी छुट्टियो के दौरान शिक्षका व छात्रो का काफी अवकाश मिलता है। कौन नही जानता है कि परीक्षाओं के बाद विद्यार्थी कितनी अधिक बातें करते हैं। उन्हे दिना व सप्ताहो का अवकाश मिलता है। महात्मा गांधी कहा करते थे कि वयस्क विद्यार्थी छुट्टियो मे ग्रामीण प्रौढो को साक्षर कर सकते हैं। ग्रामीणा को इस तरह की शिक्षा देना चाहिए कि वे अध्यापक के जाने के बाद भी बिना शिक्षक की मदद के पर पुस्तकालय की सहायता से अपनी पढाई जारी रख सकें। पर हां, शिक्षको के चले जाने के बाद भी उनसे सम्पर्क बनाये रखना चाहिए। शिक्षा जगत ही यह बहुत बडी समस्या है कि प्रौढो की रुचि के अनुसार उनके मनोवैज्ञानिक धरातलो पर उनकी जरूरतो के अनुसार साहित्य की बडी कमी है।

अवकाश के समय की इन सृजनात्मक क्रियाओ स कई लाभ हैं। प्रथम इनसे व्यक्ति को आलोचनात्मक ढग से सोचने के विचार का विकास होता है। द्वितीय, सहसा एकाग्रता बनाने का मौका मिलता है। तृतीय, इसमे बच्चा को समुदाय की रुचि, शक्तियो का विकास बुद्धि, कल्पना व श्रम करने का अवसर मिलता है। ये क्रियाएँ भविष्य म उनके लिए अवकाश मे करन के लिए आन ददायक कार्यों के क्षेत्र तयार कर देंगी। यह देखा गया है कि जहाँ अवकाश की समस्या सही तरीके से हल की जाती हैं वहाँ नये गुणो का विकास होता है।

अवकाश केवल नगर की ही समस्या हो, एसी बात नही है। गाँवा मे प्राय 60 प्रतिशत व्यक्ति 6 माह बेकार रहते हैं। यह वह समय होता है जबकि काय बहुत कम होता है। कुछ भी हो, श्रम विभाजन के कारण गाँवो म भी सभी को अवकाश मिलने लगा है। सध्या समय सभी अवकाश मे ही रहत हैं। यह समय प्राय लडने *झगडने गप्पें लगाने, जुआ खेलने, शराब पीने मुकदमबाजी व अन्य षडयन्त्रो म* बीतता है। आधुनिक समय म प्रजातन्त्र उनके अवकाश पर अन्य प्रभाव डाल रहा है और वह है राजनतिक विचारो का प्रचार।

अवकाश की क्रियाओ का न केवल सजनात्मक महत्त्व ही है बल्कि चरित्र के निर्माण मे भी महत्त्वपूर्ण भाग है। सार रूप म डीन इगज स्पक्कूलम इनमी का अनुच्छेद *दिया जा सकता है—*

व्यक्ति की आत्मा का स्थान, उसका व्यक्तित्व उन चीजो से तय होता है जिनमें उसकी रुचि है, जिनमे उसे स्नेह है। जो कुछ हम देखते हैं, उसे हम प्यार करते है—जो कुछ हम हैं वसा ही हम देखते हैं। इस नियम से कोई बचा हुआ नही है। जहाँ मण्डार हैं, वही हमारा लक्ष्य भी होगा। हमारे उपयोगी मित्रो मे काम करता कोई अर्थपूर्ण नही है, यदि हमारे दिमाग, मुद्रा, उच्चाकाक्षा, स्वहित या किसी पक्षपात से मुक्त नहीं है। दिमाग पर अवकाश के विचारो एव कार्यों का बडा प्रभाव पडता है। अवकाश के लिए शिक्षा की आवश्यकता ह।

यह देखा गया ह कि अवकाश के लिए बिना शिक्षा दिए हुए व्यक्ति अवकाश का सदुपयोग करना नही सीख पाते। बालक को आरम्भ से ही अवकाश के लिए शिक्षा देना आवश्यक है अन्यथा वह बडा होकर अवकाश के समय को नष्ट कर देगा।

वयस्क अवकाश का सदुपयोग करें, इसके लिए आवश्यक है कि अवकाश लाभदायक तरीके से व्यतीत करने की शिक्षा बचपन से ही दी जाय। शोधो मे पाया है कि जो बालक या पुरुष अवकाश के हितकारी उपयोग मे लगे हैं वे अवकाश कालीन क्रिया कलापो म भी अपनी मौलिकता एव ताजगी बनाये रखते है।

पाठशाला की अध्ययन स्थिति की तुलना कारखाने की काय स्थिति से की जा सकती है। जिस प्रकार कारखाने के श्रमिक को सन्तोष प्राप्त नही होता उसी प्रकार विद्यालय को भी सन्तोष नही मिलता। पूरी शिक्षा ही किताबी तथा यान्त्रिक है, उसका वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध ही नही है। पूरी शिक्षा व्यवस्था ही परीक्षा पर केन्द्रित है—परीक्षा पर बहुत बल दिया जाता है तथा परीक्षा की सफलता ही शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य हो गया है। आज भी ऐसे शिक्षको की कमी नही हैं जो सहगामी क्रियाओ मे भाग लेना समय नष्ट करना समझते हैं। विद्यार्थी विद्यालयो से उदासीन ही निकलते हैं तथा उन्हें विद्यालयो से कोई जीवन सम्बन्धी अनुभव भी प्राप्त नहीं होता। अत सरकार का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि अवकाश बिताने की सही व्यवस्था करें। श्री सीरिल बट ने अपराधो के आँकडो का अध्ययन करके यह स्पष्ट कर दिया है कि अधिकतर अपराध अवकाश के समय म किये जाते हैं। यही तक युवापराध के लिए भी दिया जा सकता है। अवकाश के समय का एक सन्तुलित कायक्रम अनेक दुगुणो को पनपने स भी रोकना है। तव यह निश्चित समझिये कि इससे शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य, सन्तुलित व्यक्तित्व संवेगों, योग्यताओ, चातुर्यों एव विचारधाराओ का उचित विकास होगा।

अवकाश की समस्या, उसका महत्त्व

अवकाश एक वरदान है। किसी देश की सभ्यता व सस्कृति का ज्ञान इससे प्राप्त किया जा सकता है कि उस देश के निवासी अवकाश का समय कसे बिताते

हैं। वास्तविकता यह है कि अवकाश का मानव जाति के साथ साथ जन्म हुआ। वर्तमान काल म मनुष्यो का प्राचीन काल की अपेक्षा कही अधिक अवकाश मिलने लगा है। सभ्यता के विकास के लिए दो तत्व जरूरी हैं प्रथम, पर्याप्त सम्पत्ति और द्वितीय पर्याप्त अवकाश। अवकाश से सभ्यता व सम्पन्नता मे वृद्धि होती है। प्राचीन काल मे बहुत ही कम लोगो के पास रुचि व व्यवहार म परिवर्तन लाने के लिए दोनो वस्तुए (सम्पत्ति व अवकाश) थी। मशीनी सभ्यता के आधुनिक काल की उपज अवकाश बीसवी शताब्दी की एक समस्या है। जीवन मे जितना अधिक विज्ञान का प्रयोग हो रहा है जीवन की सामान्य आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए विज्ञान का प्रयोग होने लगा है उसी अनुपात म व्यक्ति को अवकाश भी अधिक मिलने लगा है, यद्यपि कुछ दशाब्दियो पूर्व ऐसी स्थिति नही थी। यह सही है कि जो कुछ कहा है वह व्यावहारिक नही तो भी यह सही है कि शहरी बस्ती म या श्रमिक बस्ती म रहने वालो को पर्याप्त अवकाश मिलता है।

मशीनो के आविष्कार के साथ साथ व समूह उत्पादन (Mass Production) के फलस्वरूप हर नागरिक को अवकाश मिलने लगा है और अवकाश केवल धनी वर्ग के लोगो तक ही सीमित नही रहा है। मशीनो द्वारा अधिक मात्रा म उपभोक्ता के लिए सुन्दरतम उत्पादित वस्तु प्रस्तुत करने के सिवाय मशीनो स अतिरिक्त समय भी मिलने लगा है। माध्यमिक विद्यालय का एक छात्र जो विद्यालय छोडने के बाद जीवन म प्रवेश करता है तो बहुत अवकाश पाता है। अत यह जरूरी है कि विद्यालय मे अवकाश का सदुपयोग करना सिखाया जाय। मनोविनोद के कार्यों को इससे संयुक्त किया जा सकता है।

अवकाश के लिए शिक्षा की प्रकृति

अवकाश के लिए शिक्षा देना सरल काम नही है। ऐसी शिक्षा की व्यवस्था बहुत सावधानी से करनी चाहिए। अब यह प्रश्न उठता है कि अवकाश के लिए दी जाने वाली शिक्षा उदार हो या व्यावसायिक। लोगो का विश्वास है कि व्यावसायिक शिक्षा व्यक्ति के मानस को ऊपर नहीं उठाती है। पर आज मान्यता के आधार पर यह तक समाप्त हो गया है तथा शिक्षा म यह भेद भी सरलता से नहीं किया जा सकता। व्यावसायिक शिक्षा भी उदार हो सकती है तथा उदार शिक्षा व्यावसायिक भी।

शिक्षा की प्रकृति आदि के सम्बन्ध मे निर्णय लेने से पहले यह आवश्यक है कि खोजो द्वारा यह पता लगा लिया जाय कि विभिन्न आयु स्तर पर बालको की मनोरंजन सम्बन्धी क्या रुचियाँ हैं? फिर उन्हीं के अनुसार शिक्षा का आयोजन किया जाय, क्योकि इस समय तक सर्वमान्य कोई निश्चित तथ्य इस प्रकार के नहीं

हैं जो बालकों की विभिन्न आयु स्तर पर रुचियों की ओर संकेत करें। उचित यह है कि विद्यालयों में बहुत प्रकार के मनोरंजन के साधन उपलब्ध कराये जायें जो हर प्रकार की रुचि वाले बालक की आवश्यकताओं की पूर्ति करें।

वयस्क और बच्चे का, पुरुष और नारी का, व्यापारी और मजदूर का अवकाश भिन्न भिन्न होता है। फलतः इनको विभिन्न प्रकार के शारीरिक आराम की भी जरूरत पड़ती है। उदाहरण के लिए दिन भर परिश्रम करने वाला मजदूर सुखद परिवर्तन के लिए फुटबाल जैसे खेल में प्रवृत्त नहीं हो सकता, पर सम्भवतः वह ताश या सरल साहित्य के अध्ययन से अपने तन्तुओं का आराम पहुँचा सकता है। दूसरी ओर गहन चिन्तन करने वाले एक बुद्धिजीवी व्यक्ति को अपनी मांस पेशियां हिलाने वाले खेल हॉकी या फुटबाल की जरूरत है। एक भाग दौड़ वाला खेल किसी युवक या किशोर में ताजगी ला सकता है पर वही खेल एक वृद्ध के लिए हानिकारक हो सकता है। अतः मनोरंजन के ये क्रिया कलाप विभिन्न आयु स्तर के लिए भिन्न भिन्न होने चाहिएँ।

इन सब के अवकाश का ऐसा उपयोग होना चाहिए कि व्यक्ति के जीवन में आनन्द प्राप्त हो, उसकी वैयक्तिक, मनोवैज्ञानिक जरूरतें पूरी हों। अवकाश के लिए शिक्षा दोनों-बच्चों व वयस्कों को दी जानी चाहिए। वयस्कों का निरक्षरता की दृष्टि से आवश्यक है कि जो भी हो इसकी शुरुआत विद्यालयों में हो। डॉ मुकर्जी के अनुसार बच्चों की शिक्षा इसलिए आवश्यक है कि वे आने वाले समय में जनतन्त्र की रक्षा कर सकें। अवकाश के लिए दी जाने वाली शिक्षा का स्वभाव ऐसा हो कि स्कूली जीवन के बाद भी वयस्क जीवन में रुचियां व क्रियाओं से तालमेल बना सके। विद्यालय समाज का सही रूपों में प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था बन सके। सभी एवं उचित प्रवृत्तियाँ विद्यालय जीवन से ही विकसित की जा सकती हैं न कि आगे के जीवन में। यह तभी सम्भव है जबकि शाला केवल परीक्षा पास करने बहुत मात्रा में गृह कार्य करने और अन्य शैक्षणिक कार्यों में भाग लेने तक ही केन्द्रित न की जाय। बच्चों को अवकाश के लिए शिक्षा मिले इसके लिए यह जरूरी है कि बच्चों का विद्यालय में अनुभव प्रदान करना चाहिए। बच्चों में रुचि वभिन्न्य उत्पन्न करना चाहिए और उनकी मौलिक मानवीय इच्छाओं की तृप्ति की जानी चाहिए। काम के जीवन को अवकाश पूर्णता देगा तथा अवकाश के जीवन को काम पूर्णता देगा। अतः विद्यालय का यह कर्तव्य होना चाहिए कि विद्यार्थियों में बहुविध दृष्टिकोण का विकास हो।

विद्यार्थियों को अवकाश के लिए शिक्षा देने के लिए एक अच्छे शिक्षक या नेता की आवश्यकता है। यह अध्यापक दूसरे अध्यापकों से सहयोग प्राप्त करके बालकों को अवकाश के समय में उचित प्रकार के मनोरंजन में भाग लेने को प्रोत्साहित करेगा। अध्यापक जो इस प्रकार की शिक्षा देने के लिए चुना जाय उसे बालकों

का प्रेम प्राप्त होना चाहिए। डडे के जोर से काय करने वाला अध्यापक बालको को लाभ के स्थान पर सम्भव है हानि पहुँचाय। अवकाश के लिए शिक्षा देने वाले शिक्षक म निम्नलिखित गुण होने चाहिएँ —

1 सहानुभूति तथा प्रेम पूवक व्यवहार करने की योग्यता।
2 बालको को सगठित करने की योग्यता।
3 विभिन्न आयु स्तर पर बालको की रुचिया एव प्रवृत्तियो के सम्बन्ध म ज्ञान।
4 मनोरञ्जन के साधना सम्बन्धी उचित ज्ञान। और
5 बालको म मौलिक कल्पना के विकसित करने की क्षमता।

बच्चो म यह जागरूकता उत्पन्न करनी चाहिए कि वे पुस्तकालय की पुस्तको का सही व अधिकतम लाभ उठायें। वाछित उपयोगी पुस्तकें कसे प्राप्त हो, इसके लिए समाचार-पत्रो मे आने वाली समीक्षाओ से मदद ली जा सकती है।

अवकाश के समय की क्रियाएँ

अवकाश के समय की क्रियाओ का विद्यालय म उचित सगठन होना चाहिए। बालक को अवसर मिलना चाहिए कि वह इन विभिन्न क्रियाओ म भाग लेकर अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके। क्रियाएँ या प्रवृत्तियाँ यदि सावधानी पूवक चुनी गइ तो बालका के लिए लाभदायक सिद्ध होंगी। इनका चुनाव करते समय निम्नलिखित बातो को ध्यान मे रखना चाहिए—

1 *क्रियायें ऐसी हो जिनसे बालको का मनोरजन हो सके।*
2 क्रियायें ऐसी हो जो वयस्को की जरूरतें पूरी कर सकें, जसे सामाजिक सेवा के कार्यों मे भाग लेना।
3 वे बालकों की वयक्तिक रुचिया जरूरतों तथा योग्यताओ के अनुसार हो तथा उनम भाग लेना उनकी स्वेच्छा एव रुचि पर निभर हो।
4 वे सृजनात्मक तथा रचनात्मक आनन्द प्रदान करें जिससे सवेगात्मक सन्तोष प्राप्त हो।
5 वे मानवीय प्रेम को समाज की श्रेय विचारधारा व कार्यों के साथ सयुक्त कर सकें तथा वे किसी के व्यक्तित्व पर प्रभाव डालने मे समथ हो।
6 अवकाश की क्रियाओ का समाज की परम्पराओ, सास्कृतिक व सामाजिक वातावरण से निकट का सम्बन्ध हो।
7 वे बालकों का शारीरिक एव मानसिक दोनो दृष्टिकोणो से विकास कर सकें।
8 वे बालका के आवश्यक सतुलन को बनाये रख सकने मे समथ हो।

9 बालकों के व्यक्तिगत भेदों का ध्यान में रखना भी आवश्यक है। दूसरे शब्दों में क्रियाओं में विविधता होनी चाहिए और विविधता अवकाश की आत्मा है। और

10 वे बालकों में सामूहिक जीवन तथा सामाजिकता का भाव भर सकें।

ये सिद्धान्त वयस्क स्तर पर भी समान रूप में लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं। वयस्कों में यह आदत डाली जानी चाहिए कि वे स्वस्थ क्रियाओं में भाग लें। वयस्क स्तर पर अवकाश के लिए शिक्षा समाज शिक्षा या प्रौढ़ शिक्षा की सुनियोजित प्रणाली पर ही सफल हो सकती है। इस दिशा में ग्रामीण व शहरी प्रौढ़ शिक्षण केन्द्रों के लिए काम करने के लिए पर्याप्त क्षेत्र है। वयस्क स्तर पर अवकाश के लिए शिक्षा हेतु परोपकारी संस्थाओं, राज्य व उद्योगपतियों द्वारा स्वस्थ कार्य कलाप की सुविधायें जुटानी चाहिएँ। कुछ अशोभनीय कार्य मद्यपान, जुआ तथा अनैतिकता फैलाने वाले चलचित्रों का प्रदर्शन बंद होना चाहिए।

खेलकूद की क्रियायें

प्रत्येक विद्यालय में खेलकूद की क्रियाओं का आयोजन होना चाहिए। ये क्रियाएँ बालक की शारीरिक दृष्टि से विकास में सहायक होती हैं। इसके अतिरिक्त इनमें मनोरंजन एवं सामाजिकता का विकास निहित रहता है। ये बालक के मानसिक संतुलन के लिए आवश्यक हैं। खेलकूद की क्रियाओं में शारीरिक व्यायाम, क्रीड़ा प्रतियोगिता क्रिकेट, हाकी फुटबाल वॉलीबाल, कबड्डी, बैडमिन्टन टेबिल टेनिस आदि एवं अन्य भारतीय खेलों का आयोजन होना चाहिए। इन खेलों द्वारा बालक में सहयोग आत्मानुशासन आदि गुणों का विकास होता है। इन खेलों के अतिरिक्त विद्यालयों में आभ्यान्तर खेलों का भी प्रबन्ध होना चाहिए। नीति शास्त्र या ज्ञान शास्त्रों की अपेक्षा खेल के मैदान में कहीं अधिक सुग्राह्य प्राप्त होता है।

कला शिक्षा

अवकाश के समय दी जाने वाली कला शिक्षा का यह उद्देश्य नहीं होना चाहिए कि वह कलाकार तैयार करे वरन् बच्चों की सुन्दरता को अवलोकन करने की इच्छा की पूर्ति करे। संसार में बहुत से चित्रकार हैं पर प्रकृति की सुन्दरता परखने वाले विरले ही हैं। बच्चों को इस तरह शिक्षित कीजिये कि वे अपने चारों ओर बिखरा सौन्दर्य देख सकें तथा संसार के भद्देपन को दूर कर सकें। कला भगवान दिया है तथा छात्र सुगमता से सतत प्रगति कर सकता है।

सरस्वती यात्राएँ एवं वन विहार

विद्यालय में बालकों को उल्लास के साथ सरस्वती यात्राओं तथा वन विहार को जाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। ये यात्राएँ बालक की मूल प्रेरणाओं को उचित मार्ग में प्रकाशन का अवसर देती हैं। विद्यालय जीवन से जो थकान और

नीरस जीवन बालक अनुभव करता है, उसे इन अवकाश की क्रियाओं मे भाग लेकर दूर कर सकता है। बालक इन क्रियाओं द्वारा नई शक्ति और स्फूर्ति प्राप्त करता है। शिक्षा के दृष्टिकोण से भ्रमण की भी व्यवस्था की जानी चाहिए। भ्रमण प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्ति का एक साधन है। भ्रमण से दूसरे मनुष्यो से सम्पर्क होता है, मानवीय सम्बन्धो का विकास होता है सामाजिक एव नैतिक धरातल ऊपर उठता है। अवकाश के समय मे नाना प्रकार के प्रसिद्ध ऐतिहासिक एव सांस्कृतिक स्थानो को देखकर नाना प्रकार का ज्ञानार्जन करना चाहिए। समुचित विकास के लिए स्थानीय भ्रमण की आवश्यकता है।

संगीत शिक्षा

संगीत आत्म प्रकाशन एव सवेगो के मार्गान्तिकरण का एक साधन है। संगीत के बिना जीवन नीरस हो जाता है। पाठयक्रम म 1/6 भाग समय संगीत के इतिहास व संगीतज्ञो की जीवनियो के अध्ययन के लिए तथा 1/6 भाग संगीत श्रवण के लिए तथा शेष समय अभ्यास के लिए होना चाहिए। संगीत सीखने वालो की संख्या निरंतर बढ रही है। यह इस बात का प्रमाण है कि जन जीवन मे संगीत महत्त्वपूर्ण स्थान लेता जा रहा है।

बालचर, ए सी सी, एन सी सी

ये क्रियाएँ बालको मे विशेष प्रकार की रुचियां एव योग्यताएँ उत्पन्न करती हैं। इन क्रियाओं द्वारा बालको म अनेक गुणो का विकास भी हो जाता है जैसे— स्फूर्ति, सेवा, कर्मठता कार्य क्षमता चतुरता विनय अनुशासन व्यावहारिक बुद्धि, समाज सेवा, व्यवहार कुशलता नेताओं के प्रति श्रद्धा राज्य के प्रति भक्ति कठिन परिस्थितियो का मुकाबला करने की शक्ति आदि। इस प्रकार ये क्रियायें बालक के चारित्रिक, शारीरिक एव मानसिक विकास मे सहयोग देती हैं।

चलचित्र

अवकाश बिताने का सबसे आसान व प्रिय साधन है छविग्रह। एक पिक्चर का समय सवा दो घण्टे से लेकर पौने चार घण्टे तक होता है। सेंसर बोर्ड को हानि कारक फिल्मो पर रोक लगानी चाहिए तथा इस क्षेत्र म व्यावसायियो को प्रोत्साहन देना चाहिए कि व अच्छी शैक्षणिक व सामाजिक फिल्म तैयार कर सकें। सिनेमा से मनोरजन के साथ साथ समाज को भी शिक्षित किया जा सकता है जन साधारण के ज्ञान म वृद्धि की जा सकती है। कार्य करने के लिए इस सम्बन्ध म भी शिक्षको के सामने बहुत बडा क्षेत्र पडा है कि वे अच्छी व बुरी फिल्मो म भेद कर सकें तथा जन साधारण से अच्छी फिल्मे देखने का आग्रह किया जा सकता है।

नाट्य शिक्षा

अभिनय आदि में भाग लेने के लिए भी बालकों को प्रोत्साहन देना चाहिए। अभिनय से व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक विकास होता है। नाटक द्वारा बालक अपने व्यक्तित्व की संकीर्णता से निकल कर बाहर आता है और अधिक व्यापक ढंग से सामाजिक जीवन में भाग लेता है उसके बहुत से नियन्त्रण दूर हो जाते हैं और बालक को आत्म प्रकाशन के अवसर मिलते हैं, सही उच्चारण सीखा जा सकता है मचकला सीखी जा सकती है। इसमें मुख्यतः पात्रों के रूप में काम करने वालों का योगदान भी रहता है। पर दर्शकों को भी प्रभावित कर शिक्षित किया जा सकता है। नाटक लिखकर व्यक्तियों को प्रभावित करना टेढ़ा काम है। यदि व्यक्ति उस नाटक को पढ़े तो उस नाटक में आये विचारों से सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। नाटक खेलने से बालकों के सामाजिक आत्मप्रदर्शन मानसिक स्वास्थ्य, आदि गुणों का विकास होता है।

स्वास्थ्य शिक्षा

आज जन साधारण का स्वास्थ्य निम्न स्तर पर दिखाई देता है। शहरों की स्थिति तो और भी दयनीय है। नागरिकों को पूर्ण आहार नहीं मिलता यह स्थिति केवल भारत की ही हो सो बात नहीं है। कई पश्चिमी विकसित देशों में भी जनता अर्द्ध संतुलित या असंतुलित आहार पाती है। सार्वजनिक स्वास्थ्य के बारे में कई नियम बना लिये गये हैं फिर भी लोक स्वास्थ्य का स्तर सन्तोषजनक नहीं है। स्वास्थ्य सम्बन्धी एक सर्वेक्षण से पता है लगा है कि 70 प्रतिशत व्यक्ति किसी न किसी रूप में अस्वास्थ्य के शिकार हैं।

साहित्यिक क्रियाएँ

महापुरुषों की जीवनियाँ—माता पिता एवं शिक्षकों का कर्त्तव्य है कि वे बालकों को महापुरुषों की जीवनियाँ व उच्च साहित्य पढ़ने को उपलब्ध कराएं, जिससे वे महान आदर्शों को ग्रहण कर अपने में उपयोग करें तथा स्वयं एक महापुरुष बनकर मानव जीवन का कल्याण करें। साहित्यिक क्रियायें बालकों के मानसिक एवं बौद्धिक विकास में बहुत भाग लेती हैं ये क्रियायें उन्हें बौद्धिक ज्ञान प्रदान करती हैं। इस प्रकार की जिन क्रियाओं का विद्यालय में आयोजन किया जा सकता है उनमें से कुछ हैं-साहित्यिक गोष्ठी, वाद विवाद प्रतियोगिता, भाषण प्रतियोगिता अन्त्याक्षरी इत्यादि से छात्रों में आत्माभिव्यञ्जन की भावना उत्पन्न होती है। कवि सम्मेलन आदि भी बालकों में सौन्दर्यानुभूति की भावना को प्रोत्साहित करते हैं।

समाज सेवा

समाज कल्याणकारी क्रियाएँ मानव समुदायों के जीवन स्तर को समाज द्वारा स्वीकृत जीवन स्तर तक उठाने के लिए सामूहिक व्यवस्थित प्रयास हैं। **कार्य** वैयक्तिक

रूप से किया जाता है पर मूल ध्येय सामान्य जनता के जीवन स्तर म वृद्धि करना हैं। जो न्यक्ति इनसे सयुक्त हैं उन्हें समयानुसार इनसे सन्तोष मिलता है, पर ध्येय मानवी सेवा होना चाहिए। समाज सेवा श्रमदान, आग बुझाना, अकाल बाढ, भूचाल, आदि के समय पीडितो की सेवा इत्यादि काय भी अवकाश के लिए महत्त्वपूण हैं। इन क्रियाओ द्वारा बालक के चरित्र का तो विकास होता ही है, इसके अतिरिक्त राष्ट्र की सेवा भी होती है ये काय सामाजिकता एव देश प्रेम की भावना मे वद्धि करने मे बहुत सहायता करते हैं। बागवानी पशुपालन प्राथमिक चिकित्सा कला गृह विज्ञान, दस्तकारी, बचत व विनियोग भी इसी प्रकार की क्रियाएँ हैं।

अवकाश गह

इस प्रकार के स्थानो की भारत म बडी कमी अनुभव की जाती है। कुछ स्थान बडे बडे शहरो मे देखने को अवश्य मिल जाते हैं। सरकार की ओर से इन स्थाना पर रेडक्रास बालचर, गल गाइड की शिक्षा दी जाय जिससे न्यक्ति एक दूसरे के निकट आ सकें एक दूसरे को समझ सकें विचारो का आदान प्रदान हो सक। इन्ही के माध्यम से राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय सदभावना का विकास भी किया जा सकता है।

रुचि काय हाबिज

रुचि काय रा शब्द कोष के अनुसार अथ है–एसा रुचिपूण काय जो उसका मुख्य व्यवसाय नही है। प्रो० रगनाथन क अनुसार यदि किसी न्यक्ति का मुख्य व्यव साय चिकित्सा काय है तो चिकित्सा शास्त्र का विस्तृत व गहन अध्ययन उसका रुचि काय नही हो सकता। इसके विपरीत वे अपनी बात के पक्ष मे तक करते हैं कि ऐसा असगत है–अमानवीय है क्योकि व्यक्ति की उस व्यवसाय के प्रति महान घृणा हो जायगी तथा उदासी छा जायगी।

रुचि कार्यों से अवकाश के समय का सदुपयोग बहुत ही सुन्दर ढग से होता है। वे बालको को मनोरजन के साथ-साथ उचित अनुभव भा प्रदान करते हैं जो उनके न्यक्तित्व के विकास म पर्याप्त मदद करते हैं। इन रुचि कार्यों को दो भागो म बाटा जा सकता है (1) पठित विषय से सम्बन्धित तथा (2) स्वतन्त्र। विज्ञान के अध्ययन के आधार पर कुछ वस्तुएँ बनाना जसे–फोटो खीचना, इतिहास के विद्या थियो द्वारा सिक्के–टिकिट व चित्र सग्रह करना, स्वास्थ्य शिक्षा के विद्यार्थियो द्वारा केम्प आयोजित करना आदि प्रथम प्रकार की क्रियाएँ है। बुद्धिजीवी शारीरिक श्रम के कार्यों को रुचि काय बनाये तो विश्राम मिलता है। शिविर जीवन से केवल स्वा स्थ्य लाभ ही नही होता वरन स्थायी रुचि एव अनुभव भी प्राप्त होते हैं। इनसे अनपढ न्यक्ति न केवल प्राप्त होने वाले अवकाश का ही सदुपयोग करेंगे वरन उन्हें आर्थिक दृष्टि से भी लाभ होगा जिससे उनका जीवन स्तर ऊँचा उठेगा। यदि इन क्रियाओ से व्यक्ति को आनन्द न मिले तो निश्चित समझिये कि अवकाश के लिए मिलने वाली शिक्षा अधूरी मिली है।

अवकाश के लिए दी जाने वाली शिक्षा के लिए प्रो० रगनाथन ने पाठ्यक्रम भी तयार किया है जिसमे उन्होंने लगभग सभी विषयो का स्थान दिया है, निम्न-लिखित क्रियाओ को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए, प्रत्यास्मरण पाठ्यक्रम भारत सेवक समाज के कार्य बढईगिरी, सास्कृतिक समारोह, भजन मडली, नवयुवक मडल, पर्व, त्योहार, उत्सव व जयन्तियां मनाना, सूई का काम, कसीदाकारी, विदेशी भाषा सीखना, पत्र मैत्री सामूहिक नृत्यगान नौका विहार, सामुदायिक केन्द्र, पशु-पक्षी पालन गृहविज्ञान एव गृह अर्थ शास्त्र, काष्ठ कला कुम्हारगिरी, मछली पालन, प्रबन्ध कला, मुद्रण कला, तरना एव प्रकृति निरीक्षण। प्रकृति निरीक्षण लिखते समय लेखक को शिमला की सुरम्य घाटियों के बीच बनी 'रीज पर विनोद करना, आनन्द मनाना सहसा याद हो जाता है। हर व्यक्ति छोटे बडे सभी सध्या समय घूमन निकलत हैं तथा उस 'रीज पर बठकर आनन्द मनात हैं। पक्षियो का कलरव सुनत हैं एक दूसरे से मत्री होती है, सम्बन्ध दृढ बनत हैं, तथा एक दूसरे का निकटता से सोचने समझने का अवसर मिलता है आपस म भाई चारा बढता है।

अवकाश का सदुपयोग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता है। अवकाश के उपयोग पर राष्ट्रीय-चरित्र एव सद्भाव निर्भर हैं। इन सब बातो पर विचार करने से स्पष्ट है कि अवकाश के लिए उचित शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है।

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियायें

अवकाश की समस्या को हल करना चाहिए और हर स्कूल को सहगामी क्रियाओ के रूप मे पर्याप्त मनोरजन की सुविधाएँ देनी चाहिए। यह आवश्यक नही है कि हर स्कूल हर सम्भव सभी कार्यक्रम आरम्भ करदें। साधनों के अनुसार कुछ कार्यक्रमो को चुन लेना चाहिए। क्रियाओ की सख्या व विविधता का ध्यान रखत समय छात्रो की सख्या व स्कूल की आवश्यकता भी ध्यान म रखनी चाहिए। कभी-कभी अन्धानुकरण करके छोटे स्कूल बड़े कार्य चुन लेत हैं जिससे धन, समय व शक्ति व्यर्थ नष्ट होत है।

इन क्रियाओ का उद्गम सहगामी क्रियाओ म निहित है। उदाहरण के लिए साहित्य के प्रति रुचि, ललित कला के प्रति रुझान व सरस्वती यात्राएँ आदि कक्षा के अध्यापन के परिणामस्वरूप ही विकसित होती हैं। एक कविता का शिक्षक तभी सफल है जबकि वह अपने छात्रो को कविता के लय व स्वर के सगीत का आनन्द उठाने योग्य बना देता है। वह उनके जीवन म प्रकाश व आनन्द का सचार कर देता है। इसी प्रकार इतिहास का शिक्षक अपने छात्रो को राणा प्रताप, शिवाजी तथा नेपोलियन के बारे म विस्तृत अध्ययन के लिए प्रेरणा दे सकता है। इसी भांति विद्यालय पत्रिका स्कूल के कुछ छात्रो द्वारा विभिन्न विषयों पर लिखे गय निबन्धो के सग्रह के रूप मे आरम्भ की जा सकती है।

यह भी ध्यान म रखना चाहिए कि शाला की सामूहिक क्रियाओं के समान ही प्रयोग के रूप म कक्षा के स्तर पर प्रारम्भ में शुरू की जा सकती है। धीरे धीरे उनका क्षेत्र विस्तृत करके सारे स्कूल को समाविष्ट किया जा सकता है। फिर भी कक्षा एक इकाई के रूप म उसका सचालन बराबर करती रह सकती है। उदाहरणार्थ स्कूल की साहित्यिक परिषद कक्षा की साहित्यिक परिषद से पदा होती है। जब स्कूल की साहित्यिक परिषद भली भांति जम जाय तब भी कक्षा की साहित्यिक परिषद की समाप्ति की आवश्यकता नही है। इस प्रकार दिन भर का स्कूल का नियमित काम अवकाश के लिए शिक्षा के कई अवसर देता है पर प्राय सीमित होता है। क्योंकि औपचारिकता तथा अनौपचारिकता बरती जाती है। वह व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर ध्यान नही देती और प्राय स्कूल की सामान्य आवश्यकताओं को ध्यान म रखा जाता है।

शिक्षण प्रक्रिया म कक्षा की व स्कूल की क्रियाओं अपना अपना स्थान रखती हैं। व एक दूसरे को अधिक सुन्दर बनाती हैं इसके कई कारण हो सकते हैं। कक्षाध्यापन म समानता रहती है जबकि सहगामी क्रियायें विभिन्नता प्रदान करती हैं। कक्षाध्यापन औपचारिक है जबकि सहगामी क्रियाएँ अनौपचारिक। कक्षाध्यापन प्राय शिक्षक केन्द्रित होता है जबकि सहगामी क्रियायें प्राय छात्रों द्वारा सम्पादित होती हैं। शिक्षा दर्शन जो कि विद्यार्थी को स्कूल म सीखने वाला नागरिक मानता है, शिक्षाविदों म महत्त्वपूर्ण स्थान पाता जा रहा है। सहगामी क्रियाओं के क्षेत्र में बच्चों को कई अनुभव मिलते हैं पर यह सब इस पर निर्भर करता है कि सहगामी क्रियाओं का सचालन किस प्रकार हो रहा है।

अवकाश के लिए शिक्षा देते समय बरती जाने वाली सावधानियाँ

अवकाश के लिए शिक्षा देते समय यह याद रखना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति एक ही प्रकार की क्रियाओं म रुचि नही ले सकता। रुचि की विभिन्नता तथा व्यक्ति के काम की रूपरेखा को ध्यान म रखकर ही अवकाश के लिए शिक्षा देनी चाहिए। इस शिक्षा से व्यक्ति की कार्य कुशलता म वृद्धि होनी चाहिए। इसका अर्थ उसके काम से सम्बन्ध विच्छेद होना कदापि नहीं है। काम की नीरसता से मुक्ति मिलनी ही चाहिए। इसका अर्थ शिक्षा का व्यावसायिक होना भी नहीं है। अवकाशकालीन अध्ययन, काम या अनुभव आनन्दप्रद होना चाहिए ताकि वे जीवन का पूर्णता प्रदान कर सकें।

व्यक्ति उस समय प्रसन्नता अनुभव करते हैं जब उन्हें आत्म प्रदर्शन के अवसर प्राप्त होते हैं जिसमें सृजनात्मक प्रवृत्ति का भास होता है और वे रचनात्मक कार्यों म रुचि लेते हैं। अवकाश के लिए शिक्षा देते समय इन सभी बातों को ध्यान म रखना चाहिए। बालक को अवकाश के समय ऐसी क्रियाओं को करने के लिए

प्रोत्साहित किया जाय जो उनकी रचनात्मक प्रवृत्ति को प्रदशन का अवसर दे। इस प्रकार उनका मनोरजन भी होगा और उनके व्यक्तित्व का विकास भी उचित दिशा म होगा।

यदि मनोरजन के साधन उपयुक्त होते हैं तो व्यक्ति के अवरुद्ध सवेगो को प्रकाशन का अवसर मिल जाता है। वह चिताओ आदि से मुक्त होकर प्रफुल्लित हो जाता है, रूखे-सूखे काम करने मे जो मानसिक तनाव उनमे घर कर जाते हैं वे मनोरञ्जन के द्वारा ढीले पड जात हैं और व्यक्ति फिर अपने को ताजा समझने लगता है तथा कठिन परिश्रम के लिए तयार हो जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि अवकाश के लिए शिक्षा देते समय मनोरजन पर अधिक बल दिया जाय। यदि व्यक्ति को यह सिखाया जाय कि मनोरजन के उपयुक्त साधन क्या हैं और किस प्रकार उनका उपयाग किया जाता है तो वह अपने तनावा को कम कर सकता है।

अवकाश का दशन यह है कि व्यक्ति यदि किसी काय को देर तक करता रहता है तो वह थक जाता है और आराम की जरूरत अनुभव करता है। परन्तु विभिन्न व्यवसाया म लगे हुए मनुष्या का विभिन्न प्रकार से मनारजन होता है। एक दिन भर महनत मजदूरी करने वाला व्यक्ति काम करने के बाद बठ कर कुछ पढ़ना या गृह खेलो का खेलना पसन्द करता है जबकि एक बठे बठे काम करने वाला अन्य व्यक्ति भाग दौड कर खेला द्वारा अपना मनोरजन करना चाहता है। अवकाश के लिए शिक्षा दते समय इस बात को ध्यान मे रखना चाहिए। बालक को घर के खेलो व मदान के खेला दोना म रुचि लेना सिखाना चाहिए जिससे वह बडा होकर बालक जसा व्यवसाय अपनाये और उसी के अनुसार अपना मनोरजन उचित ढग से कर सके।

अवकाश के लिए शिक्षा देने म एक बात और ध्यान देने याग्य है कि मनारजन की क्रियाओ के साथ साथ सामाजिक व नतिक मूल्य भी सम्बन्धित हैं। जब बालक खेल आदि के नियमा को मानकर चलता है तो उसमे नतिकता की भावना का विकास होता है। जब वह किसी टीम म दूसरे साथियो के साथ मिल कर खेलता है तो वह सामाजिक मूल्या को समझने म सफल होता है। खेल कूद अथवा दूसरे मनारजना द्वारा जब व्यक्ति एक दूसरे के सन्निकट आते हैं ता वे एक दूसरे की भावनाओ का आदर करना सीखते हैं तथा इस प्रकार उनम सामाजिकता एव नतिकता का विकास होता है। अत अवकाश के लिए शिक्षा देते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि यह शिक्षा इस प्रकार से दी जाय जिससे बालको म नतिकता एव सामाजिकता का विकास हो।

सत्य बात तो यह है कि लोग प्रस नतापूवक एव उपयोगिता के साथ अवकाश बिताने के लिए शिक्षित हो । वे कार्यों को करने के लिए उच्च भावना की प्रवृत्ति रखते हो । इसलिए उनके काय म शारीरिक व मानसिक दोनो प्रकार की वृद्धि होती है । औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र म हुई शोधो ने सिद्ध कर दिया है कि जहाँ मजदूरो को अवकाश काल क क्रिया क्लापो के साथ सगठित किया गया है वहा काय के फलस्वरूप उपज उच्चत्तर रही है । साथ ही मानसिक एव शारीरिक रोगो की घटनायें तुलनात्मक रूप से कम हुइ हैं । अत यह कहना उचित है कि अवकाश के लिए शिक्षा, कार्यों के लिए अप्रत्यक्ष शिक्षा है ।

यत्र युग ने जसा कि नाम से ही स्पष्ट है, एक ओर सवमान्य मजदूर के लिए अवकाश प्रदान किया है तो दूसरी ओर उसके लिए अनकानेक समस्यायें खडी कर दी हैं—जस अवकाश का किस प्रकार बुद्धिमत्ता एव उपयुक्त रूप से सदुपयोग किया जाय । इसलिए इस बात का ध्यान रखना और भी आवश्यक हो गया है कि शिक्षा, काय और अवकाश क बीच सतुलन बना रह ।

विद्यालयो की वतमान स्थिति

अब यह देखना चाहिए कि क्या आज पाठशालाओ म अवकाश के लिए शिक्षा की व्यवस्था है ? अवकाश के लिए शिक्षा क माध्यम स राष्ट्रीय चरित्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव जसे उत्तरदायित्व को विद्यालय कहा तक निभा रहे हैं ? आज सभी शिक्षा शास्त्री यह पूरा रूप स स्वीकार करते हैं कि विद्यालय केवल सीखने की नियमित सस्था ही नही है वरन् समाज की अपन सजीव सदस्यो को जीने की कला सिखाने वाली सस्था है । हर अच्छे विद्यालय म सामाजिक सास्कृतिक और शारीरिक शिक्षा का प्रबन्ध होता है लकिन आज की स्थिति सन्तोषजनक नही है । इसका मुख्य कारण यह है कि अवकाश शिक्षक एव प्रधानाध्यापक के लिए एक सबल चुनौती है । शिक्षक स्वय अवकाश की माग को पूरी करने मे अपने आपको असमथ पाते हैं जो कि नई शिक्षा की माग है । वह उत्तरदायित्व से मुक्ति पाता है तथा उसकी जगह दूसरी काल्पनिक बातें जमा देते हैं। कभी बच्चो पर ढेर सारा पाठ्यक्रम लाद दिया जाता है तो कभी परीक्षा का भूत सवार हो जाता है तो कभी किसी विषय का विशिष्टीकरण । प्रधानाध्यापक अवकाश से भयातुर होत हैं क्योकि उन्ह उसकी पूर्ति के लिए आधुनिक विचारो के शिक्षको, विभिन्न कायक्रमो के सचालन की सुविधाएँ और पर्याप्त धन राशि की आवश्यकता होती है ।

अवकाश एक सक्रामक रोग के समान है जो विद्यार्थियो को भी प्रभावित करता है । विद्यार्थी अपने खाली समय म उकताने वाले विषयो से बदल जाते हैं । इस उकताहट की पहचान स्नायुमण्डल या ततु से जानी जा सकती है क्योकि कई छात्रो को एक ही काम म नहा लगाया जा सकता है । इन स्थितियो का मुकाबला

करने के लिए अधिकाश विद्यालय न्यूनातिन्यून अवकाश देते हैं। वे जानते हैं कि बच्चो को अवकाश का सदुपयोग करना सिखाया जाता है तो उन्हें अवकाश दिया भी जाना चाहिए।

सन्दर्भ पुस्तकें

रगनाथन — एजूकेशन फॉर लेजर दिल्ली इण्डियन एडल्ट एजूकेशन एसोसियशन 1948, पृष्ठ 24, 25, 26, 57

विलियम बॉयड — दी चेलेन्ज आफ लेजर, लन्दन न्यू एजूकेशन फेलाशिप 1936, पृष्ठ 24 62, 127

बी डी भाटिया — एजूकेशन एण्ड फिलॉसॅफी (हिन्दी सस्करण) बम्बई ओरियेन्ट लौंगमन्स लि०, 1954

जे ब्राऊन — एजूकेशनल सोशियोलॉजी, न्यूयॉर्क टेक्नीकल प्रेस 1934

जे ब्रूबेचर — माडन फिलासॅफीज आफ एजूकेशन न्यूयार्क मेक्ग्रा हिल्स, 1939

डॉ एस एन मुकर्जी — सकेण्डरी स्कूल एडमिनिस्ट्रेशन वडौदा आचार्य बुक डिपो, 1964

डॉ एस एस माथुर — शिक्षा के सामाजिक एव दार्शनिक आधार, आगरा विनोद पुस्तक मन्दिर 1963

4 शिक्षा का अर्थशास्त्र

शिक्षा का अथशास्त्र शीषक नया है। सम्भव है कुछ पाठक ऐसा पढकर आश्चय भी करें, परन्तु जब शक्षिक मनोविनान शीषक बन सक्ते हैं तो कोई कारण नही है कि शिक्षा का अथशास्त्र शीषक न बन सके या इस क्षेत्र की कोई विषय सामग्री न बन सके। शिक्षा के लिये प्राप्त साधनो का सर्वाधिक उचित उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है ? यह शिक्षा प्रशासको के सम्मुख सदव महत्त्वपूण समस्या रही है। शिक्षा का अथशास्त्र इस समस्या का हल प्रस्तुत करता है। पिछली दशाब्दी से शिक्षा का अथशास्त्र पर बहुत कुछ लिखा जाने लगा है। शिक्षा के क्षेत्र म वित्त का प्रभाव, आर्थिक विकास म शिक्षा का योग शिक्षा के लागत व्यय का मापन *शिक्षा के वित्त एव नियोजन की समस्याओ का अध्ययन इसमे मुख्य स्थान रखता* है। यह प्रसन्नता की बात है कि कुछ अथशास्त्रियो ने भी शिक्षा का अथशास्त्र के क्षेत्र म लिखना प्रारम्भ किया है। शोध मे मानवीय सम्पदा का क्षेत्र पिछडा हुआ है। शिक्षा का अथशास्त्र का दो रूपो म अध्ययन किया जाना चाहिए। प्रथम, आर्थिक विकास म शिक्षा का योगदान और द्वितीय शिक्षा का आर्थिक विश्लेषण या शिक्षा व्यवस्था की आर्थिक कसौटी। आर्थिक विश्लेषण बताता है कि छोटी से छोटी गलती कहाँ हुई है तथा सर्वाधिक लाभ प्राप्त करने के लिए साधनो का पुनर्व्यवस्थापन कसे किया जाय ? ये सब बातें अथशास्त्र के सवमान्य सिद्धान्त अन्य बातो के समान रहने पर (Other things remaining equal) आधारित हैं। शिक्षा का अथशास्त्र के इन दोनो रूपो के सम्बन्धो के बारे मे कभी विचार नहीं किया गया। यदि इस सम्बन्ध का जाना जा सके तो और भी कई बातें हल की जा सकती हैं। जसे—अमुक स्तर की व अमुक प्रकार की शिक्षा से देश का आर्थिक विकास हो सकता है तो फिर प्रश्न उठता है कि उस शिक्षा की व्यवस्था क्या हो ? क्या उस पकार की शिक्षा विधिवत शिक्षण सस्थाओ म दी जा सकती है या शिक्षण सस्थाओं से दूर व्यावसायिक सस्थाओ म ? यदि व्यावसायिक सस्थानो मे शिक्षा देनी है तो उद्योगपति क्या कर इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था करने को प्रेरित होंगे ? शाला व शाला से बाहर की शिक्षा का समन्वय कसे होगा ? इसी भाँति अन्य समस्याएँ हैं—अद्ध विकसित या अविकसित देशो के आर्थिक विकास म शिक्षा का योगदान, राष्ट्रीय आय के वितरण पर शिक्षा का योगदान, आने वाले समय म शिक्षा पर

विनियोग के प्रभाव, क्षेत्रीय व जातीय असमानता पर शिक्षा का प्रभाव, शिक्षा व बेराजगारी का सम्बन्ध, आदि शोध के पर्याप्त क्षेत्र हैं।

शिक्षा का आर्थिक भुगतान

अशिक्षित व्यक्ति की अपेक्षा शिक्षित व्यक्ति की आमदनी अधिक होती है तथा समाज को थोडे समय मे अधिक उत्पादन करने वाला शिक्षित व्यक्ति के रूप मे कुशल उत्पादक प्राप्त होता है। शिक्षा के माध्यम से श्रमिको को अधिक ज्ञान तथा कौशल प्राप्त होता है। वे सीखते हैं कि मशीनें व अन्य उपकरण कैसे प्रयोग किय जाते हैं? इस भाति कुशलता से प्रयोग करने से मशीनो की आर्थिक जीवनाशा बढ जाती है। इन सबस निर्विवाद रूप से श्रम की उत्पादकता बढती है। इस प्रकार शिक्षा के व्यय को निर्विवाद रूप से धन विनियोग (Investment) ही मानना चाहिये। इसी भाँति प्रशासको ने भी अब यह स्वीकार कर लिया है कि शिक्षा पर किया गया व्यय मानवीय पूँजी विनियोग (Investment in men) की वृद्धि का सूचक है। शिक्षा का अर्थशास्त्र में मानवीय पूजी विनियोग (Investment) एव उसका मापन महत्त्वपूर्ण अश बन गया है। जिस भाति किसी फम मे या फक्ट्री मे वस्तुओ की लागत सभी खर्च निकालने के बाद आकी जाती है ठीक उसी भाँति पाठशाला म पढने वाल विद्यार्थियो पर होने वाला प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनो प्रकार का व्यय आका जा सकता है। हा यह जरूरी है कि गणना करने वालो को कई सावधानियाँ बरतनी पडती हैं क्योकि शिक्षक केवल पाठशाला मे अध्यापन ही नही करते उन्हें जन गणना के काय मे भी लगा दिया जाता है, कभी उनस अन्य शालाओ के निरीक्षण का भी काय लिया जाता है वे अपनी आग की पढाई के लिये भी तयारी करते हैं विषय का ज्ञान बढान क लिय पुस्तकालय स पुस्तकें भी पढते हैं, शिक्षक अभिभावको से भी सम्पक बनाते हैं अवकाश के समय मे शाला भवन का अन्य उपयोग होता है, विज्ञान विषय की शिक्षा दने वाले स्कूल की प्रयोगशाला का उपयोग दूसरी शाला के विद्यार्थियो द्वारा भी होता है, खेल के मदान मे सकस लगन दना आदि भी सम्भव है। इन सब बातो पर विचार करना आवश्यक होता है। हाई स्कूल या कालज शिक्षा का मापन जीवन के उन दिनो स किया जाने लगा है जबकि व्यक्ति को तुलनात्मक रूप स अधिक आय प्राप्त होन लगती है। इसी प्रकार शिक्षा की लागत भुगतान की दर स जोडी गई है। मापन के विशेषज्ञो ने इनका भी भौतिक विज्ञानो की तरह मूल्यांकन किया है। प्राय व्यवहार म हम देखते हैं कि प्राथमिक शिक्षा प्राप्त एक व्यक्ति उतना नही कमाता जितना एक हाँई स्कूल तक पढा लिखा व्यक्ति कमाता है तथा हाँई स्कूल तक पढे लिखे व्यक्ति की तुलना म एम ए स्नातक अधिक कमाता है। यही कारण है कि सभी उच्च शिक्षा की माँग करने लगे हैं, क्योकि वे जानते हैं कि रोजगार के अवसरो, शिक्षा का विकास तथा

महत्वाकाक्षा मे भी गहरा सहसम्ब व है । पर भारतवप मे जरूरत से अधिक व्यक्ति हाई स्कूल व कला स्नातक स्तर की शिक्षा प्राप्त कर शिक्षण सस्थाओ से बाहर आ रहे हैं। इसीलिये 1967 मे श्री हुसन द्वारा किये गय शाध के अनुसार भुगतान नकारात्मक प्राप्त हुआ है । इसी कारण आजकल लोगो म यह भावना जोर पकडती जा रही है कि बच्चो को प्राथमिक शिक्षा देने की बजाय उनके माँ बाप को पढाना अधिक उपयोगी है । जो बच्चे 5 वष तक पाठशाला मे सीखते हैं वे अपने निरक्षर माता पिता की सगति के कारण भूल जाते हैं। इसलिये यदि अभिभावको को पढाना लिखाना सिखाया जाय तो उनके बच्चे भी किसी न किसी प्रकार पढ लिख जायेंगे। इस के विपरीत कुछ लोग यह भी कहते हैं कि साक्षरता पर इतना जोर देना व्यथ है ।

अधूरी शिक्षा प्राप्त कर शिक्षा सस्था छोड देने वाले विद्यार्थियो का भी आर्थिक व्यवस्था पर प्रभाव पडता है इससे शिक्षा का व्यय भी बुरी तरह प्रभावित होता है । शिक्षा पर होने वाला प्रति छात्र व्यय बढ जाता है । सत्र के बीच म अन्य छात्रो को प्रवेश दना कठिन होता है । जिनकी शक्षणिक उपलब्धि निम्न स्तर की होगी, बहुत सम्भव है, वे बकार ही रहें । पर यह मानना ही होगा कि शिक्षा के अवसरो की वद्धि के साथ यदि शिक्षा के नियोजन दूरदर्शी व वास्तविक अनुमानो को ध्यान मे रख कर किया गया है तो गरीबी व भुखमरी को किस सीमा तक कम किया जा सकता है ।

मानवीय सम्पदा का विनियोग

मानवीय साधनो के मूल्य के विकास के लिये शिक्षा ही एकमात्र उत्तरदायी घटक नही है । हाँ, यह भी महत्वपूण घटको म स एक अवश्य है । मानवीय सम्पत्ति म स्वास्थ्य, कल्याण व प्राविधिक शिक्षा का महत्वपूण भाग है । श्रमिको की कायक्षमता म सुधार ने सभी अथशास्त्रियो शिक्षाशास्त्रियो, समाज शास्त्रियो का ध्यान आकर्षित किया है । प्रशिक्षित व्यक्ति समाज क लिय आवश्यक हैं इससे व्यक्ति व समाज दोनो को लाभ होता है व्यक्ति अधिक दक्ष बन कर कुछ ही घण्टो म अधिक उत्पादन कर सकता ह कम समय म अधिक काम करता है या उतने ही समय म अधिक काम कर सकता है । पहली स्थिति म श्रमिक को अधिक अवकाश मिलता है तथा दूसरी मे वह अधिक पारिश्रमिक पाता है । पहली स्थिति म नइ सभ्यता का जम होता है तथा दूसरी स्थिति म वह बच्चो को अच्छा खिला पिला सकता है । यदि वह पहले से ही अच्छा खिला पिला रहा है तो उनके लिये पौष्टिक पदार्थों की या उच्च श्रेणी की शिक्षा की व्यवस्था कर सकता है ।

शिक्षा न कवल उत्पादन या विनियोग म ही सहायक होती है वरन यह वितरण म भी मदद करती है । साधारणतया एक अल्पवेतन भोगी कमचारी की

शिक्षा भी कम होती है। ज्योंही वह आवश्यक योग्यता प्राप्त करले तो उसे उच्च वेतन के पद पर पदोन्नत किया जाय इससे आय के समान वितरण में भी मदद मिलती है। इसी भांति उच्च आय के व्यक्तियों पर प्रगतिशील दर से कर लगाये जा सकते हैं और इस प्रकार प्राप्त राशि को निर्धनों के लिए कल्याणकारी कार्यों में लगाई जा सकती है, जैसे कि मुफ्त चिकित्सा, रियायती कीमतों पर खाद्यान्न जिससे निर्धन भी सन्तुलित भोजन प्राप्त कर सकें, आदि। इससे सम्पत्ति के समान वितरण में मदद मिलेगी फलतः सामान्य जनता का जीवन मान ऊँचा उठेगा।

जिस भांति मानवीय सम्पदा शिक्षा के विकास से प्रभावित होती है, उसी भांति शिक्षित व्यक्तियों के एक देश से दूसरे देश में आने या जाने से भी प्रभावित होती है। इस प्रकार उच्च स्तर के पढ़े लिखे लोगों के रूप में मानवीय सम्पत्ति का एक देश से दूसरे देश में जाने को अंग्रेजी में ब्रेन ड्रेन (Brain Drain) कहते हैं। भारत में इस प्रकार की क्रिया बड़ी तेजी से चल रही है। यहाँ के उच्च शिक्षित व्यक्ति काफी संख्या में बाहर चले गये हैं और वहीं बसने का इरादा बना लिया है। इससे भारत में प्रति विद्यार्थी शिक्षा का व्यय तो बढ़ जाता है पर पढ़ने लिखने के बाद शिक्षित व्यक्ति का लाभ भारत को नहीं हो पाता है। बाहर उन्हें आकर्षक वेतन सेवा की उत्तम स्थितियाँ मिलती हैं जिनका लोभ वे संवरण नहीं कर सकते। किसी भी देश की आने व जाने वाली मानवीय सम्पत्ति का सही सही अंकन करना आसान कार्य नहीं है।

आर्थिक विकास में शिक्षा का योगदान

यू एन रिपोर्ट के अनुसार शिक्षा केवल जन्मसिद्ध अधिकार ही नहीं है बल्कि आर्थिक विकास व आधुनिकता की पूर्व प्राथमिक अर्थात् मौलिक आवश्यकता है। इसी रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि किसी व्यक्ति या राष्ट्र की शिक्षा के स्तर से उस व्यक्ति या राष्ट्र के जीवन स्तर का संकेत मिलता है। इस भांति यह कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास का सम्बन्ध केवल भौतिक सम्पत्ति तथा श्रमिकों से ही नहीं है बल्कि इसका सम्बन्ध शिक्षा के स्थान तथा तकनीकी ज्ञान से भी है। शिक्षा से व्यक्ति का मानसिक विकास होता है। शिक्षित व्यक्ति अच्छा खाना, अच्छा कपड़ा अच्छा मकान बच्चों के लिये उच्च श्रेणी की अच्छी शिक्षा व मनोरंजन के साधन जुटाना चाहता है। ऐसी स्थिति में शिक्षित व्यक्ति अपने परिवार को भी सीमित रखना चाहता है जिससे कि वह अपनी सीमित आमदनी में इन सब वस्तुओं का उपभोग कर सके। इस प्रकार दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि पाठशाला के जीवन स्तर में प्रगाढ़ सह-सम्बन्ध है। इससे एक सर्वमान्य निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि उच्च जीवन स्तर वाले देशों की शिक्षा का स्तर भी ऊँचा होगा। ज्ञान के विकास से लोगों की आवश्यकताएं बढ़ती हैं, वे नई-नई चीजों की माँग

करते हैं और व्यवसायी लोग अधिक उत्पादन करते हैं इसके लिए उन्हें अधिक मजदूर लगाने पडते हैं। इन्हीं कारखानों मे उन्ही मशीनों पर पदावार बढाने से वस्तुएँ सस्ती बिकनी आरम्भ होती है जिससे बाजार मे वस्तुओं की माग और बढती है इसलिये यह काम चलता रहता है। पर इसके दूसरी ओर बाजार में वस्तुओं की माँग की भी एक निश्चित सीमा होती है। उससे अधिक माँग बाजार में वस्तुओं के कितनी ही सस्ती होने पर भी नही बढ सकती, वस्तुएँ बाजार मे बिना बिकी पड़ी रहेगी। ऐसी स्थिति में उद्योगपतियो को उत्पादन घटाने से प्रति वस्तु उत्पादन लागत अधिक आती है। कभी कभी तो स्थिति यहा तक आती है कि कई उद्योग बन्द हो जाते हैं। इसमे दूसरी ओर कई बार देशी पूँजीपतियों को जब तक इस बात का विश्वास नही होता कि उनकी पूँजी सुरक्षित रहेगी तथा बहुत अधिक लाभ मिलेगा, वे तब तक अपना पैसा उद्योगो में नही लगाना चाहते। यह भी हो सकता है कि उन्हे नये कामो के बारे में जानकारी थोडी होती है।

डेनीसन के अनुसार श्रमिकों की उच्च शिक्षा के फलस्वरूप अमेरिका की राष्ट्रीय आय मे व वहा के आर्थिक विकास मे वृद्धि हुई है। अन्य देशो के लिये भी यही कहा जा सकता है। अब यह सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया गया है कि शिक्षा आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण घटक है। निर्धन देशों को सम्पन्न देशो की तुलना में शुद्ध विज्ञान की प्रगति पर बहुत अधिक पैसा खर्च करने की जरूरत नही है। निर्धन देश को सम्पन्न देशों से विज्ञान का लाभ निःशुल्क उपलब्ध हो जाता है। कभी-कभी नये अनुसंधान के अनुसार काम करने से ऐसे सामाजिक परिवर्तन हो जाते हैं जिनकी वजह से नये विचारो का विरोध हो सकता है। उदाहरणार्थ खजूर के फल से तेल निकालने की केन्द्रीय मिल स्थापित करने से तेल का उत्पादन दुगना हो जाता है लेकिन मिलें स्थापित करने के फलस्वरूप पश्चिमी अफ्रीका के किसानो की पत्नियों को वह अतिरिक्त आमदनी समाप्त हो गई है जो उन्हें तेल निकालने की स्थिति मे मिलती थी और इसलिये वे बड़े जोर के साथ इसका विरोध करती हैं। मिल स्थापित करने से पति पत्नी के बीच श्रम विभाजन में भी परिवर्तन आ जाता है और इस प्रकार के किसी परिवर्तन के बडे दूरगामी और अज्ञात परिणाम होते हैं। ऐसे समुदायों में नवीन प्रक्रिया आसानी से लागू नहीं की जा सकती। जिन समाजो मे प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि नहीं हो रही होती है वहाँ प्रशिक्षण प्राप्त कुशल लोगो की माँग की अपेक्षा पूर्ति अधिक होती है सभी योग्यता प्राप्त एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों को काम देना कठिन होता है। विपन्न देशो में शिक्षा की सुविधाओं के बढने से उच्च प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियो की संख्या बढ़ती जाती है तथा पारिश्रमिक के अन्तर कम होते जाते हैं। प्राथमिक शिक्षा सभी बच्चों को 5 वर्ष तक दी जाय या उनमें से आधे बच्चो को 10 वर्ष तक की शिक्षा दी जाय?

प्राथमिक स्कूलो के सभी शिक्षक माध्यमिक परीक्षा+दो वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त किये हुए हो या छोटे छोटे ऐसे प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की संख्या तेजी से बढ़ाई जाय जो केवल पढ़ना लिखना व गणित भर जानते हों? भारत में भी गुणों की अपेक्षा संख्या पर अधिक जोर दिया गया है। ऐसा करने के दो तर्क दिये जाते हैं—प्रथम उच्च स्तर के प्रशिक्षण के लिये समय व धन दोनों चाहिए। इस भांति पूरी तरह शिक्षा प्राप्त लोगों को ही काम करने दिया जायेगा तो बहुत कम लोग प्राप्त हो सकेंगे, तथा अर्द्ध शिक्षित लोगों की सेवाएँ ली गई तो कहीं अधिक लोगों को राहत मिलेगी। दूसरा तर्क यह है कि अर्द्ध शिक्षित लोग भी काम दक्षता के साथ पूरा कर लेते हैं। यदि इस पर बल दिया गया कि पूरी तरह शिक्षित लोग ही काम पर लगाये जायें तो कौशल की बरबादी होगी।

मेक्लेलेण्ड (McClelland) ने बिजली का उपभोग संकेत मानकर 36 देशों से आंकड़े संग्रह करके बताया कि हाईस्कूल में प्रवेशार्थियों तथा आर्थिक विकास में धनात्मक सह सम्बन्ध है। माध्यमिक शिक्षा व आर्थिक विकास का सायकिल के प्रवाह के समान सम्बन्ध है। विकसित देश प्राथमिक (या कभी-कभी माध्यमिक भी) शिक्षा देश के बच्चों को मुफ्त देते हैं। अविकसित या अर्द्ध विकसित देशों में अशिक्षा की दर बहुत अधिक है। इन देशों में पर्याप्त साधन नहीं हैं। ये माध्यमिक तो क्या प्राथमिक शिक्षा भी सभी बच्चों को निःशुल्क नहीं दे पाते। इसके सिवाय उदार व व्यावसायिक शिक्षा तथा तकनीकी व कृषि की शिक्षा का उचित तालमेल भी इन देशों की प्रमुख तात्कालिक समस्या है। सच तो यह है कि कोई शिक्षा न तो शत प्रतिशत उदार ही हो सकती है और न शत प्रतिशत व्यावसायिक ही। अर्द्ध विकसित या अविकसित देशों में व्यावसायिक शिक्षा से आर्थिक विकास में तीव्र गति मिल सकती है। पर शिक्षार्थियों को सही व उपयोगी नागरिक बनाने के लिये उदार शिक्षा को भी नहीं भुलाया जा सकता। इसी भांति प्रौढ़ शिक्षा पर खर्च व उससे मिलने वाले लाभ पर भी अनुमान लगाया जा सकता है।

जहां तक भारतीय शिक्षा का नियोजन का प्रश्न है शिक्षा का नियोजन तथा कृषि एवं व्यावसायिक विकास से सम्बन्ध जोड़ा जाना चाहिए। यह नियोजनकर्त्ताओं की पसन्द नहीं बल्कि देश की आवश्यकता है। कृषि विकास के दृष्टिकोण से शिक्षा का पाठ्यक्रम तैयार करना चाहिए। पूज्य बापू द्वारा प्रतिपादित बुनियादी शिक्षा के विकास व रोजगार के अवसरों में भी सम्बन्ध जोड़ा जाना चाहिए। वास्तविकता यह है कि अर्द्ध-विकसित देशों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि तथा शिक्षा के विकास की आवश्यकता दोनों ही समान रूप से वाञ्छनीय है।

शक्षिक नियोजन

'शिक्षा म धन विनियोग से विकास' के विचार ने सभी सरकारो को विवश किया है कि वे दूरदर्शी योजनाएँ बनाए*। इस प्रकार की योजनाओ मे भावी शिक्षा की माग उस पर होने वाले व्यय जन बल की वृद्धि आवश्यक प्रशिक्षित जन-बल सामाजिक एव आर्थिक उद्देश्यो का निर्धारण तथा प्राथमिकताओ पर विस्तृत प्रकाश डाला जाना चाहिए। अर्थात नियोजक के मस्तिष्क म स्पष्ट होना चाहिए कि देश के अमुक स्तर के आर्थिक विकास के लिए अमुक मात्रा मे, अमुक प्रकार की शिक्षा आवश्यक है। किसी देश की शिक्षा प्रणाली वहा के व्यावसायिक ढाचे पर भी कुछ सीमा तक निभर करती है। कृषि प्रधान देश भारत के लिये बुनियादी शिक्षा इसका उदाहरण है। यह तथ्य न्यूनाधिक रूप से विकसित एव अर्द्ध या अविकसित सभी देशो के लिए समान रूप से लागू होता है। प्रशिक्षित जन बल की मांग के अनुमान के अनुसार ही पाठशालाओ तथा महाविद्यालयो मे विभिन्न विषयो मे भर्ती की क्षमता बढाई या घटाई जानी चाहिए। किस समय किस प्रकार की दक्षता प्राप्त व्यक्तियो की अमुक सख्या मे जरूरत होगी इसी दृष्टिकोण से पाठशालाओ मे विषयो की व्यवस्था होनी चाहिए। भावी आवश्यकताओ को दृष्टिगत रखते हुए ही नियोजन किया जाना चाहिए। भारत के आर्थिक विकास के लिये शक्षिक नियोजनकर्ताओ को भारतीय जन बल सस्थान के निष्कर्षों पर भी ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार की शोध सस्थाओ के भावी अनुमान बडे उपयोगी सकेत हो सकते हैं। दूरदर्शी शक्षिक नियोजनकर्ताओ को जन बल के नियोजन के लिये अधिक से अधिक घटको पर ध्यान देना चाहिए। विशिष्ट प्रकार की शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को उत्पादन मे विशिष्टीकरण के कारण हर कही काम पर नही लगाया जा सकता। उदाहरण के लिए एक डाक्टर या इजीनियर को दर्जी की दूकान पर नही बठाया जा सकता। इसलिए आवश्यक है कि श्रम बाजार की माग व पूर्ति तथा शिक्षा के बाजार की माग व पूर्ति मे तत्काल सम्बन्ध जोडा जाना चाहिए। इसलिए दोनो पर एक साथ विचार किया जाना चाहिए। इसमे यह मानकर चलना चाहिए कि शक्षिक नियोजन से आवश्यकतानुसार व्यक्ति शिक्षित होकर श्रम बाजार मे उपलब्ध होगे। पर दु ख की बात है कि इन दोनो मे कभी सम्बन्ध नही जोडा गया।

शक्षिक वित्त

अर्द्ध विकसित या अविकसित देशो म शिक्षा के लिए वित्त की व्यवस्था करना सम्भव ही एक बहुत बडी समस्या रहा है। शिक्षा समाज सेवाओ म स एक है। राज्य सरकारें देश के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए योजनाएँ बना रही हैं। इस प्रकार की योजनाओं मे जब भी वित्त की कमी दिखती है तो शिक्षा के क्षेत्र में कमी की जाती है। तकनीकी शिक्षा, और वह भी उच्च स्तर की तकनीकी शिक्षा, इसका

—

अपवाद हो सकती है। नियोजन का उद्देश्य द्रुतगति से आर्थिक विकास है तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया में बड़े बड़े तकनीशियनों की आवश्यकता होती है, अतः उच्च तकनीकी शिक्षा में कटौती नहीं की जाती।

शिक्षा का सम्पूर्ण व्यय सरकार उठाए या जनता या दोनों मिलकर। इस पर विभिन्न विद्वानों ने पक्ष एवं विपक्ष दोनों पर विचार प्रकट किए हैं। कई बार यह भी कहा जाता है कि सरकार शिक्षा संस्थाओं को आंशिक आर्थिक अनुदान दे पर यह अनुदान प्रबन्धकों को न देकर सीधा शिक्षकों को दें। अच्छा हो शिक्षकों का प्रबन्धकों द्वारा लिया जाने वाला शेष धन भी सरकार उनसे ले ले तथा शिक्षकों का सरकार सीधा भुगतान करे तो शिक्षक प्रबन्धकों के शोषण से बच सकेंगे। या सरकार ही ऐसा कोई तरीका निकाले जिससे शिक्षकों का शोषण न हो।

भारतवर्ष में स्वायत्तशासी संस्थाओं ने शिक्षा विकास के लिए शिक्षा कर (Education cess) लगाना आरम्भ किया है। इससे एक तो आमदनी का स्थानीय स्रोत हाथ लगा है तथा इस प्रकार स्थानीय लोगों को भी शिक्षा व्यवस्था से संयुक्त किया गया है। व्यक्ति जब कर देंगे तो देर सवेर शिक्षा संस्था के कार्यों में भी न्यूनाधिक रूप से रुचि लेंगे ही।

इसी स्तम्भ में शिक्षण संस्था भवन, खेल के मैदानों की व्यवस्था, पुस्तकालय, शैक्षणिक यात्राएँ, आवश्यक फर्नीचर आदि पर होने वाले आवर्तक एवं अनावर्तक खर्चों पर भी विचार किया जाना चाहिए। शिक्षा में रुचि लेने वाले दानी व्यक्तियों को प्रेरित किया जाय कि वे शिक्षा के प्रसार के लिए उदारतापूर्वक दान दें तथा शिक्षा संस्थानों के लिए भवन बनवाएँ। ऐसा कहा जा सकता है कि सजगतापूर्वक किये सम्मिलित प्रयासों से शिक्षा के लिए अधिक वित्त की व्यवस्था की जा सकती है।

शिक्षा व्यय का विश्लेषण

जिस भाँति शिक्षा वित्त महत्त्वपूर्ण है उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है उस व्यय का विश्लेषण। शिक्षा की लागत व उसके गुणात्मक सम्बन्ध का इसी शीर्षक में अध्ययन किया जाना चाहिए। विश्लेषण के लिए संस्थाओं की प्रवेश क्षमता तथा शिक्षित विद्यार्थियों की बाहर निकालने की परिभाषा सुस्पष्ट होनी चाहिए। दोनों ही विचार अपने आप में महत्त्वपूर्ण हैं। मुख्य समस्या तो शिक्षित विद्यार्थियों के लागत के अनुमान की आती है। उनको पढ़ाने वाले कभी जनगणना का काम करते हैं या कभी पोस्ट आफिस का काम करते हैं। प्रशिक्षण संस्थाओं में पढ़ाने वाले व्यक्ति कभी शाला का निरीक्षण व सर्वेक्षण करते हैं, कभी शिक्षा विभाग द्वारा खरीदी जाने वाली पुस्तकों की समीक्षाएँ करते हैं, आदि कामों के लिये उनकी कितनी

शक्ति मानी जाय ? फिर उसको मुद्रा में प्रकट कैसे किया जाय ? यही तो कठिन समस्या है ।

कई शिक्षा अर्थ शास्त्रियों ने गुणात्मक शिक्षा को जीवनाशा में प्राप्त किये जाने वाले पारिश्रमिक से जोड़ने का प्रयत्न किया है । मोटे तौर पर केवल दो बातों पर विचार किया जा सकता है । शाला का आकार तथा शिक्षकों का वेतन । भारत के संदर्भ में शिक्षकों की योग्यता के दृष्टिकोण से इस तथ्य पर विचार नहीं किया जा सकता, क्योंकि यहाँ योग्यता के अनुसार वेतन नहीं दिया जाता है । पाठशाला में शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों की संख्या का शिक्षकों के कुल वेतन में भाग लगा कर मोटे रूप से प्रति विद्यार्थी शिक्षा का लागत व्यय मालूम किया जाता रहा है । इन सबके साथ एक अर्थशास्त्री यह भी मस्तिष्क में रखता है कि इन चाहे गये उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अन्य क्या तरीके हो सकते हैं ? प्रतिस्थापन तरीके क्या हो सकते हैं ? क्या उनको प्रयोग करने से प्रति विद्यार्थी लागत व्यय कम होगा ?

एक पाठशाला कितने क्षेत्र के लिए होनी चाहिएँ ? या पाठशाला को क्रमोन्नत करने के लिए सर्वोच्च कक्षा में कितने विद्यार्थी होने चाहिए ? या किसी कक्षा में वर्ग बढ़ाने पर कितने अतिरिक्त शिक्षक उपलब्ध होने चाहिएँ ? आदि बातों का निश्चय करना शिक्षा के अर्थशास्त्री का ही काम है । आदिवासियों में या पिछड़े वर्गों में या महिलाओं में शिक्षा के प्रसार के साथ इन शिक्षा के अर्थशास्त्रियों की मर्यादाओं के अपवाद हो सकते हैं अर्थात् इन क्षेत्रों में विद्यार्थियों की निश्चित संख्या न होने पर भी स्कूल खोले जा सकते हैं या पूर्व से चल रही पाठशालाओं को क्रमोन्नत भी किया जा सकता है । ये सब इस तथ्य पर आधारित हैं कि किय जाने वाले व्यय के बदले में कितना भुगतान (Return) मिलेगा ? शाला आर्थिक प्रक्रिया के रूप में एक उत्पादन इकाई है । जहाँ भूमि व सम्पत्ति के रूप में शाला का भवन श्रम के रूप में अध्यापक पूंजी के रूप में विद्यार्थियों पर किया गया व्यय, प्रयत्न व समय की मात्रा और उत्पादन के रूप में विद्यार्थी द्वारा अर्जित बौद्धिक व शारीरिक कौशल तथा व्यावहारिक परिवर्तन है ।

शिक्षा के विस्तार व आर्थिक सम्पन्नता में धनात्मक सहसम्बन्ध है । यह सह सम्बन्ध सामान्यतया किसी देश में तथा उस एक ही देश में भिन्न भिन्न समय में मिल सकता है । प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय देश की सम्पन्नता या विपन्नता की सूचक है जबकि जनता की साक्षरता की मात्रा, पाठशालाओं में नवीन प्रवेश संख्या तथा शिक्षा का व्यय साक्षरता या शैक्षणिक विकास के सूचक हैं । कुछ समय से शिक्षा के प्रभावों के संदर्भों में यह कहा जाने लगा है कि क्या आर्थिक सम्पन्नता या विपन्नता के लिये प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय या अन्य आर्थिक विकास को मानदण्ड या कसौटी माना जाय ? यह प्रश्न मुख्यतः शिक्षा की आर्थिक सामाजिक प्रकृति के कारण जोर

पकडता जा रहा है। पाश्चात्य शिक्षा अर्थशास्त्री Mary Jean Bowman तथा Anderson ने 1963 में शोध के आधार पर निम्नांकित निष्कर्ष प्राप्त किये—

(अ) 500 पौंड प्रति व्यक्ति आय वालो मे 90% साक्षरता है।

(आ) 100 पौंड प्रति व्यक्ति आय वालो म 30% साक्षरता है।

पर उन्होंने साथ ही यह भी पाया कि 30% से 50% साक्षरता के बीच प्रति व्यक्ति आय का कोई सम्बन्ध नही है।

कुछ अन्य देशो म Harbison और Myers ने 1964 में आर्थिक सम्पन्नता या विपन्नता का सम्पूर्ण शिक्षा व्यय या प्रवेश नामांकन से सम्बन्ध जोडा है। इस अध्ययन में सम्पूर्ण राष्ट्रीय उत्पादन तथा प्रवेश नामांकन म भी धनात्मक सह सम्बन्ध पाया गया है। अति सम्पन्न तथा अति विपन्न देशो म भी प्रवेश नामांकन के दृष्टिकोण से सह-सम्बन्ध सूचक निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं पर मध्यम वर्ग के देशो के साथ ऐसे निष्कर्ष प्राप्त नही हुए हैं। भारतवर्ष के सम्बन्ध म मुकर्जी व कृष्णराव के अनुसार 1967 म किये गये शोध के आधार पर उच्च तकनीकी शिक्षा के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो म ये निष्कर्ष लागू नही होते। कोठारी शिक्षा आयोग (1964–66) ने शिक्षा को भी अन्य व्यवसायो के समान ही एक व्यवसाय माना है। आयोग के अनुसार केवल चोटी के 20% व्यक्ति ही सभी सुविधाएँ प्राप्त कर पा रहे हैं तथा नीचे के 30% व्यक्तियो की मासिक आय तो 15 रुपये से कम तथा सबसे नीचे के 10% व्यक्तियो की मासिक आय तो 10 रुपये से भी कम है। इतनी कम आमदनी म व क्या क्या सुविधायें जुटा सकते हैं यह सहज ही कल्पना की जा सकती है। आयोग ने तीन दृष्टिकोणो से इस पर विचार किया है। प्रथम द्रुत गति से आर्थिक विकास 6% (या सम्भव हो तो 7%) वार्षिक दर से, द्वितीय राष्ट्रीय सम्पत्ति का अधिक समानतापूर्ण विभाजन जिससे मुट्ठी भर लोगो के पास लाखो करोडो की सम्पत्ति संग्रह न हो विपन्नो को राष्ट्रीय आय का अधिक हिस्सा प्राप्त हो। तृतीय, जनसख्या वृद्धि पर प्रतिबन्ध जन्मदर को घटा कर एक तिहाई (या सम्भव हो तो आधे) तक लाई जाय साथ ही बेरोजगारी को मुख्यत शिक्षित बेरोजगारी को काम देने की व्यवस्था की जाय। इन सब प्रयत्नो का इस तरह से विस्तार किया जाय कि आने वाले 20 वर्षों म अर्थात 1986 तक वाछित लक्ष्य प्राप्त किये जा सकें।

1963 म प्रथम बार SCNULTZ ने बताया कि शिक्षा पर किया गया व्यय स्वास्थ्य व पोषण पर किये जाने वाले व्यय की ही तरह विनियोग है। उन्होंने 1900 से 1957 के बीच 57 वर्षों का विस्तृत अध्ययन किया एव अपने अध्ययन म शिक्षा के विभिन्न साधन प्रति विद्यार्थी शिक्षा की लागत प्राप्त शिक्षा का स्तर, शिक्षण सस्थाओ म विद्यार्थियो की सख्या, विधिवत (FORMAL) शिक्षा पर होने वाले सभी व्यय तथा बच्चो के विद्यालयो म जाने से उनके माँ-बाप का होने

वाली हानि आदि सभी बातें उन्होने शिक्षा के व्यय का अध्ययन करते समय सम्मिलित की थी। सार रूप मे कहा जा सकता है कि अधिकाश बातें सम्पन्न देशों मे हुई शोधो के आधार पर कही गई है। अर्द्ध विकसित या अविकसित देशों का विचार करते समय इनमे आवश्यकता होने पर सुधार या परिवतन या परिवद्धन कर लेने चाहिएँ। इसके दूसरी ओर, पिछली शताब्दी मे भी विकसित कहलाने वाले देशो मे साक्षरता बहुत अधिक नही थी। अमेरिका मे केवल 5% व्यक्ति माध्यमिक शिक्षा व रूस म पाठशाला की 4 वर्षीय शिक्षा प्राप्त किए हुए थे। यू के की स्थिति भी बहुत अधिक अच्छी नही थी, वहाँ भी साक्षरता नाम मात्र की ही थी। इस विवेचन से तीन बातें स्पष्ट होती हैं—

(1) विकसित देशो म प्रति व्यक्ति आय अधिक है। यही कारण है कि वहाँ शिक्षा का स्तर भी ऊँचा है। पर उच्च शिक्षा से देश मे प्रति व्यक्ति आय पर क्या प्रभाव पडता है ? इस सम्बन्ध म शोध की जानी चाहिए।

(2) यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि शिक्षा व्यय म एक अमुक प्रतिशत मात्रा बढा देने से सम्पूर्ण राष्ट्रीय उत्पादन म अमुक मात्रा म वृद्धि हो जायेगी। मानवीय एव भौतिक सम्पदा मे कोई सम्बन्ध, यदि हो तो, मालूम किया जाना चाहिए।

(3) आर्थिक विकास के साथ साथ शिक्षा व्यय मे भी वृद्धि होती है।

क्या शिक्षित कृषक अधिक उत्पादन करता है या वह उत्पादन की नवीन या सुधरी हुई विधियाँ शीघ्र स्वीकार कर लेता है या शिक्षित कृषको मे आधुनिकता शीघ्र स्थान ले लेती है ? व्यावसायिक सस्थान जो उच्च शिक्षा प्राप्त कर्मचारी रखता है, सर्वाधिक लाभ कमाता है या वह सस्थान जो प्रशिक्षण तथा शोध पर काफी व्यय करते हैं (क्योंकि उन्हे इससे उम्मीद होती है कि इससे उन्हें लाभ मिलेगा) क्या उत्पादन के क्षेत्र लाभान्वित होते हैं ?

ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन पर शोध करने के लिए पर्याप्त क्षेत्र विद्यमान है।

---

5 शिक्षक शिक्षा में अपव्यय : एक दृष्टिकोण

शिक्षा आयोग (1964 66) के मतानुसार 'अध्यापन काय बहुत अधिक कष्ट साध्य है। इसलिए पाठ्यक्रमा (बी ए एड, बी एस-सी एड, बी एस-सी टेक आदि) से शिक्षा प्राप्त सभी नवयुवक भी शिक्षा का काय स्वीकार करने को तत्पर नहीं होते। भारत का 16 17 वर्ष का युवक जिसने अभी अभी माध्यमिक शिक्षा समाप्त की है सामान्यत यह निश्चय नहीं कर पाता है कि उसे स्कूल का अध्यापक ही बनना है।'[1]

शिक्षा आयोग के इस विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षक शिक्षा म भी अपव्यय होता रहा है। प्रशिक्षणालय म ऐसे व्यक्ति प्रवेश ले लेते हैं जो शिक्षक नहीं बनना चाहते हैं या यह भी सम्भव है कि शिक्षक की जीविका एक बार ग्रहण कर त्याग दें। मोटे रूप से यह राष्ट्र का अपव्यय है। शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र मे अपव्यय मुख्यत तीन स्तरा पर होता है—

1 *शिक्षक प्रशिक्षण आरम्भ होने के पूव,*
2 शिक्षक प्रशिक्षण के मध्य, और
3 शिक्षक प्रशिक्षण समाप्त करने के उपरान्त।

शिक्षक प्रशिक्षण आरम्भ होने के पूव अपव्यय का एक मुख्य स्रोत यह है कि प्रशिक्षणालय को जितने प्रशिक्षार्थियो को प्रवेश देने की स्वीकृति दी हुई हाती है—सम्भव है उतने प्रशिक्षणार्थी वहाँ अध्ययन न कर रहे हो। प्रशिक्षण सस्थान स्वीकृत प्रशिक्षार्थियो की सख्या के अनुसार प्रशिक्षको की नियुक्ति करता है, उनके लिए साधन जुटाता है प्रयोगशाला व पुस्तकालय भी समृद्ध करता है और यदि इनका उपयाग न हो तो राष्ट्रीय अपव्यय नहीं तो और क्या है ?

पुरुष प्रशिक्षणालय एक बार मान भी ले कि पूरी क्षमता तक प्रशिक्षणार्थियों को प्रवेश दे देते हैं पर महिला प्रशिक्षणालय तो इस अपव्यय से बुरी तरह प्रभावित हैं। पुरुषा के प्रशिक्षणालयों मे ता महिलाएँ प्रवेश ले सकती हैं पर महिलाओं के प्रशिक्षणालया म तो पुरुषा को प्रवेश देने की सुविधा नहीं है ?

1 शिक्षा आयोग की रिपोट (1964 66) शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली प्रकाशन विभाग हिन्दी सस्करण 1968, पृष्ठ 81-82.

स्वीकृत क्षमता तक प्रशिक्षणार्थियो के प्रवेश न लेने के और भी कई कारण हो सकते हैं, जसे प्रशिक्षणालय का अलग अलग एकान्त म होना जहाँ जीवनोपयोगी आवश्यक आवश्यकताए भी सम्भवतया पूरी न होती हा, ऐसे स्थान पर प्रशिक्षण के लिए जाना कोई पसन्द नही करेगा । यदि प्रशिक्षणालय नया ही आरम्भ हुआ है तो छात्रावास का भी अभाव हो सकता है प्रशिक्षक नये होगे पुस्तकालय समृद्ध नही होगा, सम्भव है पिछले सालो का परीक्षाफल भी निम्न स्तर का रहा हो, ऐसे स्थान पर कठोर परिश्रम करने का कोई प्रेरक नही होगा, न ऐसे स्थान पर पढने लिखने का वातावरण ही होगा । इन कमियो की ओर शिक्षा आयाग (1964 66) ने भी ध्यान खीचा है । उनके अनुसार पुस्तकालय प्रयोगशाला, श्र य दृश्य साधन काय शाला या शिल्प कक्षा आदि अ य सुविधाओ की व्यवस्था आज किसी प्रकार सन्तोषजनक नही कही जा सकती । उनके सुधार क लिए गम्भीर प्रयत्न अपेक्षित होगे । [1] आयाग ने आगे कहा है कि प्रशिक्षणार्थिया क लिए छात्रावासो की तथा प्रशिक्षका क लिए आवासा की समुचित व्यवस्था की जाय ।'[2]

इस स्तर पर अपव्यय का अ य स्रोत यह हो सकता है कि प्रबन्धक कुछ स्थान अपने निजी व्यक्तियो के लिए सुरक्षित रख लेते हैं तथा यह भी सम्भव है कि वे व्यक्ति अन्यत्र भी प्रवेश के लिए प्रयत्न कर रहे हा । यदि उनका अन्यत्र हा जाता है, तथा पूव सस्था को समय पर सूचना नही देते हैं तथा ऐसी सन्देहास्पद अनिश्चित स्थिति म काफी समय बीत जाय तो प्रथम सस्था म अन्य प्रशिक्षणार्थियों को भी प्रवेश नही दिया जा सकता । इसस अपव्यय होता है तथा प्रति प्रशिक्षणार्थी व्यय काफी बढ जाता है ।

अपव्यय का एक तरीका यह भी हो सकता है कि अयोग्य प्रशिक्षणार्थी प्रवेश के लिए सस्था प्रधान पर प्रभाव डलवाते हैं कि उन्ह प्रवेश दे दिया जाय । कई बार एसे प्रशिक्षणार्थी अपने प्रयत्ना मे सफल भी हो जाते हैं । इससे दो हानिया हाती हैं-एक तो उपयुक्त विद्यार्थी प्रवेश से वचित रह जाते हैं तथा दूसरा कि अयोग्य विद्यार्थी अनुत्तीर्ण हा जाते हैं जिससे हानि होती है तथा प्रति प्रशिक्षणार्थी व्यय भी बढता है । यदि एसे अयोग्य प्रशिक्षणार्थी उत्तीर्ण भी हो जाते हैं तो वे आगे चल कर कितना अहित करते हैं—इसकी तो कल्पना ही कष्टप्रद है ।

शिक्षक शिक्षा म अपव्यय दूसरे स्तर पर तब होता है जबकि प्रविष्ट प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षण पूरा न करके सत्र के मध्य से ही पढना छोड दे । ऐसा करने से न तो छोडने वाले प्रशिक्षणार्थी पाठ्यक्रम पूरा कर सकते हैं और न ही आचार्य छोडने

1 वही, पृष्ठ 88

2 वही, पृष्ठ 710

वाला की जगह नए विद्यार्थियो को प्रवेश दे सकते हैं, क्योकि प्रशिक्षण का भी काफी समय बीत चुका होता है। इस कारण भी शिक्षक शिक्षा पर होने वाला व्यय बढा चढा कर बताया जाना स्वाभाविक है। सत्र के मध्य प्रशिक्षण अधूरा छोडने के कई कारण हो सकते हैं, इनमें से मुख्य मुख्य इस प्रकार हैं—

1 महिला प्रशिक्षणार्थियो का कोई निश्चय नहीं होता है कि वे प्रशिक्षण प्राप्त कर अध्यापन काय ही करेंगी। प्राय स्नातक होने के बाद प्रशिक्षणालय म अपने पति ढूँढने आती हैं। न उनका नौकरी करने का कोई इरादा होता है और न वे इसके लिए प्रयत्न ही करती हैं। कई अशो मे वे विवाह के बाद अपनी इच्छा से नही चल सकती बल्कि उनको अपन पति की इच्छानुसार काय करना पडता है। इस भाति वे शादी व शिक्षा के बीच का समय वहाँ बिताने के लिए प्रवेश ले लेती हैं। पिछले दशक मे दिल्ली मे की गई एक शोध म पाया गया है कि आधी से अधिक महिलाओ ने बिना प्रशिक्षण पूरा किय सत्र के मध्य ही प्रशिक्षणालय छोड दिया। इस अपव्यय को एकदम रोका जाना चाहिए।

2 सत्र के मध्य अच्छा रोजगार मिलने पर प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षण अधूरा छोड कर भी चले जाते हैं। शिक्षा आयोग (1964–66) ने भी इस सम्बन्ध म महत्त्वपूर्ण संस्तुति की है। आयोग के अनुसार अध्यापन व्यवसाय म पर्याप्त संख्या में योग्य अध्यापको की नियुक्ति उनके लिए सर्वोत्तम व्यावसायिक साधना की उपलब्धि और पूर्ण प्रभावी ढग से काम कर सकने के लिए सन्तोषप्रद स्थितिया पदा करने से अधिक महत्त्वपूर्ण बात दूसरी नही है, क्योकि शिक्षा के स्तर और राष्ट्रीय विकास मे उसके योगदान का जितनी भी बातें प्रभावित करती है उनमे शिक्षको की गुणता, क्षमता और चरित्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। शिक्षक की आर्थिक, सामाजिक और व्यावसायिक प्रतिष्ठा बनाने के लिए निरन्तर भरपूर प्रयत्न किए जाएँ ताकि योग्य युवक और युवतियाँ इस व्यवसाय के प्रति आकर्षित हो और उन्हे सेवाभाव से काम करने वाले उत्साही व सन्तुष्ट एव समर्पित कायकर्त्ता की तरह इस व्यवसाय म रोका जा सके उचित पारिश्रमिक को व्यवस्था, व्यावसायिक विकास के अवसर और काय एव सेवा की उपयुक्त शर्तों की व्यवस्था कुछ ऐसे प्रमुख कायक्रम हैं जिनके कारण इस व्यवसाय मे लोगो की रुचि बढेगी और योग्य अध्यापको को रोका जा सकेगा।[1]

3 जो व्यक्ति प्रशिक्षण के लिए प्रवेश लेते हैं उन पर पति/पत्नी व बच्चा की भी जिम्मेदारी रहती है—यदि व उसी स्थान पर न हुए तो बार-बार उनको देखने सम्हालने जाने म भी समय व्यय जाता है। दुभाग्य स यदि अस्वस्थ हो गए तो

1 वही, पृष्ठ 52

रखना भी पड़ सकता है। ऐसी परिस्थितिया म कई बार उनको विवश हो कर न चाहते हुए भी प्रशिक्षण छोडना पडता है।

4 यह सवमाय धारणा है कि प्रशिक्षण कसा भी हो बडा महँगा हाता है। वहाँ का खर्चा शुल्क आदि सभी प्रशिक्षणार्थी की कमर तोड देने वाला होता है। कभी-कभी खच से परेशान हो कर, समय पर पसा न जुटाने के कारण भी प्रशिक्षणार्थी को सत्र के मध्य प्रशिक्षण छोडना पडता है। इस सम्ब ध म शिक्षा आयाग की सस्तुतिया बडी महत्त्वपूण हैं। आयोग के अनुसार प्रशिक्षणालया में सभी स्तरों पर अध्ययन शुल्क पूरी तरह समाप्त कर दिया जाए तथा वृत्तिकाओं एव ऋणो के लिए भी उदारतापूवक व्यवस्था की जाय।'[1]

5 कई बार प्रशिक्षण हाल बडा कष्टप्रद सिद्ध होता है। वहा प्रशिक्षक सम्भव है वयस्क मनोविज्ञान से परिचित नही होते हैं। प्रशिक्षणार्थियो के मन को दुखाने वाली बातें भी हो सकती हैं। रात दिन अभ्यास पाठो की तयारी के बाद भी प्रशिक्षक उन्ह डांट फटकार द तो प्रशिक्षणार्थी के लिए सत्र के मध्य प्रशिक्षण छोड देने के सिवाय अन्य कोई चारा नही रहता है। इसके दूसरी ओर प्रशिक्षणार्थियो की सख्या अधिक होने से प्रशिक्षक व्यक्तिगत ध्यान भी नही दे पाते हैं। इससे भी प्रशिक्षणार्थी अपने को असहाय अनुभव करते हैं, अरसुक्षित समभत हैं।

प्रशिक्षणालय मे प्रवेश से पूव 6 माह (या कोई निश्चित अवधि) के लिए सभी प्रशिक्षणार्थियो के लिए कक्षाध्यापन आवश्यक करदें। इससे एक लाभ यह भी होगा कि जिनकी शिक्षण काय म गहरी रुचि होगी वे ही प्रशिक्षण के लिए तयार रहगे तथा शेष प्रशिक्षणालय मे प्रवेश के पूव ही अध्यापन काय छाड देंगे। इस सम्बन्ध मे कुछ विभागीय व्यवस्था म भी कठिनाइयाँ आ सकती हैं पर अग्रिम सुविचारित योजना बना लेने पर ये कठिनाइयाँ हल की जा सकती हैं।

प्रशिक्षणालयो के प्रधानो का दायित्व है कि वे प्रशिक्षण को इतना आकर्षक एव रुचिप्रद बनायें कि व प्रशिक्षण अधूरा छोड कर भागे नही। सामुदायिक जीवन भी इसम महत्त्वपूण स्थान रखता है। शिक्षा आयोग की सस्तुतिया इस प्रकार हैं—

प्राथमिक अध्यापक प्रशिक्षको के पास या तो शिक्षा विषय म स्नातकोत्तर उपाधि हो या किसी अन्य विषय म स्नातकोत्तर उपाधि के अतिरिक्त बी एड की उपाधि हो। माध्यमिक प्रशिक्षक अपने काय के लिए बहुत ही कम उपयुक्त होते हैं। एक सर्वेक्षण से पता चला है कि ऐसी सस्थाओ के 40 प्रतिशत अध्यापक केवल बी ए हाते हैं और बी एड कर चुके होते हैं 58 प्रतिशत ऐसे होते हैं जिनके पास किसी विषय की एम ए की उपाधि या एम एड की उपाधि होती

1 वही, पृष्ठ 710

है और केवल दो प्रतिशत ऐसे होते हैं जिनके पास शोध उपाधि (पी एच डी) होती है। शिक्षा आयोग का मत है कि इन संस्थाओं के प्रशिक्षकों के पास दो स्नातकोत्तर उपाधियाँ होनी चाहिए—एक किसी अध्ययन विषय की तथा दूसरी शिक्षा विषय की और डॉक्टर उपाधि धारियों का भी यथेष्ट अनुपात (कोई 10 प्रतिशत) होना चाहिए। एम एड स्तर पर विशेष विषय के रूप में या शिक्षा पाठ्यक्रम के रूप में अध्यापक शिक्षा का विषय भी उनके द्वारा पढ़ा हुआ होना चाहिए। उनके वेतनमान वे ही होने चाहिएँ जो कला या विज्ञान के कॉलिजों के व्याख्याता, वाचक तथा प्राध्यापक आदि के होते हैं पर विशेष व्यावसायिक प्रशिक्षण की अतिरिक्त योग्यता का ध्यान में रख कर दो अग्रिम वेतन वृद्धियाँ दी जानी चाहिएँ।'[1]

'अध्यापक प्रशिक्षण के वर्तमान कार्यक्रमों में यथेष्ट सीमा तक गुणात्मक सुधार होना चाहिए। गुणात्मक ही अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम का सर्वस्व है और यदि गुणात्मक वृद्धि न हुई तो अध्यापक प्रशिक्षण न केवल वित्त का अपव्यय सिद्ध होगा अपितु उसके शैक्षणिक स्तरों में भी सब प्रकार से ह्रास होगा। अतः गुणात्मक सुधार के कार्यक्रम का सर्वाधिक महत्त्व है।'[2]

एक सुनियोजित विषय समावेषक पाठ्यक्रम होना चाहिए जिससे मूलभूत सम्प्रत्यय और स्कूल पाठ्य विवरण में उनके अनुप्रयोग का अध्ययन और ऐसी पाठ्य पुस्तकों तथा विद्यासमान सामग्रियों का अध्ययन समाविष्ट हो जिससे स्कूल स्तर के शिक्षण में सहायता मिले। प्रशिक्षण कार्यक्रमों का कोई 20 प्रतिशत समय ऐसे ही अध्ययनों में लगाना चाहिए।[3]

माध्यमिक अध्यापकों के विषय ज्ञान का पुनः अनुस्थापन विश्वविद्यालयों के सक्षम विभागों के सहयोग से किया जाना चाहिए और जहाँ आवश्यक हो वहाँ कला और विज्ञान के विषयों में स्नातकोत्तर अध्ययन वाले महाविद्यालयों की भी सहायता ली जानी चाहिए। हर प्रशिक्षण शाला को एक विस्तृत योजना बनानी चाहिए जिसमें विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के सहयोग का ही नहीं अपितु उनकी प्रयोगशालाओं तथा पुस्तकालयों के उपयोग तक का समावेश हो। *प्राध्यापकों, वाचकों तथा व्याख्याताओं को नये पाठ्यक्रमों का विकास और व्यवस्थापन* करने में प्रशिक्षण महाविद्यालयों के शिक्षकों के साथ सहयोग करना चाहिए। प्राथमिक अध्यापकों के भी इसी प्रकार के पाठ्यक्रमों का अध्ययन स्नातकोत्तर

---

1 वही, पृष्ठ 87
2 वही पृष्ठ 80
3 वही, पृष्ठ 81

उपाधि धारी शिक्षकों द्वारा ही दिया जाना चाहिए और उन्हें कला तथा विज्ञान के महाविद्यालयों के अध्यापकों का भी सहयोग प्राप्त होना चाहिए।'[1]

'विषय ज्ञान के साथ इस पुन अनुस्थापन से सम्बन्धित विषय को पढाने की विशेष तकनीकों और विधियों के साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध जोडा जाना चाहिए। अनुदार अध्यापन विधियों पर आधारित बने बनाये पाठों की प्रणाली नहीं अपनाई जानी चाहिए और विषय अध्यापक को यह मार्ग दर्शन प्राप्त होना चाहिए कि वह अपने अध्यापन को किस प्रकार रचनात्मक रूप में विकसित करे।'[2]

शिक्षक शिक्षा में अपव्यय तब भी होता है जबकि प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षण तो सफलतापूर्वक समाप्त कर लेते हैं पर अध्यापन कार्य नहीं करते हैं। इस श्रेणी में अधिकतर वे महिलाएँ आती है जो प्रशिक्षण तो येन केन प्रकारेण प्राप्त कर लेती हैं पर नौकरी नहीं करतीं। न उनका नौकरी करने का इरादा होता है और न वे इसके लिए प्रयत्न ही करती है। वे केवल शिक्षा व शादी के बीच का समय गुजारने के लिए प्रशिक्षण ले लेती हैं।

पुरुष प्रशिक्षणार्थी भी कई बार अन्यत्र आकर्षक वेतन या सेवा की सुविधापूर्ण शर्तें होने से नौकरी कर लेते हैं। कई उदाहरण ऐसे भी मिल सकते हैं जब वे शिक्षक की नौकरी छोड कर मदद के लिए अन्यत्र चले जाते हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं। जैसे—

1 अन्यत्र आकर्षक वेतन होना
2 बच्चों के बीच या उनके लडाई झगडों के बीच रहना पसंद न करना,
3 अपने निवास स्थान के निकटतम स्थान पर नियुक्ति न पाना,
4 आदिवासी क्षेत्रों में काम करने की उनकी अपनी कठिनाइयाँ
5 प्रशिक्षण सफलतापूर्वक समाप्त करने के बाद रोजगार न मिलना, आदि।

इन कठिनाइयों में से आकर्षक वेतन तथा बच्चों के बीच कार्य करना पसंद न करना कठिनाइयों पर इससे पूर्व चर्चा की जा चुकी है।

आज स्थिति यह है कि हर व्यक्ति अपने निवास स्थान पर या निवास स्थान के निकट नियुक्ति चाहता है। पर यह भी स्पष्ट है कि हर व्यक्ति की यह इच्छा पूरी नहीं की जा सकती। इसके लिए शिक्षकों में अपने साथी शिक्षकों के लिए त्याग करने का दृष्टिकोण पैदा करना चाहिए। आदिवासी क्षेत्रों में काम करने की कठिनाइयाँ वास्तव में जटिल हैं।

---

1 वही, पृष्ठ 81
2 वही पृष्ठ 81

आदिवासी क्षेत्रों मे शिक्षकों के सम्मुख मुख्य समस्या निवास की आती है। आवास की सुविधा न होने से शिक्षक अन्यत्र रहते हैं, जिससे बच्चो व अभिभावकों से सही सम्बन्ध नहीं बन सकते। इस सम्बन्ध म शिक्षा आयोग का कहना है कि यदि स्थायी रूप से शिक्षकों के आवास की उचित व्यवस्था कर दी जाय तो यह और इसी प्रकार की अन्य दूसरी कठिनाइयाँ समाप्त हो जायेंगी। स्थानीय लोगा पर शिक्षको के आवास की व्यवस्था करने की जिम्मदारी होनी चाहिए। इसके लिए यथावश्यक और यथा सम्भव सरकारी सहायता दी जानी चाहिए। अध्यापकों के लिए सहकारी मकान निर्माण योजना को बढावा देना चाहिए और मकान बनाने के लिए अनुकूल शर्तों पर उदारतापूवक ऋण दने की व्यवस्था भी होनी चाहिए।[1]

आदिवासी एव देहाती क्षेत्रों म महिलाओ के निवास की समस्या और भी जटिल हो जाती है। कोई भी ग्रामीण उन्हें मकान किराय पर देने को तयार नही होना और न ही महिलाएँ अन्यत्र मकान किराये पर लेकर रोज रोज अन्य गाँव मे जाकर अध्यापन ही कर सकती हैं, फिर उनकी काय कुशलता बनी रहने का प्रश्न ही नही उठता।

आदिवासी क्षेत्रो म काम करने वाले शिक्षकों के सामने अन्य समस्या आती है उनके शिक्षण तकनीक की। शिक्षा आयोग (1964-66) के अनुसार 'इन अध्यापकों के विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता है। इस तरह के प्रशिक्षण म आदिवासियो की बोली या बोलियों का अध्ययन और आदिवासियो के रीति रिवाजो की जानकारी भी शामिल होनी चाहिए। उन राज्यो मे जहाँ काफी बडी सख्या मे आदिवासी हैं, ऐसी विशेष सस्थाए स्थापित करनी होगी जहाँ आदिवासी क्षेत्र मे काय करने वाले अध्यापको के लिए प्रत्यास्मरण पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जा सके। आदिवासी युवक युवतियो को भी इन क्षेत्रो म अध्ययन काय के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

इस सम्बन्ध म इस बात पर भी विचार किया जा सकता है कि आदिवासी क्षेत्रो म कम शिक्षित (कहिए आठवी कक्षा उत्तीर्ण) स्थनीय नवयुवक एव नवयुवतियो को विषय सामग्री व शिक्षण तकनीक का सामान्य से अधिक समय तक प्रशिक्षण देकर उनके निवास स्थानो पर ही उनकी नियुक्ति कर दी जाय। शिक्षा आयोग भी इस सम्बन्ध म समान राय रखता है। प्रशिक्षण की अवधि के लिए ऊपर बताई सभी सुविधाएँ समान रूप स उन्हे भी मिलनी चाहिए—यथा शुल्क मुक्ति प्रशिक्षण, छात्रवृत्ति, ऋण की उदार व्यवस्था, आदि।

अन्तिम प्रकार का अपव्यय यह हो सकता है कि प्रशिक्षण सफलतापूवक समाप्त करन के बाद भी उन्हे रोजगार न मिले। इस प्रकार के अपव्यय का आजकल

1 वही पृष्ठ 70

वोलवाला है। पढे लिखे व्यक्तियो को बहकाया भी नहीं जा सकता, भूखे का मनोविज्ञान ही अलग होता है। इसलिए इस अपव्यय को रोकना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस अपव्यय को रोकने के लिए प्रशिक्षणालय की प्रवेश क्षमता का शिक्षकों की भावी आवश्यकताओं से तालमेल जोड़ना चाहिए। यदि किसी प्रशिक्षणालय की प्रवेश क्षमता को कम करना है तो राष्ट्र हित मे अच्छा होगा कि इस सम्बन्ध मे तत्काल कदम उठाए जाएँ। इस कदम के विरोध में राजनतिक या अन्य प्रभाव लाये जा सकते हैं पर उन्हें सही स्थिति से अवगत करा कर इस अपव्यय को रोकने का प्रयत्न करना ही चाहिए।

अपव्यय का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। यदि इसकी अन्तरात्मा छू सके तो उन शिक्षको की शिक्षा पर खच की गइ वह राशि भी, जबकि शिक्षक शिक्षा पाने के बाद तथा सर्विस पाने के बाद अपने प्रशिक्षण काल मे सीखी हुई तकनीकों एव *कौशलों का कक्षाध्यापन म उपयोग न करें या वे शिक्षक कक्षा म किसी भी तरीके* से अध्यापन न करें अपव्यय मे ही गिनी जानी चाहिएँ। इस प्रकार के अपव्यय की गणना करना बड़ा दुष्कर काय है।

कक्षाध्यापन को समग्र अध्यापक शिक्षा का आवश्यक अग का रूप दिया जाय। पुरानी पढी हुई या प्राणहीन सामग्री को निकाल प्रशिक्षण पाठ्यक्रम से निकाल कर ऐसी सामग्री रखी जानी चाहिए जो अध्यापकों या छात्रों की निजी या व्यावसायिक आवश्यकताओं के अनुरूप हो। भारतीय परिस्थितियों पर आधारित विविध पाठ्यक्रमों के समन्वय की आवश्यकता पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

विविध स्तरों के अध्यापक प्रशिक्षण सस्थाओं और शिल्पकला शारीरिक शिक्षा आदि विशिष्ट शिक्षा के बीच आज जो अलगाव है उसे दूर करने के लिए ठोस प्रयास किए जाने चाहिए और उसके उपाय अपनाये जाने चाहिए—

1 'अन्तत समग्र अध्यापक शिक्षण को विश्वविद्यालय के अधीन ले आने के उद्देश्य से सभी प्रशिक्षण शालाओं को महाविद्यालय स्तर तक ऊचा उठाने के क्रमिक कायक्रम कार्यान्वित किये जायें।'[1]

2 'सर्वागपूर्ण कॉलिज–जहाँ भी सम्भव हो ऐसे कॉलिज स्थापित किये जाने चाहिएँ जो विविध शिक्षण स्तरों के और या विविध क्षेत्रों के अध्यापकों को तैयार कर सकें। इस कोटि की कुछ सस्थायें इस समय भी हैं और उनके काफी अच्छे परिणाम रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार की और अधिक सस्थाएँ बनाई जायें और माध्यमिक शिक्षकों की प्रशिक्षण शालाओं म प्राथमिक या। और पूर्व प्राथमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण अनुभाग जोड़े जायें।[2]

---

1 वही पृष्ठ 708

2 वही, पृष्ठ 79 80

प्रत्येक प्रशिक्षणालय के साथ एक प्रयोगात्मक या निदर्शन स्कूल सम्बद्ध किया जाय, जिसका प्रयोग निदर्शन या विशेष अध्ययन के लिए किया जाय।"[1]

सर्वांगपूर्ण कॉलिजो में विशिष्ट प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, अंग्रेजी, गृहविज्ञान, चित्रकला, विज्ञान, संगीत, आदि की पूर्णरूपेण व्यवस्था हो। ये प्रशिक्षणालय ऐसी जगह पर खोले जाएँ जहाँ कोई स्थान रिक्त न रह सके। इससे अपव्यय न होने में मदद मिलेगी। इससे प्रशिक्षणालय के साधनों का सघन उपयोग होगा। प्राथमिक शिक्षक, पूर्व प्राथमिक, माध्यमिक शिक्षक शिक्षक प्रशिक्षक, शोध विद्यार्थी, मार्ग दर्शक, अंग्रेजी, गृह विज्ञान विज्ञान, चित्रकला, संगीत, आदि विषयों के शिक्षकों की व्यवस्था एक ही कॉलेज में होने से प्रति प्रशिक्षणार्थी खर्च कम आयेगा तथा शिक्षकों, पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं भवनों, क्रीडांगणों का सघन उपयोग हो सकेगा।

प्रशिक्षणालयों मे प्रशिक्षणार्थियों के प्रवेश की एक केन्द्रीय नीति तैयार की जानी चाहिए जो हर प्रान्त मे समान रूप से लागू हो। कॉलेजो की प्रवेश क्षमता को शिक्षकों की आवश्यकता से जोड़ना चाहिए तथा उसी भावी आवश्यकता के सन्दर्भ में अधिकारियों को निर्णय लेने चाहिएँ। सभी कॉलेजों में प्राप्त स्थानों का वहीं से आवंटन हो। प्रवेशार्थियों को बता दिया जाय कि वे अमुक कॉलेज में जाकर उपस्थिति दें, प्रवेश लें। इस प्रकार केन्द्रीय नीति सभी अंशों में स्पष्ट हो तथा उसे प्रशिक्षणालय के प्रबन्धकों पर न छोड़ी जाय।

ज्ञान का बड़ी तेजी से विस्फोट हो रहा है। इसलिए हर शिक्षक को हर पाँच वर्ष में एक बार अपने विषय ज्ञान व शिक्षण तकनीक में नवीनीकरण करा दिया जाना चाहिए। कुछ प्रशिक्षणालय केवल इसी निमित्त भी रखे जा सकते हैं। शिक्षा आयोग के अनुसार 'ग्रीष्मकालीन संस्थान के कार्यक्रम के विस्तार की बहुत अधिक आवश्यकता है। इसे विश्वविद्यालयों, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् तथा स्कूलों के वार्षिक कार्यक्रम का अभिन्न अंग बना दिया जाना चाहिए।[2] "जहाँ यह सम्भव न हो वहाँ शिक्षा के उद्देश्यों अध्ययन विधियों विषय वस्तु व संगठन आदि अध्यापकों के सम्मुख उपस्थित होने वाले मामलों पर विवेचन की सुविधाएँ देने के लिए एक सम्मेलन केन्द्र अवश्य हो, जो अन्य अध्यापकों के सहयोग से समय समय पर पुस्तिकायें पुस्तक सूचियाँ मार्गदर्शन सामग्रियाँ आदि तैयार करें जिनका लाभ सब अध्यापक उठा सकें।[3]

शिक्षा आयोग के अनुसार कुछ नये पाठ्यक्रमों का भी विकास किया जाना चाहिए। शिक्षा को अन्य विषयों की तरह ही स्नातक स्तर पर एक विषय के रूप

1 वही, पृष्ठ 710

2 वही, पृष्ठ 96

3 वही, पृष्ठ 98

मे रखा जाना चाहिए। इसी भाँति इतिहास भूगोल या समाज शास्त्र के एम ए के पाठ्यक्रम की ही भाँति शिक्षा शास्त्र म एम ए का दो वष का पाठ्यक्रम भी शुरू किया जाना चाहिए। एम ए शिक्षा के पाठ्यक्रम म उन विद्यार्थियो को प्रवेश दिया जा सकता है जिन्होने अन्य विषयो के साथ स्नातक स्तर पर शिक्षा शास्त्र भी पढा है। इस प्रकार का पाठ्यक्रम 3 4 विश्वविद्यालयो ने शुरू किया है। इस पहल से अन्य विश्वविद्यालयो को प्रोत्साहन लेना चाहिए। इसी भाति स्नातक स्तर पर शिक्षा केवल 11 विश्वविद्यालयो म ही शुरू की गयी है। इस प्रकार के पाठ्यक्रमो को एम ए एजूकेशन या एम एस सी एजूकेशन की सज्ञा दी जा सकती है। ऐसे पाठ्यक्रमो म विषय सामग्री के साथ साथ शिक्षण तकनीक को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। इन पाठ्यक्रमो म केवल उन्ही विद्यार्थियो को प्रवेश दिया जाय जिनकी शक्षणिक उपलब्धि उच्च स्तर की हो। उनके लिए उदारतापूवक छात्रवृत्तियो का भी प्रब ध किया जाय। ऐसी आशा की जा सकती है कि ऐसे व्यक्ति अवश्य ही शिक्षक बनेंगे। उनका प्रशिक्षण अधिक लम्बा होने से सम्भव है अधिक प्रभावी होगा तथा वे अध्यापन व्यवसाय मनोयोग पूवक निष्ठा के साथ करते रहेगे।

इ ही सब बातो के प्रकाश मे यदि शिक्षक शिक्षा का पुनगठन किया जाए तो उज्ज्वल भविष्य की आशा करनी चाहिए।

—— ——

6 जन बल के सन्दर्भ में शैक्षिक नियोजन

26 जनवरी 1969 के धमयुग म स्यातिप्राप्त अथशास्त्री अमर नारायण अग्रवाल ने लिखा है कि मैं इस बात की जोरदार सिफारिश करना चाहता हू कि देश को आर्थिक स्वावलम्बन प्राप्त करने के लिए एक नई दीघकालीन योजना बनानी चाहिए। आर्थिक स्वावलम्बन का तात्पय यही नहीं है कि मनुष्यो का भरपेट भोजन मिल जाय। इसका मतलब यह भी है कि डाक्टर को डॉक्टर का ही काय मिले न कि कम्पाउण्डर का, इसी भाँति इन्जीनियर को इन्जीनियर का ही काय मिले न कि ओवरसीयर का। इसी के फलस्वरूप उनके जीवनमान व रहन सहन म भी सुधार होना चाहिए। इसी मे अग्रवाल साहब ने आगे बताया कि इस प्रकार की योजना की अवधि लगभग 15 वप (सन 1970–71 से लेकर 1985–86) हो। ऐसी योजना सब प्रकार से वास्तविक होनी चाहिए और उसमे गति पूवक आर्थिक विकास के लिए प्रशासकीय एव प्रबन्ध सम्ब धी कुशलता का विस्तार करने का प्रावधान होना चाहिए।

10 फरवरी 1969 के हिन्दुस्तान टाइम्स के अनुसार तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री डॉ त्रिगुण सेन के अनुसार तृतीय योजना म 53 000 अध्यापिकाओं की नियुक्ति का लक्ष्य होते हुए भी केवल 12 000 महिलाओ को ही नियुक्तिया दी गई। यद्यपि शिक्षित महिलायें इससे अधिक सख्या मे पढ लिखकर शिक्षण सस्थाओ से बाहर निकली थी।

बस त कुमारी अवस्थी ने (देखिये—जनशिक्षण शक्षिक हिन्दी मासिक उदयपुर विद्याभवन सोसायटी वप 33 अङ्क 11, नवम्बर 1968, पृष्ठ 19–28) विभिन स्तरो पर विभिन कारणो से (छात्र सख्या वृद्धि, सेवा निवृत्ति शिक्षक विद्यार्थी का अनुपात घटाना, आदि) 1971, 1976 तथा 1981 वर्षों मे होने वाली शिक्षको की लाखो की सख्या में कमी पर प्रकाश डाला गया है। उन्होने विषय वार शिक्षको की भी गणना की है। अग्रेजी विज्ञान, गणित कृषि, वाणिज्य इन्जीनियरिङ्ग चित्रकला व गृह विज्ञान आदि व्यावहारिक विषयो के अध्यापको का नितान्त अभाव बताया है। महिला शिक्षकों की कमी का अनुमान लगाकर उन्होने लिखा है 'यह नही समझ लेना चाहिए कि अब अध्यापिकाओ की आवश्यकता नहीं रही। विज्ञान, गणित, ललित कला तथा गृह विज्ञान की अध्यापिकाओ की समस्या शिक्षकों की समस्या से भी जटिल है।'

दिल्ली म 1 से 20 अगस्त 1968 तक आयोजित वेस्टेशिया सम्मेलन म भी विज्ञान शिक्षको की कमी को गम्भीर समस्या माना है।

जलपाई गुडी मे कुछ बेरोजगार इन्जीनियरो ने एक रेस्तरा खोला है जिसमे चाय व भोज्य पदार्थ बनाने व परोसने का काम व लोग स्वय ही करते हैं। (देखिये योजना आयोग द्वारा प्रकाशित योजना' हिन्दी पाक्षिक का 11 अगस्त 1968 का अङ्क, पृष्ठ 8) । इसी समाचार म यह भी बताया गया है कि 1965 के वष म इन्जीनियरिङ्ग की परीक्षा म उत्तीर्ण सभी व्यक्तियो को रोजगार मिल चुका है। सन 1966 म उत्तीर्ण विद्यार्थियो म से केवल 20% का ही काम मिला है। 1967 के उत्तीर्ण सभी व्यक्ति बेरोजगार हैं तथा 1968 के मिला कर लगभग 40 000 इन्जीनियस बेरोजगार हैं।

शिक्षितो की बेकारी के सम्बन्ध म इसी प्रकार पेरिस 23–24 मई 1966 को हुए सम्मेलन मे डा वी के आर वी राव ने कहा था कि शिक्षा का आर्थिक विकास से गहरा सम्बन्ध है पर विभिन्न शिक्षा सस्थाओ से पढ लिख कर निकलने वाले युवको की सख्या तथा रोजगार के अवसरो म कभी कोई तालमेल बिठाने का प्रयत्न नही किया गया। तकनीकी या चिकित्सा शिक्षा प्राप्त व्यक्ति एक बार अपना रोजगार भी स्थापित कर सकते हैं पर कला या मानविकी के स्नातक अधिस्नातक या हाई स्कूल उत्तीर्ण व्यक्तियो का क्या होगा ? यह कभी सोचा ही नहीं गया तथा पढे लिखे व्यक्तियो को रोटी रोजी के लिए दर दर भटकना पडा। यदि इस ओर ध्यान नही दिया गया तो आर्थिक विकास के लिए शिक्षा पूर्ण रूप से असफल सिद्ध होगी। शिक्षा जन बल को नियोजित करती है तथा जन शक्ति को शिक्षित भी। यदि शिक्षा केवल जन शक्ति को शिक्षित ही करे तथा आजीविका न दे तो वह सद्धान्तिक रूप से अनुत्पादक मात्र हो रह जाएगी। (देखिए—Manpower Aspects of Education Planning UNESCO Publication 75 Paris 7 c Place De Fonte noy Ed 1968 PP 113–123)

कई व्यक्तियो की राय है कि (देखिये—Link 26th Jan 1969 P 31, Article by Satya Narain—Planning Deprived of Perspective) योजना स्वय मे कोई गलती नही है पर उसका कार्यान्वयन त्रुटिपूर्ण है। आयोजन ही अधूरा है योजना की नीति व वास्तविक काय प्रणाली म अन्तर है। इन्ही सब बाता के स दभ मे एक बार काग्रस के अधिवेशन म भूतपूव स्वर्गीय प्रधानमन्त्री लाल बहादुर शास्त्री ने कहा था कि हमारी योजनाए बुनियादी रूप से गलत हैं, मौलिक रूप से त्रुटिपूर्ण हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि जन शक्ति नियोजन के मूल मे ही कही खोखलापन है। तीन तीन योजनाए समाप्त कर लेने के बाद भी आज यह तय नही कर पाये कि चर्खे का प्रचार किया जाय या भारी उद्योगो का। योजनाएँ

वनी तो है पर दश की आवश्यकताम्रा वे अनुरूप नही। जो कुछ प्रयत्न किये जा सक्त थे, जो साघन प्राप्त थे, उस दृष्टि ग याजना का मसविदा तयार कर लिया गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तक्नीकी शिक्षा प्राप्त व्यक्तिया की बडी कमी अनुभव की गई तथा बिना सोचे समझे तकनीकी महाविद्यालय खाले गये तथा पहले से चले आ रहे कॉलेजो की प्रवेश क्षमता बढाई गई। 1951 में इनकी प्रवेश क्षमता 4 788 थी जो 1966 म 25 000 हो गई। इन 14 वर्षों म इनकी प्रवेश क्षमता सात गुनी बढ गई। इसमे डिप्लोमा देने वाले सस्थान पृथक हैं, उनकी गणना नही की गई है। फलत आज जो हालत इजीनियरा व तक्नीकी शिक्षा प्राप्त व्यक्तिया की है—यही स्थिति 4–5 वप बाद डॉक्टरा की भी हो सक्ती है। सरकार नय मेडिकल कॉलिज खाल रही है तथा पुराने कॉलिजा म प्रवेश क्षमता भी बढा रही है। सन् 1955 में मेडिकल कॉलिजा की प्रवेश क्षमता 3,660, 1965 म बढ कर 10,625 हुई तथा 1968 तक 12500 हो गई।

आज स्थिति यह है कि गोल खूटी को चौकार गडढे म (Round pag ın square hole) घिस पीट कर बिठाया जा रहा है। महिलाओं की शिक्षा म वृद्धि हुई है पर वे घर की चहार दीवारी से बाहर काम नहीं कर रही हैं। महिला शिक्षा की नई सस्थाए भी खोली गई हैं एव उन सबकी प्रवश क्षमता भी बढाई गई है तथा इन सबके दूसरी ओर पूरे मन से काम करन वाली अध्यापिकाएँ नही मिल रही हैं। इसी प्रकार एक ओर तो इजीनियस बेकार हैं तथा दूसरी ओर विज्ञान शिक्षका की कमी है। डाक्टरी शिक्षा का भी यही हाल है निस्सन्देह डाक्टरो की सख्या बढ़ी है एव नई चिकित्सा शिक्षा सस्थाए भी अस्तित्व म आई हैं तथा पुरानी सस्थाओ की प्रवेश क्षमता बढाई गई है पर आज भी कई गावा के चिकित्सालयो म डाक्टर नही हैं। एक तरफ व्यक्ति बेकार हैं तथा दूसरी तरफ कई वर्षों से पद रिक्त पडा हुआ है। बडी उपहासजनक स्थिति है। क्या इसी सब का नाम नियोजन है? किसी भी अर्द्ध विकसित राष्ट्र के लिए जन शक्ति के इस प्रकार का अनुपयोग सराहनीय नही कहा जा सकता तथा इस प्रकार के अनुपयोग की देश को भारी कीमत हडताल, तोड फोड घेराव तालाबदी आदि के रूप म चुकानी पडती है। न्यूनाधिक रूप से अशिक्षित जन शक्ति की भी यही स्थिति कही जा सकती है। क्या इन्ही सब बाता के प्रकाश म आज शश्कि नियोजन पर पुर्नविचार की आवश्यकता नही है?

इस अनुपयोग के एक अन्य पहलू का भी देखना चाहिए। एक डाक्टर की शिक्षा प्राप्त करन वाले विद्यार्थी के लिए सरकार 16 000 रुपया प्रतिवप खच करती है तथा यही खच 5 वप म 80 000 रुपया हो जाता है तथा विद्यार्थी के माता पिता भी 20,000 रुपये के लगभग खच करते हैं। इस प्रकार एक विद्यार्थी को डॉक्टर

बनाने के लिए राष्ट्र का एक लाख रुपया खर्च होता है। इसी भांति इंजीनियर तकनीक, शिक्षक आदि की शिक्षा के खर्च का अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसी स्थिति में विवश होकर डा० ए० चन्द्रहासन, निदेशक केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा मन्त्रालय, नई दिल्ली के शब्दों में कहना पड़ता है कि 'क्या भारत के सभी लोगों को शिक्षित होना आवश्यक है?' व आगे कहते हैं कि 'भारत के सभी लोगों को मामूली लिखने पढ़ने की योग्यता प्राप्त करना काफी है। यह जरूरी नहीं है कि सब लोग कम से कम मैट्रिक करें ही। भारत के प्रत्येक आदमी को लिखने पढ़ने की शिक्षा दी जाय तो सभी प्रकार की शिक्षाओं के सभी क्षेत्र उनके सामने रहते हैं। (देखिये–साहित्य परिचय का शिक्षा समस्या विशेषाङ्क आगरा विनोद पुस्तक मन्दिर 1969, पृष्ठ 15) सन 1950–51 में शिक्षा पर जो 100 रुपया खर्च किया जाता था वही अब बढ़ कर 1964–65 में 369 रुपया हो गया है।

इस प्रकार के अनुपयोग से बचने के लिए बहुलक्षी योजनाएं बननी चाहिएं। उदाहरण के लिए महिलाओं की सेवा को अनिश्चित माना जाता है। शादी के बाद वे या तो प्रायः सर्विस छोड़ देती हैं या किसी न किसी प्रकार का रोड़ा आ ही जाता है। एक शोध के अनुसार शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रवेश पाने वाली महिलाओं में से 80% महिलाएं ही ट्रेनिंग पूरी कर पाती हैं। इसी बीच उनको शादी या अन्य कारणों से ट्रेनिङ्ग छोड़नी पड़ती है। ट्रेनिङ्ग पूरी करने के बाद भी कोई गारन्टी नहीं कि वे सर्विस करें ही।

इन सब समस्याओं पर चारों ओर से प्रहार किया जाना चाहिए। दीर्घ कालीन योजना तयार हो जाय कि आने वाले वर्षों में किन किन व्यवसायों में कितने कितने व्यक्तियों की आवश्यकता होगी तथा उसी के अनुसार जन बल प्रशिक्षित किया जाय। यदि जरूरत से अधिक नवयुवक पढ़ रहे हैं शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश ले रहे हैं या प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं तो उनकी प्रवेश क्षमता तुरन्त घटाई जाए।

जो डाक्टर या अन्य कर्मचारी शिक्षक, सामाजिक कार्य-कर्त्ता गांवों में काम नहीं करना चाहते हैं उनके भी कारणों का, अभाव अभियोगों का निवारण होना चाहिए। उन्हें गांवों में काम करने के लिए विशेष वेतन दिया जाना चाहिए। एक तरीका यह भी हो सकता है कि सरकारी सर्विस पाने वालों को प्रथम गांवों में कुछ निश्चित समय सेवा काम करना अनिवार्य कर दिया जाय। गांवों में प्रायः कार्य कर्त्ताओं को आवास की असुविधा रहती है। इस समस्या के निवारण हेतु सरकारी कर्मचारियों के लिए सरकारी भवन बनवाए जाने चाहिएं।

महिलायें जो काम करती हैं तथा शादी के बाद छोड़ देती हैं। उनके लिए ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि शादी के बाद 8–10 वर्ष विवाहित जीवन आनन्द

पूवक बिताले तथा इस काल के बाद यदि वे चाह तो उन्हें फिर से नियोजित करली जाय फिर मे सविस द दी जाए। पाश्चात्य देशा म इस प्रकार की व्यवस्था है। प्रयोग के तौर पर ही सही किसी एक क्षेत्र म इस प्रकार की व्यवस्था की जानी चाहिए। सरकार को इन सब पहलुग्रा पर दूरदर्शी व गत्यात्मक दृष्टिकोण से देखना चाहिए।

ग्रध्यापिकाग्रो की कमी को पूरा करन के लिए पढने वाली बालिकाग्रो को यदि वे एक निश्चित समय तक सरकारी नौकरी करन की प्रतिज्ञा करें तो सरकार को उन्हें छात्रवत्ति प्रदान करना चाहिए। शिक्षा विभाग, राजस्थान ने इसी प्रकार की योजना के अन्तगत 8 से 11वी कक्षाग्रो की उन छात्राग्रो के लिए, जो सरकारी नौकरी करने को प्रतिज्ञा करती हैं 25 00 रुपये प्रतिमाह की छात्रवृत्ति की व्यवस्था की है। ग्रन्य राज्यो को भी इससे पाठ सीखना चाहिए।

ग्रामीण क्षेत्रा म डॉक्टर, इञ्जीनियर, शिक्षक ग्रादि की सेवायें प्राप्त हो सकें इसके लिए यह भी किया जा सकता है कि उन्ही क्षेत्रा के या स्थानीय व्यक्तिया को वहा नियुक्तिया दी जाएँ।

यदि सरकार समझती है कि देश का भारी मात्रा मे ग्रौद्योगीकरण होता है। इञ्जीनियस की भारी मात्रा मे जरूरत पडेगी तो वतमान बेकार इञ्जीनियस के लिए भी काम ढूढना चाहिए। जमनी मे 70% तथा जापान म 50% विद्यार्थी माध्यमिक शिक्षा के बाद तकनीकी शिक्षा प्राप्त करते हैं जबकि भारत मे 10 या 12% विद्यार्थी ही तकनीकी शिक्षा प्राप्त करते हैं। इस दृष्टिकोण से तकनीकी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियो के लिए भारत म भी रोजगार के पर्याप्त ग्रवसर होने चाहिएँ। CSIR के एक सर्वे के ग्रनुसार इन बेरोजगार इञ्जीनियस मे से 30% का इञ्जीनियरिङ्ग इन्स्टीट्यूटस मे ही काम दिया जा सकता है पर ग्रधिकारी लोगो ने ग्रपने निहित स्वार्थों के कारण इन पदो को खाली रख छोडा है।

सविधान के ग्रनुसार पुरुष तथा महिलाग्रो को चाह कितनी ही समानता दे दी जाय पर ग्रामीण क्षेत्रा के शिक्षा प्राप्त व्यक्ति जब उच्च पदा पर काय करते हैं तो स्थानीय लागा की दृष्टि मे वे गिर जाते हैं व उनकी टीका टिप्पणी करते हैं। ऐसी स्थिति म ग्रधिक जन शक्ति का उपयोग करने के लिए ग्रावश्यक है कि जन साधारण क दृष्टिकोण म परिवतन लाया जाय, उनका मानस बदला जाय।

पिछले 17 वर्षों मे खाद्यान्नो के ग्रधिक उत्पादन से प्रति व्यक्ति 1636 केलरिज से बढ कर 2014 केलरिज हो गई है। प्रति व्यक्ति प्रतिदिन खाना 12 8 ग्रौंस से बढकर 15 4 ग्रौंस हो गया है। इसी भाति प्रति व्यक्ति प्रति वष कपडे का उपयोग 11 मीटर से बढ कर 15 मीटर हो गया है। फिर भी देश वासियो को

आर्थिक नियोजन के सभी लाभ इसलिए प्राप्त नही हुए कि आशा के प्रतिकूल यहाँ की जनसंख्या मे जादू के समान वद्धि हो रही है। यही जनसख्या की वद्धि आर्थिक विकास के बढे हुए लाभ को समाप्त कर देती है। वतमान परिस्थितियो मे जनसख्या पर नियन्त्रण पाना प्रथम स्थान पर अत्य त आवश्यक है।

विभिन्न सस्थाओ मे प्रवेश सम्बन्धी विषयो मे इस प्रकार सशोधन करना चाहिए कि वहा देश की सामाजिक, आर्थिक आवश्यकताओ के अनुसार ही व्यक्तियो को प्रवेश दिया जा सके जिससे अधिक व्यक्ति वहाँ पढ कर पढाइ समाप्त कर अपने को आर्थिक दृष्टि से असुरक्षित अनुभव न करें। जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने के योग्य हैं, केवल उन्हे ही उच्च शिक्षा की सस्थाओ म प्रवेश दिया जाए। विद्यार्थियो को उनकी क्षमताओ योग्यताओ से परिचित कराया जाना भी बहुत आवश्यक है। प्रवेश की योग्यता शुल्क चुका सकने की या शिक्षा का भार सहन करने की योग्यता ही नही होनी चाहिए। इस सम्बन्ध मे कोठारी शिक्षा आयोग (1964–66) के विचार सराहनीय हैं। उनके अनुसार प्राथमिक शिक्षा के बाद उच्च शिक्षा के लिए प्रवेश की विधि को निम्न चार आधारो से नियन्त्रित किया जाना चाहिए—

(अ) उच्च शिक्षा की सामान्य जनता की माग

(आ) प्रकृतिप्रदत्त क्षमताओ व योग्यताओं का पूरा पूरा विकास

(इ) शिक्षा के वाछित स्तर को बनाये रखते हुए शक्षणिक सुविधायें जुटान की समाज की तत्परता तथा

(ई) आवश्यक्तानुसार प्रशिक्षित जनशक्ति (देखिये—Report of the Kothari Education Commission Ministry of Education Government of India New Delhi The Manager Publications Division First Edition 1966 pp 90 92।

डा प्रेम कृपाल देखिये—'A decade of Education in India Delhi The Indian Book Co 1968 p 18) भी 5 वष की प्राथमिक शिक्षा 1976 तक तथा 7 वष की प्राथमिक शिक्षा 1986 तक जन साधारण का प्राप्त हो जाने की सोचते हैं। पर वे शिक्षण सस्थाओ मे प्रवश को शिक्षित जन शक्ति की आवश्यकताओ या रोजगार के अवसरा से जोडना चाहते हैं। वतमान रुख के अनुसार माध्यमिक शिक्षा के लिए 45 तथा उच्च शिक्षा के लिए 6 विद्यार्थियो को 1985–86 तक प्रवेश दिया जा सकेगा। प्रवेश के प्रश्न को एक दूसरे दृष्टिकोण से भी देखना चाहिए। प्रवेश सीमित करना या सस्थाएँ बद करना क्या राजनतिक

कारणों से सम्भव है ? ऐसा करने से प्रति विद्यार्थी शिक्षा पर होने वाला खर्च भी बढ़ जाएगा, इन सब बातों पर अग्रिम विचार किया जाना चाहिए।

कोठारी शिक्षा आयोग (1964 66) ने इण्डियन स्टेटिस्टीकल इन्स्टीट्यूट तथा लंदन स्कूल आफ इकनॉमिक्स की शोध के आधार पर सुझाव दिया है कि यदि देश में राष्ट्रीय आय 6 6% बढ़ती रहे तो मैट्रिक या उच्च शिक्षित व्यक्तियों की 1976 में 16 6 लाख की (8% वार्षिक वृद्धि के हिसाब से) आवश्यकता होगी व 1986 में 32 6 लाख व्यक्तियों की 7% वार्षिक वृद्धि के अनुसार। इस प्रकार इनका 1961 से 1986 का अनुपात 3 11 बताया गया। मैट्रिक पास होने वाले विद्यार्थियों में प्रति वर्ष 8 7% की वृद्धि का अनुमान लगाया गया। मैट्रिक से स्नातक होने का कार्य 1966 में केवल 1 5% से 5% विद्यार्थियों तक बढ़ाया गया। आयोग के ये सुझाव क्रान्तिकारी लग सकते हैं पर आयोग ने इन्हें आसानी से प्राप्त करने योग्य माना है। (पृष्ठ 97 99)

आयोग के अनुसार 1986 तक देश में 8 75 लाख इन्जीनियर (12% वार्षिक वृद्धि के अनुसार) प्राप्त होंगे। आयोग के अनुसार तब तक सभी वस्तुएँ भारत में ही बनने लगेंगी तथा विदेशों से कोई वस्तु नहीं मंगाई जायेगी।

आयोग ने यह भी सिफारिश की है कि इन्जीनियरिङ्ग, कृषि, चिकित्सा एवं उच्च शिक्षा के लिए शिक्षकों की तैयारी के अनुमान राष्ट्रीय स्तर पर तैयार किए जायें तथा उसी अनुपात में प्रवेश दिए जायें (पृष्ठ 102)।

आयोग ने यह भी चाहा है कि डिग्री स्तर की शिक्षा के अन्तिम वर्ष की शिक्षा के साथ उन्हें कार्य दिया जाय। MBBS के विद्यार्थियों के समान ही अन्य स्नातकों को इन्टर्नशिप के रूप में कार्य दिया जाना चाहिए। (पृष्ठ 105)

सामान्य नियोजन शैक्षिक नियोजन को भी अपने में समाविष्ट कर लेता है। किसी भी उत्पादन के लिए हुए लक्ष्यों से व्यावसायिक ढांचे में परिवर्तन आता है एवं परिवर्तन स्वयं भी शिक्षा का प्रकार व स्तर निश्चित करता है। योजनाधिकारी व्यावसायिक श्रेणी, शिक्षा के क्षेत्र व स्तर से जन शक्ति का अनुमान तय कर सकते हैं।

आज तक कहीं भी किसी रूप में शिक्षा के स्तर या प्रकार से व्यवसाय का सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया है। यही उत्पादन, जन शक्ति व शिक्षा की योजना बनाने वालों के सामने बहुत बड़ी चुनौती है। शीर्षस्थ शैक्षिक प्रशासक उच्च व मध्य स्तर के प्रशिक्षित व्यक्तियों की शिक्षा के व शिक्षा से जुड़े क्षेत्र में कितनी आवश्यकता होगी, गाँवों में आर्थिक विकास को लेकर कितने व किस प्रकार के व्यक्तियों की आवश्यकता

आर्थिक नियोजन के सभी लाभ इसलिए प्राप्त नही हुए कि आशा के प्रतिकूल यहाँ की जनसख्या मे जादू के समान वद्धि हो रही है। यही जनसख्या की वृद्धि आर्थिक विकास के बढ़े हुए लाभ को समाप्त कर देती है। वतमान परिस्थितियो मे जनसख्या पर नियन्त्रण पाना प्रथम स्थान पर अत्यन्त आवश्यक है।

विभिन्न सस्थाओ मे प्रवेश सम्बन्धी विषयो म इस प्रकार सशोधन करना चाहिए कि वहाँ देश की सामाजिक, आर्थिक आवश्यकताओ के अनुसार ही व्यक्तियो को प्रवेश दिया जा सके जिससे अधिक व्यक्ति वहाँ पढ कर पढाई समाप्त कर अपने को आर्थिक दृष्टि से असुरक्षित अनुभव न करें। जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने के योग्य हैं, केवल उन्हे ही उच्च शिक्षा की सस्थाओ म प्रवेश दिया जाए। विद्यार्थियो को उनकी क्षमताओ, योग्यताओ से परिचित कराया जाना भी बहुत आवश्यक है। प्रवेश की योग्यता शुल्क चुका सकने की या शिक्षा का भार सहन करने की योग्यता ही नही होनी चाहिए। इस सम्बन्ध मे कोठारी शिक्षा आयोग (1964–66) के विचार सराहनीय हैं। उसके अनुसार प्राथमिक शिक्षा के बाद उच्च शिक्षा के लिए प्रवेश की विधि को निम्न चार आधारो से नियन्त्रित किया जाना चाहिए—

(अ) उच्च शिक्षा की सामान्य जनता की माग

(आ) प्रकृतिप्रदत्त क्षमताओ व योग्यताओ का पूरा पूरा विकास

(इ) शिक्षा के वाछित स्तर को बनाये रखते हुए शक्षणिक सुविधायें जुटाने की समाज की तत्परता, तथा

(ई) आवश्यकतानुसार प्रशिक्षित जनशक्ति (देखिये—Report of the Kothari Education Commission Ministry of Education Government of India New Delhi The Manager Publications Division First Edition 1966 pp 90 92।

डा प्रेम कृपाल देखिये— A decade of Education in India Delhi The Indian Book Co 1968, p 18) भी 5 वष की प्राथमिक शिक्षा 1976 तक तथा 7 वष की प्राथमिक शिक्षा 1986 तक जन साधारण को प्राप्त हो जाने की सोचते ह। पर वे शिक्षण सस्थाओ म प्रवेश को शिक्षित जन शक्ति की आवश्यकताओ या रोजगार के अवसरो से जोडना चाहते हैं। वतमान रुख के अनुसार माध्यमिक शिक्षा के लिए 45% तथा उच्च शिक्षा के लिए 6 विद्यार्थियों को 1985–86 तक प्रवेश दिया जा सकेगा। प्रवेश के प्रश्न का एक दूसरे दृष्टिकोण से भी देखना चाहिए। प्रवेश सीमित करना या सस्थाए बद करना क्या राजनतिक

कारणों से सम्भव है ? ऐसा करने से प्रति विद्यार्थी शिक्षा पर होने वाला खर्च भी बढ जाएगा, इन सब बातों पर अग्रिम विचार किया जाना चाहिए ।

कोठारी शिक्षा आयोग (1964 66) ने इण्डियन स्टेटिस्टीकल इन्स्टीट्यूट तथा लन्डन स्कूल आफ इकनॉमिक्स की शोध के आधार पर सुझाव दिया है कि यदि देश म राष्ट्रीय आय 6 6% बढती रहे तो मट्रिक या उच्च शिक्षित व्यक्तियो की 1976 मे 16 6 लाख की (8% वार्षिक वृद्धि के हिसाब से) आवश्यकता होगी व 1986 म 32 6 लाख व्यक्तियो की 7% वार्षिक वृद्धि के अनुसार । इस प्रकार इनका 1961 से 1986 का अनुपात 3 11 बताया गया । मट्रिक पास होने वाले विद्यार्थियो म प्रति वष 8 7% की वृद्धि का अनुमान लगाया गया । मट्रिक से स्नातक होने का काय 1966 म केवल 1 5% से 5% विद्यार्थियो तक बढाया गया । आयोग के ये सुझाव क्रान्तिकारी लग सकते हैं पर आयोग ने इन्हें आसानी से प्राप्त करने योग्य माना है । (पृष्ठ 97 99)

आयोग के अनुसार 1986 तक देश म 8 75 लाख इन्जीनियर (12% वार्षिक वृद्धि के अनुसार) प्राप्त होंगे । आयोग के अनुसार तब तक सभी वस्तुएँ भारत म ही बनने लगेंगी तथा विदेशो से कोई वस्तु नही मगाई जायेगी ।

आयोग ने यह भी सिफारिश की है कि इन्जीनियरिङ्ग, कृषि, चिकित्सा एव उच्च शिक्षा के लिए शिक्षको की तयारी के अनुमान राष्ट्रीय स्तर पर तयार किए जाय तथा उसी अनुपात म प्रवेश दिए जायें (पृष्ठ 102) ।

आयोग ने यह भी चाहा है कि डिग्री स्तर की शिक्षा के अंतिम वष की शिक्षा क साथ उन्हें काम दिया जाय । MBBS के विद्यार्थियो के समान ही अन्य स्नातको को इनटनशिप के रूप में काय दिया जाना चाहिए । (पृष्ठ 105)

सामान्य नियोजन शक्षिक नियोजन को भी अपने म समाविष्ट कर लेता है । किसी भी उत्पादन के लिए हुए लक्ष्यो से व्यावसायिक ढाचे मे परिवतन आता है एव परिवतन स्वय भी शिक्षा का प्रकार व स्तर निश्चित करता है । योजनाधिकारी व्यावसायिक श्रेणी, शिक्षा के क्षेत्र व स्तर से जन शक्ति का अनुमान तय कर सकते हैं ।

आज तक कही भी किसी रूप मे शिक्षा के स्तर या प्रकार से व्यवसाय का सम्बन्ध नही जोडा गया है । यही उत्पादन, जन शक्ति व शिक्षा की योजना बनाने वाला के सामने बहुत बडी चुनौती है । शीघ्रस्थ शक्षिक प्रशासक, उच्च व मध्य स्तर के प्रशिक्षित व्यक्तियो की शिक्षा के व शिक्षा से जुडे क्षत्र म कितनी आवश्यकता होगी, गाँवो म शक्षिक विकास को लेकर कितनी व किस प्रकार के व्यक्तियो की आवश्यकता

होगी ? इस पर भी विचार किया जाना चाहिए । व्यावसायिक विश्लेषण के आधार पर योजना बननी चाहिए । अत प्रशिक्षण तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विकास किया जाना चाहिए । इस स्थिति के लिए तो आज सोचा ही नही जा सकता कि उपयुक्त वेतन न मिलने पर प्रशिक्षित व्यक्ति भी काय करना अस्वीकार करेंगे ।

समस्या शिक्षित व्यक्तिया का नौकरी देने की ही नही है वरन इससे अधिक महत्वपूर्ण समस्या है उन्ह कहाँ व कसे नौकरी देने की । शिक्षा प्राप्त कर हर व्यक्ति शहर को दौडता है, शिक्षा प्रणाली को इस प्रकार सशोधित या परिवर्द्धित किया जाय कि शिक्षा उनको गावो म रहने को प्रेरित करे, गावा म रह कर रोटी कमाय अत पाठयक्रम का इस प्रकार बदला जाय कि वह ग्रामीण आवश्यक्ताओ का पूरा करे । यही हालत उच्च शिक्षा की भी है । इस गलती को सुधारने के लिए नीति निर्देशको का शक्षिक आयोजन म नये मूल्या व नई मनोवृत्तियो को भी स्थान दना चाहिए । शक्षिक आयोजन के समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि कृषि का कसे आधुनिकीकरण किया जाय तथा कृषि विषया म शिक्षित व्यक्ति कृषि काय ही जीविका के लिए अपनाय । आज के विद्यार्थियो का ज्ञानवृद्धि की तकनीक प्राविधिक तथा समस्या क हल करन के तरीके सिखाना चाहिए जिससे वे विवेक से सामाजिक परिवतन की प्रक्रिया मे योग दे सक तथा मानव की महत्ता समानता स्वतन्त्रता एव सामाजिक न्याय के प्रति सजग हो सकें ।

शिक्षा प्रणाली के सम्बन्ध म दो बातें चल रही हैं । एक विचार के अनुसार शिक्षा चातुय या रोजगार से कोई सम्बन्ध नही रखती है तथा दूसरे के अनुसार शिक्षा चातुर्यों को जन्म दती है । अर्द्ध, विकसित राष्ट्र मे शिक्षा केवल चातुर्यों का ही विकास नही करती है बल्कि मनोवृत्ति प्रेरक, प्रेरणा आदि भी प्रदान करती है । शिक्षा से नइ मनोवृत्तिया नय मूल्या तथा व्यवहार के नये प्रतिमाना का विकास होता है जो कि आर्थिक विकास मे मदद करते हैं । मानवीय विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया म शिक्षा की अपनी भूमिका है । पुस्तको, व्याख्याना से सीखी हुइ आशिक बुद्धिमता, मनोवृत्तिया, मूल्यो तथा विश्वासो के विकास से बनी हुई विचारधाराओ को बाँटा नही जा सकता । प्राय शिक्षित श्रम म अधिक गतिशीलता पायी जाती है । आज भी एशिया के कई अर्द्ध विकसित देशो म कई पद शिक्षित व्यक्तियो के प्राप्त न होने से रिक्त पडे हैं तथा साथ ही अन्य विकसित देशो मे शिक्षित व्यक्ति भारी सख्या म बेरोजगार हैं ।

यह आशा नही करना चाहिए कि आर्थिक गतिविधि या क्रिया यदि किसी व्यक्ति को रोजगार न दे सके तो शिक्षा दे दगी । विद्यालय समाज के एक साथ कई काय करता है । कहना न होगा कि अन्य उपायो क साथ शाला की भी रोजगार के

अवसरो म वृद्धि करने के लिए अपनी भूमिका है तथा उत्पादन के क्षेत्र मे शिक्षा सीधा विनियोग (Investment) है।

यह सभी जानते हैं कि देश के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए नियोजन रामबाण औषधि है। आवश्यकता इस बात की है कि देश के आर्थिक विकास की समस्याओ के सन्दर्भ म शिक्षिता की बेकारी के निवारणार्थ सजनात्मक रूप से सगठित एव सतुलित प्रयत्न किए जाएँ। देश के मान्य निमाताओ, शिक्षाधिकारियो एव प्रशासको को अब तक की हुई गल्तिया से पाठ सीखकर आने वाली योजनाओं को नया मोड देना चाहिए। यदि इन कठिनाइया का हल मिल सका तो नियोजन अपनी खोई प्रतिष्ठा फिर से प्राप्त कर लेगा।

/

———

7 ब्रेन-ड्रेन

देश के विकास और समृद्धि मे दिलचस्पी रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस बात से चिंतित है कि प्रगतिशाली वैज्ञानिकों इन्जीनियरों और डाक्टरो तथा अन्य तकनीकी विषयों की उच्च शिक्षा और प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों मे विदेशो में काम प्राप्त करने का आकर्षण निरंतर बढता जा रहा है। यह समस्या इस दृष्टि से और गम्भीर हो उठती है कि इन लोगो का अपने देश म विकास के लिए बेहद आवश्यकता है। वस्तुत अपने योजनाबद्ध विकास के लिए जितने वैज्ञानिकों, इन्जीनियरो डाक्टरो और टक्नालाजी के विशेषज्ञों की आवश्यकता है, व देश म उपलब्ध नही हैं और इसके लिए हम अक्सर विदेशों का मुँह जोहना पडता है।

सभी माता पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे अच्छी से अच्छी शिक्षा प्राप्त करें विश्व विख्यात शिक्षा सस्थानो म पढें। पढ़ लिखकर, योग्यता प्राप्त कर देश की अधिकतम सेवा करें, देश के प्राविधिक एव वैज्ञानिक विकास म अपना योगदान दें। यहाँ तक तो सभी सहमत हैं, पर विश्व विख्यात स्थानों पर पढ कर स्थायी या अस्थायी रूप से विदेशो म बस जायें—लोगो म यह प्रवृत्ति अधिकाधिक बढती जा रही है। यही पहलू आज के शिक्षाशास्त्रियो अर्थशास्त्रियो, राजनीतिज्ञो तथा आयोजको के लिये गम्भीर सिरदर्द बनता जा रहा है।

अब प्रश्न यह उठता है कि ये लोग विदेशो म जाकर क्या काम करना चाहते हैं? इसके दो कारण हो सकते हैं—विदेशो म सम्बंधित विषयो की उच्च कोटि के अनुसधान की सुविधा और उच्च वेतन तथा अन्य सुख सुविधाओ का आकर्षण। और मनुष्य की इन स्वाभाविक स्वार्थवृत्तियो से सघर्ष होता है उसके देश प्रेम का। इन रुचियो म समन्वय नही होता। जब पहली रुचि तीव्रतम होती हैं तो वह दूसरी पर हावी हो जाती है और व्यक्ति को उस स्थान पर जाने के लिए विवश कर देती है जहाँ उसे अपने विषय म शोध करने की अच्छी सुविधा मिल सकती है। इसके विपरीत स्थिति म वह अपने देश की उन्नति की बात सोचता है। इन स्थितियो म व्यक्ति अपनी रुचि विवेक जीवन मूल्यो, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा अपने सस्कारो के आधार पर निर्णय लेता है।

यह भी सच है कि सभी बाहर जाने वाले व्यक्ति उच्चस्तर की प्रतिभा वाले नही होते और यह भी आवश्यक नही कि उनके बिना भारत का काम ही न चलता

हो। पर इस बात की उपेक्षा नही की जा सकती कि उनकी शिक्षा-दीक्षा देश मे हुई है, देश के विश्वविद्यालयो म उन पर भारी व्यय किया गया है, उनको अच्छे अच्छे शिक्षक उपलब्ध कराये गए हैं उन्हे पुस्तकालयो की सुविधा प्रदान की गई है। अत उनका अपने देश के प्रति भी कुछ कर्त्तव्य है। इसलिए विदेशो मे जाकर नौकरी कर लेना या वहा जाकर अनिश्चित समय के लिए बस जाना, देश के विकास मे सहायक नही हो सकता। ऐसे व्यक्तियो मे अधिकतर वे हैं जो बाहर अध्ययन के लिए जाते हैं और काम मिलने पर वही बस जाते हैं। अधिकाश अमेरिका जाते हैं। वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसधान परिषद के अनुसार *1959–64* के *5* वर्षों मे *6900* वैज्ञानिक अमेरिका गए तथा 2800 ही वापस लौटे। इससे इस समस्या की गम्भीरता आंकी जा सकती है। केवल 1964–65 मे अमेरिका म पढे लिखे व्यक्तियो को भेजने मे भारत का दूसरा स्थान था। इन व्यक्तियो का विषयानुसार वर्गीकरण इस प्रकार था—

इजीनियरी	2880	भौतिकी एव संस्कृति	1561
समाजशास्त्र	690	मानविकी	455
व्यावसायिक प्रशासन	342	कृषि	322
चिकित्सा विज्ञान	285	शिक्षा	225

बाहर जाने वाले व्यक्तियो की सख्या दिन प्रति दिन बढ रही है। 1952 म बाहर जाने वाले 1196 व्यक्ति थे, जबकि 1960 मे 7420।[1] मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि 1952 की अपेक्षा 1960 म छह गुने विद्यार्थी बाहर गए। विदेश जाने वालो मे 70 प्रतिशत शुद्ध व व्यावहारिक विज्ञानो के तथा शेष कला मानविकी वाणिज्य, शिक्षा तथा विधि स्नातक थे। 1961–66 म जितने व्यक्ति पजीकृत हुए उनम से केवल आधे ही लौटे। लौटने वालो म प्राविधिक और कृषि विज्ञान की शिक्षा प्राप्त व्यक्ति अधिक तथा इजीनियर कम थे। इसी प्रकार व्यावसायिक प्रशिक्षण लेकर लौटने वालो की सख्या म भी गिरावट आई। इसका कारण स्पष्ट था कि व्यक्ति अपने पूर्व निश्चित समय से अधिक रुके, उन्हे स्थायी रोजगार मिल गया और व वही रह गय। वैसे भी तीन चौथाई विद्यार्थियो को 1967 म विदेशी सहायता प्राप्त हुई थी, जब कि 1952–60 की अवधि मे 25 से 45 प्रतिशत ही विदेशी सहायता पर थे।

जो विद्यार्थी बाहर पढ रहे हैं उनम से 58 प्रतिशत विज्ञान के डाक्टर हैं तथा उनम से आधे डॉक्टर की उपाधि भारत मे ही प्राप्त कर चुके हैं 28 प्रतिशत

---

1 Education in India Ministry of Education, Government of India New Delhi Publication Divison, Vol II, Table IV

स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त हैं। इसी प्रकार ये स्नातकोत्तर विद्यार्थी तथा अन्य इन्जीनियर वहाँ उच्च शोध काय मे लग हुए हैं। 12 प्रतिशत वनानिक तथा 17 प्रतिशत इन्जीनियर जाने के समय 30 वप से कम आयु के थ 78 प्रतिशत वनानिका तथा कुछ इन्जीनियरा को जान के समय भारत म भी रोजगार प्राप्त था। निम्नाकित सारणी दृष्टव्य है।

सभी क्षेत्रो म प्रतिभाशाली उच्च शिक्षित व्यक्तियो का बाहर जाना भारत की अथव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है, जिसका मूल कारण रोजगार क अवसरो के अनुमान के अनुसार शिक्षा का, मूलत उच्च शिक्षा का, आयोजन न करना है।

विभिन्न क्षेत्रो मे बाहर जाने और लौटने वाले व्यक्ति (1961–66)[1]

	1 जनवरी, 61		1 जनवरी, 63		1 जनवरी, 64		1 माच 66		1 माच, 67	
क्षेत्र	कुल गये	प्र०श०लौटे	कुल गये	प्र०श०लौटे	कुल गये	प्र०श०लौट	कुल गये	प्र०श०लौटे	कुल गये	प्र०श०लौट
वनानिक	1122	44	1823	46	2201	48	3023	49	3292	51
इन्जीनियर	2261	38	3309	44	3945	44	5000	46	6067	49
तक्नीशियन	418	45	625	52	707	57	892	53	920	55
कृषि विशेषज्ञ	175	48	242	51	294	57	390	52	424	53
चिकित्सक	403	41	854	48	1175	48	1910	47	1947	45
योग	4379	41	6853	45	8322	47	11215	48	12650	49

1 Various Issues of Technical Manpower New Delhi Council of Scientific and Industrial Research 1965 66

उच्च शिक्षित व्यक्तियो की माग और पूर्ति (1951–66)
(+ अधिकता,—कमी)

क्षेत्र	1951–58	1958–61	1961–66
इन्जीनियरी			
डिप्लोमा	−18 6	−46 6	24 0
डिग्री	−10 3	−21 9	−1 5
कृषि स्नातक	−31 0	−47 0	−30 0
पशु विनान स्नातक	अप्राप्त	−4 0	−25 0
चिकित्सा विनान स्नातक	अप्राप्त	−20 0	अप्राप्त

स्पष्ट है कि एक तरफ विज्ञान स्नातको मे बेकारी है तथा दूसरी ओर पद खाली पडे हैं, उपयुक्त व्यक्ति नही मिल रहे हैं। कुछ अशो म तो दोनो बातें साथ साथ चलती है, और चलेंगी, क्योकि अथशास्त्र के अनुसार पूण रोजगार की आदश स्थिति कभी नही आ सकती है।

1955 म लगभग 10 प्रतिशत एम० एस सी० व्यवसायो म तथा 7 प्रतिशत शोध क्षेत्रो म काम कर रहे थे। कुछ इन्जीनियरो को ओवरसीयर या डिप्लोमा होल्डर्स का काम दिया गया—इस प्रकार उनको उपयुक्त वेतन प्राप्त नहीं था। 1961 म 38 प्रतिशत कृषि स्नातक राज्य के अन्य विभागो म पदासीन थे, जिसका फल हुआ कि कृषि शोध, शिक्षा और कृषि विस्तार के लिए उपयुक्त व्यक्ति नही मिले। 1954 म 68 प्रतिशत चिकित्सा विनान के स्नातको न निजी काय स्वीकार कर लिया तथा राज्य के चिकित्सालयों मे काम नही किया। सम्भवतया वे चिकित्सालय गावो म थ और इन लोगो न गावो म काम करना पसद नही किया और इस प्रकार यह क्षेत्रीय असन्तुलन बढता गया। एक ओर वनानिको की बेकारी दूसरी ओर उपयुक्त व्यक्तियो का न मिलना, सावजनिक तथा निजी क्षेत्र के व्यक्तियो की उदासीनता का फल है। यही प्रवृत्ति दूसरी ओर वनानिक कार्यों को हानि पहुँचाती है।

वज्ञानिकों तथा इन्जीनियरों का अमेरिका मे निवास

देश	अमेरिका म निवास (1956–61) के औसत			1959 मे उत्तीर्ण इन्जीनियरो व वनानिको का प्रतिशत		
	वनानिक	इन्जीनियर	दोनो	वज्ञानिक	इन्जीनियर	दोनो
1	2	3	4	5	6	7
फ्रास	26	56	82	0 5	1 2	0 9
जमनी	124	301	425	6 0	9 8	3 2
नीदरलण्ड	34	102	136	7 9	21 8	15 1
यू० के०	155	507	622	2 6	17 2	7 4
योग						
पश्चिमी यूरोप	339	966	1305	2 5	8 7	5 4

1	2	3	4	5	6	7
ऑस्ट्रिया	23	43	66	—	10 9	7 0
यूनान	14	50	64	3 6	20 7	10 2
आयरलण्ड	13	32	45	4 7	15 4	9 3
इटली	29	42	71	0 9	1 7	1 3
नार्वे	6	72	78	3 4	23 8	16 2
स्वीडन	8	97	105	1 3	16 3	8 8
स्विट्जरलैण्ड	38	96	134	10 6	22 4	17 0
कनाडा	212	1027	1239	12 5	48 0	32 3
सम्पूर्ण योग	1114	3755	4869	—	—	—

अमेरिका के वाशिंगटन स्थित न्याय तथा विदेश विभाग के 1953–66 के आंकड़ो से कुछ सामान्य निष्कर्ष इस प्रकार निकाले जा सकते हैं —

(1) अमेरिका जाने वाले व्यक्तियो म 20 प्रतिशत तकनीशियन तथा व्यवसायी हैं तथा यह प्रवृत्ति बढती जा रही है।

(2) जाने वाले व्यक्ति एशिया और अफ्रीका के अद्ध विकसित देशो से जा रहे हैं।

(3) अद्ध विकसित देशा मे जाने वाले तकनीकी व व्यवसायो की बहुतायत है। तथा

(4) इनम वे व्यक्ति अधिक है जो अपने देशो से आकर वहाँ विद्यार्थी के रूप मे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

विभिन्न क्षेत्रो मे बाहर जाने वाले विद्यार्थियों की सख्या (सैकड़ों मे)

क्षेत्र	जाने वाले			लौटने वाले		
	1953	1956	1960	1953	1956	1960
शुद्ध विज्ञान	5 8	8 0	11 3	0 6	0 7	1 2
इन्जीनियरी	6 7	5 9	18 7	0 7	0 7	2 4
कृषि विज्ञान	4 5	6 3	4 3	0 4	0 5	0 7
चिकित्सा और पशु विज्ञान	12 6	10 9	25 0	1 0	0 9	2 3

इन तालिकाओ पर भी कुछ अशा मे ही विश्वास किया जाना चाहिए क्योकि वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसधान परिषद की राष्ट्रीय पंजिका म नाम लिखवाना

प्रत्याशी की इच्छा पर निभर है। इसी प्रकार बहुतो के नाम लौटने के बाद भी लिखे रहते हैं। इस प्रकार जो पहले से ही यह निश्चय करके जाते हैं कि उन्हे वहीं रहना है, बसना है तो बहुत सम्भव है कि वे पजिका म अपने नाम भी न लिखवाना चाहें तथा कई मामलो मे ऐसा हुआ भी है।

एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार सितम्बर 1962 से सितम्बर 1964 तक 709 डाक्टर भारत से बाहर गए तथा इसी अवधि मे 473 लौटे। इस प्रकार प्रतिवर्ष भारत 118 डाक्टरों की सेवा से वचित हुआ जो भारत मे तयार होने वाले (1961 की शिक्षण सस्थाओ की भर्ती के अनुसार) चिकित्सको का 3 प्रतिशत है।

ब्रेन ड्रेन का अर्थशास्त्र

मोटे रूप मे राष्ट्रीय दृष्टिकोण के अनुसार यह कहा जा सकता है कि उच्च शिक्षा प्राप्त वज्ञानिको आदि का इस प्रकार बाहर जाना किसी भी राष्ट्र के लिए हानिकारक है। साधन सम्पन्न देश निधन दशा के प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों को हर प्रकार का लालच देकर हर कीमत पर अपने यहाँ बुलाते हैं तथा इस भांति धनी देश अधिक धनी होते चले जाते हैं, जो केवल अपने स्वार्थों की ही पूर्ति म लगे रहते हैं तथा वे निधन देशो की परवाह नही करते। बाहर जाने वाला मे 36 प्रतिशत विज्ञान म प्रथम श्रेणी के स्नातकोत्तर या उससे अधिक उपाधिधारी हैं, 65 प्रतिशत के पास पी एच० डी० की उपाधि है तथा केवल 3 प्र० श० तृतीय श्रेणी म उत्तीण व्यक्ति हैं। इससे देश म होने वाला खच प्रति विद्यार्थी बहुत बढ जाता है, क्योंकि एक प्रभावशाली शिक्षक, योग्य डाक्टर, अनुभवी इन्जीनियर, दक्ष तकनीशियन पलक झपकते ही तयार नही हो जाते। बहुत अधिक सख्या म योग्य व्यक्तियो को तयार करने में सदियां लग जाती हैं।

प्रतिभा सम्पन्न और प्रशिक्षित व्यक्ति के बाहर जाने से देश के शेष निवासी भी हानि उठाते हैं यदि बाहर गए व्यक्ति के कारण उनकी सम्पूण आय पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है अथवा आय बुरी तरह से घट जाती है। यह निश्चित रूप से देश की हानि हुई यदि बाहर जाने वाले व्यक्ति अपने लिए सरकार द्वारा किए गए सावजनिक व्यय के भुगतान म उससे अधिक कर चुका रहे हैं तथा उनको अपनी सेवाओ के बदले अधिकतम पारिश्रमिक दिया जा रहा है। ऐसी स्थिति में उपयुक्त लगता है कि देश के आयोजक सावजनिक व्यय तथा करारोपण पर पुनर्विचार करें।

प्रशिक्षित व्यक्ति आर्थिक योगदान से भी कुछ अधिक देश के विकास म योगदान करता है। यह कुछ अधिक—योगदान व तभी कर सकते हैं जबकि वे अपने देश म रहे। यदि वे देश स बाहर चले जाते हैं तो देश के विकास म उनका कोई योगदान नही होता। बाहर जाने वाला व्यक्ति वहा अधिक रुचि से काम करता है निश्चय ही वह अधिक उपाजन भी करता है, अपना ज्ञान बढाता है, नई तकनीकी

जानकारी उसे मिलती है लौटने पर उसके ज्ञान से स्वदेश को लाभ होता है तथा अधिक प्रगतिशील दरों पर उसकी आय पर करारोपण करके प्राप्त आय को देश के विकास में लगाकर देश का सम्पूर्ण कल्याण और भी अधिक बढ़ाया जा सकता है। यह सम्पूर्ण कल्याण पूर्व के सम्पूर्ण कल्याण से भी अधिक होगा क्योंकि इस प्रकार प्राप्त राशि विपन्नों के लिए सार्वजनिक व्यय के रूप में खर्च की जा सकती है। पर दूसरा पक्ष भी है—यदि शिक्षित व्यक्तियों को बाहर नहीं जाने दिया गया तो उनसे होने वाले लाभ से भी देश वंचित रहेगा। इस प्रकार की हानि की पूर्ति के लिए न केवल करों का पुनर्निर्धारण ही आवश्यक है बल्कि पढ़े लिखे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति के बाहर जाने पर उसी के समान योग्यता वाला व्यक्ति लाया जाना चाहिए।

इसके विपरीत मोटे रूप में कहा जा सकता है कि अभी तक पढ़े लिखे व्यक्तियों के बाहर जाने से भारत का काम रुका नहीं है यदि ऐसा नहीं होता तो भारत में पढ़े लिखे की बेकारी की समस्या और भी उग्र होती, क्योंकि भारत में शिक्षित व्यक्ति जरूरत से बहुत ज्यादा हैं, तथा सभी पढ़े लिखे व्यक्तियों की सीमान्त उत्पादकता, कोई आवश्यक नहीं है कि नकारात्मक ही हो। बाहर जाने वाले घटिया श्रेणी के तथा स्वदेश में काम करने वाले उच्च श्रेणी के व्यक्ति भी हो सकते हैं। यह भी एक गम्भीर समस्या है कि जो व्यक्ति बाहर जा रहे हैं क्या उनके अधिक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति भारत में नहीं हैं। यदि हैं तो उनका कितना उपयोग हो रहा है? यदि नहीं हो रहा है तो सरकार इस सम्बन्ध में क्या कदम उठा रही है?

ब्रेन-ड्रेन के कारण

प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति का बाहर जाना परिवार प्रान्त तथा देश सभी के लिए हानिप्रद है तथा इससे अन्य देशों को लाभ है। यह विकासोन्मुख देशों के लिए घातक हो सकता है। बाहर जाने वाले व्यक्तियों को वहां उत्तम और आकर्षक वेतन मिलता है जिसका लोभ वे संवरण नहीं कर पाते। वहां उन्हें अपनी रुचि का काम मिलता है तथा शोध के लिए उच्च स्तर की प्रयोगशालाएँ भी मिलती हैं जहाँ उनको उत्साहवर्द्धक वातावरण में उपयुक्त शर्तों के साथ काम करना होता है। उन्हें अपनी पदोन्नति का ज्ञान तथा तरीका स्पष्ट मालूम है पर साथ ही यह भी स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्तियों में अपने राष्ट्र अपनी बिरादरी के प्रति लगाव नहीं होता। वे 'स्व' के सामने राष्ट्र की बलि देते हैं। इन प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों की अपनी महत्त्वाकांक्षा होती हैं। माता पिता आशा करते हैं। उनसे देश सेवा की उम्मीद की जाती है।

मनुष्य केवल रुपये के लिए ही काम नहीं करता, वह केवल रोटी के लिए ही जीवित नहीं रहता। रुपये से भी अधिक महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रतिष्ठा है तथा

भारत म सामाजिक प्रतिष्ठा मापने का पमाना अन्य प्रकार का है। कई व्यक्तिया का अपना पद, अपनी प्रतिष्ठा जो उन्ह मिलनी चाहिए नहीं मिलती तो वे बाहर चले जात हैं जितना वे सुधार का प्रयत्न करत हैं, स्थिति उतनी ही बिगडती जाती है, क्योंकि असन्तुलित आयोजन तथा राजनतिक अस्थिरता व्यावसायिक असन्तोष का जन्म देती है।

यदि अदन्न या अशिक्षित या साधारण व्यक्तियों का निकास हो तो स्वागत किया जाना चाहिए। जिन लोगों को यहा अधूरा काम मिला हुआ है या जिनको अनुपयुक्त काम मिला हुआ है निकास होने से वहा उनका, उनकी प्रतिभा का पूरा उपयोग हो सकेगा तथा आर्थिक लाभ तो होगा ही देश की रोजगार व खाने-पीने की समस्या भी कुछ अशो में हल होगी। पर प्रश्न यह है कि क्या ऐसे व्यक्तिया का अन्य देश बुलाना पसन्द करते हैं? उत्तर स्पष्ट है—नहीं। बुलाने वाले देश भी अपने स्वार्थों की पूर्ति का ज्यादा ध्यान रखत हैं।

भारत से 1958 म बाहर जाने वाले व्यक्तिया की राष्ट्रीय पजिका मे 1001 व्यक्ति पजीकृत हुए थे। उनम से केवल 10 प्रतिशत व्यक्तिया को भारत सरकार ने राज्यो की सरकारा न या भेजने वाले अभिकरणो ने उनके लौटने पर पुन रोजगार देने का आश्वासन दिया था। इसी भाति 1967 से भी केवल 10 प्रतिशत चिकित्सा विज्ञान के व्यक्तिया तथा 17 प्रतिशत वज्ञानिक तथा इन्जीनियरो को पुन लौटने पर काम दने का आश्वासन दिया गया था। कई व्यक्तियो को एसा काम दिया गया जो उनकी शिक्षा और योग्यता से निम्न स्तर का था, फलत ऐसे व्यक्ति पुन बाहर जाने की योजना बनाने लगते हैं।

1967 मे बाहर रह रहे भारतीय वज्ञानिकों की राय ली गई। उसके अनुसार कोई भी वज्ञानिक या इन्जीनियर भारत मे लौटने पर 800 रुपये प्रतिमाह पारिश्रमिक की आशा करता है तथा भारत सरकार के आंकडों के अनुसार औसत 700 रुपया प्रति माह दिया जा रहा है। इस प्रकार उपलब्ध पारिश्रमिक तथा पारिश्रमिक प्राप्त करने की आशा में बहुत सीमा तक धनात्मक सम्बन्ध है। पर यह भी सापेक्ष है। यह निष्कर्ष भी हर समय बिना सोचे विचारे लागू नहीं किया जा सकता समय अन्तराल के साथ-साथ इस सम्बन्ध में भी परिवर्तन आने की निश्चित रूप से सम्भावना है। 60 प्रतिशत व्यक्तियों ने बताया कि भारत का वातावरण काय की स्थिति साधन सुविधाएँ विदेशों स बहुत बुरी हैं तथा 45 प्रतिशत व्यक्तियों न स्पष्टत तत्काल पुन विदेशो को लौट जाने की इच्छा व्यक्त की। ऐसी राय बताने वाला मे 500 रुपया प्रतिमाह से भी कम पाने वाले व्यक्ति सम्मिलित थे।

बाहर जाने वाले विद्यार्थी अपने अध्ययन या प्रशिक्षण के वे विषय नहीं चुनते जिनकी स्वदेश मे आवश्यकता है। ऐसी स्थिति मे अध्ययन या प्रशिक्षण समाप्त करने के बाद स्वदेश लौटने पर रोजगार प्राप्ति के अवसर नगण्य हो जाते हैं। वे विषय का चुनाव अपनी पसन्द, रुचि व आर्थिक लाभ की दृष्टि से करते हैं। इस प्रकार कई बार सम्भव है, उनका विषय या प्रशिक्षण का चुनाव विकासोन्मुख देशो की जरूरतो के अनुरूप न हो तो कोई आश्चर्य की बात नही है। ऐसी स्थिति मे बाहर रहना पसन्द करते है। कुछ विद्यार्थी अपने विषय मे या विशिष्ठ क्षेत्र मे अपने देश की जरूरत से अधिक योग्यता प्राप्त कर लेते हैं इससे भी व्यक्ति तथा रोजगार के अवसरो म तालमेल नही बठता तथा उनका स्वदश मे प्राप्त सामाजिक, आर्थिक और प्राविधिक स्थितियो म लाभदायक उपयोग नही किया जा सकता।

कई सस्थानो मे अधिकारी अपने निहित स्वार्थों के कारण कई पद रिक्त पडे रखते हैं—उन पदों पर किसी को नियुक्तियां नही देते हैं। जनवरी 1967 मे स्वीकृत व रिक्त पदा की सख्या इस प्रकार थी।[1]

क्षेत्र/मद	स्वीकृत मद	रिक्त पद (प्रतिशत मे)
कृषि विश्वविद्यालय	1599	29 0
भारतीय प्राविधिक सस्थान	790	27 0
इजीनियरिंग कॉलेज	4574	20 0
शोध	11093	19 0
चिकित्सा महाविद्यालय + चिकित्सालय	3320	16 4
विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर विज्ञान विभाग	2067	15 2
बहुकला सस्थान	1857	14 9
व्यवसाय (सावजनिक क्षेत्र)	5658	7 4
महाविद्यालय (विज्ञान)	2911	5 9
व्यवसाय (निजी क्षेत्र)	4488	0 6

इसी भांति मार्च 1963 में राष्ट्रीय प्रयोगशालाओ मे 1244 स्वीकृत पदा म से 381 पद (जो लगभग 30% होते है) तथा 1961 म चिकित्सा विज्ञान सस्थानो म 2000 पद रिक्त थे।[2]

1 Report of the Health Survey and Planning Committee Ministry of Health. Government of India New Delhi Publication Division 1962, P 313

2 Technical Manpower New Delhi Council of Scientific and Industrial Research July 1967, Table 3, p 5

बेकारी, कार्य की असन्तोषजनक दशायें, अनुपयुक्त वेतन, अधिकारियों का उदासीनतापूर्ण व्यवहार, आदि सभी तत्त्व पढे लिखे व्यक्तियों को बाहर जाने के लिए विवश करते हैं। डॉक्टरों, इन्जीनियरों वैज्ञानिकों व प्राविधिकों का बाहर जाना असन्तोषजनक एवं अवांछनीय बात है, पर उससे भी अधिक दर्द तब होता है जबकि बचे हुए पढे लिखे व्यक्तियों के लिए उपयुक्त रोजगार नहीं है उनको उत्साहवर्द्धक सेवा कार्य नहीं दिया जाता है।

बेरोजगारी, कार्य की असन्तोषजनक दशा, अनुपयुक्त वेतन, अधिकारियों का उदासीनता पूर्ण व्यवहार आदि सभी तत्त्व पढे लिखे व्यक्तियों को बाहर जाने के लिए विवश करते हैं। जो पढे लिखे व्यक्ति—डाक्टर इन्जीनियर वैज्ञानिक प्राविधिक बाहर जाते हैं यह असन्तोषप्रद एवं अवांछित बात है पर उससे भी अधिक दर्द तब होता है जब बचे हुए पढे लिखे व्यक्तियों के लिए उपयुक्त रोजगार नहीं है। उन्हें उत्साहवर्द्धक सेवा कार्य नहीं दिया जाता। अधूरे मन से किये गये प्रयत्नों से आंशिक सफलता ही मिलती है। विदेशों में शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की कई महत्त्वाकांक्षाएँ होती हैं उनकी आशायें होती है, जो यहाँ के वातावरण में समायोजन करने में भी कठिनता लाती हैं।

समस्या का समाधान

इसका उपचार देश की आवश्यकता के अनुसार तथा उपयुक्त गुणों वाले व्यक्तियों को ही शिक्षित कर भारत से स्थायी या अस्थायी निवास हेतु बाहर जाने के नियमों में संशोधन तथा पाश्चात्य शिक्षा के कार्यक्रमों को पुनर्निर्धारित कर किया जा सकता है। इसके अलावा विकासोन्मुख देशों की वैज्ञानिकों, चिकित्सकों, इन्जीनियरों की जरूरत आंकी जाए तथा उसी अनुपात में उपयुक्त व्यक्तियों को बाहर जाने की स्वीकृति दी जाए। देश के नवयुवकों की महत्त्वाकांक्षाओं को ध्यान में रखकर शिक्षा की व्यवस्था हो साथ ही देश के सम्भावित विकास को ध्यान में रखकर रोजगार के अवसरों का अनुमान लगाया जाये। इसके लिये उत्साहवर्द्धक काम की शर्तें, स्थितियाँ तथा वातावरण प्रदान किया जाए। नवयुवकों को आवश्यक प्रतिष्ठा दी जाये, आयोजन इस प्रकार का हो कि हर क्षेत्र में हानि कम से कम हो। शिक्षा जगत में किये गये प्रयत्न कल्पनाओं पर नहीं, बल्कि वास्तविक अनुमानों पर आधारित होने चाहिएँ। इस राष्ट्रीय समस्या के लिए चोटी के शिक्षा विद, अर्थशास्त्री, जनसंख्या विशेषज्ञ राजनीतिज्ञ तथा आयोजक एक स्थान पर बैठकर रोजगार की सुदूरगामी सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर शीतल मस्तिष्क से सोच कर हल निकालें।

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद ने 1958 में वैज्ञानिकों के एक पूल की रचना की। इसमें बाहर से लौटे हुए एवं सावधानी से चुने हुए प्रतिभाशाली

वज्ञानिको को 400 स 700 रुपय प्रति माह वेतन दिया जाता है, जब तक उन्हे कोई उपयुक्त रोजगार या पद न मिल जाय तथा ऐसे व्यक्तियो को विश्वविद्यालयो, चिकित्सालयो, सरकारी कार्यालयो, शोध सस्थाओ म काय करने का अवसर दिया जाता है। 1958 से 1966 तक की इस अवधि मे 4649 व्यक्तियो का चुनाव हुआ, परन्तु 2012 ने ही कायभार सम्भाला, उनमे से 65 प्रतिशत को स्थायी रोजगार मिला, 28 प्रतिशत अभी तक काम कर रहे हैं तथा 7 प्रतिशत किन्ही अपने निजी कारणो से छोडकर चले गये हैं। इस प्रकार की व्यवस्था किसी भी देश के लिए सफद हाथी तो है पर प्रतिभाशाली व्यक्तियो को रोके रखने का एक तरीका अवश्य है तथा इस दृष्टि स यह व्यय बढ़ाया जाना देश के हित म उपयोगी लगता है।

परिषद् के माध्यम स देश मे प्रशिक्षित व्यक्तियो की आवश्यकताओं का पता लगाया जाए तथा केवल उन्हें ही बाहर जाने की स्वीकृति दी जाए जो भारत की जरूरतो से सम्बन्धित विषय पढें और प्रशिक्षण प्राप्त करें। कुछ समय से Association for Service to Indian Scholars and Technicıation (ASIST) काय कर रहा है। भारत की आवश्यकताओ के अनुसार यह बाहर पढ रहे भारतीय व्यक्तियों से साक्षात्कार करता है तथा उन्हे रोजगार का विश्वास दिलाता है। इस एसोसियेशन के साधन सीमित हैं। इसलिए यह अभी प्रशसनीय काय नहीं कर पाया है। सरकार को इसे अधिकाधिक प्रयोग तथा अनुदान देना चाहिए।

भारत म ही प्रशिक्षित और उच्च शिक्षित व्यक्ति बेकार होते हैं। इस स्थिति मे बाहर स रोजगार प्राप्त व्यक्तियो को बुलाने की बात समझ म नहीं आती। आज भी कई जगह गाँवो म डॉक्टर नही हैं इसका अथ अनिवायत यह नही है कि डाक्टरो की कमी है। व गाँवो मे काय करना नही चाहते, वे शहरो मे रहकर अधिक पैसा कमाते हैं। डॉक्टरो का पाँचवा भाग गावो म है, जबकि जनसख्या का पाँचवाँ या उससे भी कम शहरो म बसता है। कसी उपहासास्पद स्थिति है। इतना ही नही स्थिति और भी गम्भीर है। समग्ररूप से भारत मे 5800 व्यक्तियो के लिए एक डाक्टर उपलब्ध है। पर शहरो मे 1500 व्यक्तियों के लिए तथा गावों मे 23,000 व्यक्तियो के लिए एक डॉक्टर उपलब्ध है। चिकित्सा विज्ञान के व्यक्तियों का जरूरत के अनुसार वितरण हो इसके लिए क्या शहरी तथा देहाती वेतनमान पृथक पृथक बनाये जा सकत हैं? क्या यह लोकतन्त्री व्यवस्था म सम्भव है? यदि सम्भव है तो कितने समय तक?

जिस क्षेत्र क व्यक्ति बाहर जा रहे हो, उस क्षेत्र म अधिक भर्ती की व्यवस्था की जाय तथा बाहर जाने वालो पर प्रतिबन्ध लगाया जाय। प्रत्येक वज्ञानिक डॉक्टर और इन्जीनियर को उसकी योग्यता के अनुसार वेतन दिया जाना चाहिए।

बाहर से अनुभव प्राप्त कर लौटने वालों का अधिक लाभप्रद उपयोग होता है तो बाहर जाने पर प्रतिबन्ध लगाना भी अनुपयुक्त होगा इसको हल करने के लिए दो बातें हो सकती हैं कि व्यक्ति के बाहर होने के समय ही उन्ह नियुक्ति पत्र भिजवा दिया जावे, तथा देश म प्राप्त व्यक्तियो का उपयुक्त काम के लिए उपयुक्त पारिश्रमिक दिया जाये। इससे बाहर से लौटने वाला को बेकार बठने का या अनुपयुक्त वेतन प्राप्त करने का डर नही रहेगा।

बाहर जाने वाले व्यक्तियो को केवल डेपूटेशन पर भेजा जाय, उन्ह अल्पकाल के लिए ही भेजा जाय, या वहां रहने की अवधि निश्चित हो। ऐसा करने से उन्हें समय समाप्त होने पर स्वदेश को लौटना होगा।

विश्व के कुछ देश मिलकर विशिष्ट योग्यता प्राप्त व्यक्तिया को अदल-बदल भी कर सकते हैं तथा उन्ह निश्चित काम व निश्चित अवधि के लिए बुलाया जा सकता है। कई सस्थान, विश्वविद्यालय, व्यवसायी अपने यहां अपने निहित स्वार्थों के कारण कई पद रिक्त रखते हैं। सरकार को उनके साथ कडाई का व्यवहार करना चाहिए तथा बाहर से लौटने वाले व्यक्तिया को समय पर उपयुक्त पद एव उपयुक्त वेतन पर स्थायी नियुक्तिया दे देनी चाहिए, यदि स्पष्ट रिक्त स्थान उपलब्ध हो।

कई सस्थान सेवा निवृत्त व्यक्तियो को फिर से नियुक्तियां द देते हैं। इससे नौजवानों के लिए रास्ते बन्द हो जाते हैं उनके लिए पदोन्नतियो के अवसर उसी अनुपात मे कम हो जाते हैं। स्वय सरकार भी कुछ विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्तियो को देर से सेवा निवृत्त करती है या उनको साधारण व्यक्ति से अधिक समय तक सेवा मे रखती है। इससे नये खून के लिए प्राप्त पदो की सख्या कम हो जाती है। एक जनतान्त्रिक देश मे सरकार का ऐसा व्यवहार कहां तक उपयुक्त है ? वतमान स्थितियो मे इस पर भी पुर्नविचार किया जाना चाहिए।

अन्तिम पर महत्वपूर्ण बात यह है कि बाहर जाने वाले व्यक्तियो को नकारात्मक साधनो स रोका जाना निश्चित रूप से अवांछनीय है। व्यक्तिया मे इस बात का भान तथा विवेक पदा किया जाना चाहिए कि व अपनी मातृभूमि जहां वे पढे लिखें एव खेले-कूदे हैं, उस देश की भी सेवा करें। यह भी देश की बहुत बडी सेवा होगी, यदि वे अपने देशवासियों के भले उनके खुशहाल एव समृद्ध जीवन के लिए काम कर सकें, त्याग कर सकें। देश ने उनकी शिक्षा-दीक्षा पर व्यय किया है, उन्हें योग्य बनाया है अत उनका भी नतिक कत्तव्य है कि वे अपने देश की सेवा करें। एक अन्य विचारधारा क अनुसार व्यक्तियो को ब्रेन-ड्रेन के लिए शिक्षा दी जाती है। भारत मे केरल सरकार की यही प्रवृत्ति रही है। काम कर रहे वयस्कों पर कर लगा कर बच्चो की शिक्षा पर खर्च किया जाता है। राज्य कोष से शिक्षा पर खच किया है तो राज्य उन व्यक्तिया का अधिकाधिक लाभप्रद उपयोग करने का

अधिकारी है। यह दुर्भाग्य ही होगा जबकि पढ लिखकर कर चुकाने की स्थिति म आया हुआ व्यक्ति देश के बाहर चला जाय।

इनके विपरीत GRUBEL तथा SCOTT के अनुसार ब्रेन ड्रेन से विश्व का समग्र कल्याण बढता है। पर THOMAS इस विचार की आलोचना करते हुए कहते हैं कि इससे पिछड़े देशो क सामने विकास के लिए कई बाधाएँ आती हैं। समस्याएँ तब और भी उग्र बन जाती हैं जबकि कोई दश अपनी गरीबी या अद्ध विकास क कारण विदेशो से विशेषज्ञो की सेवायें प्राप्त नहीं कर सकता तथा स्वदेश के पढे लिखे एव प्रशिक्षित व्यक्तियो को देश मे ही रोके रखने के लिए उपयुक्त रोजगार नही दे सकता। समस्या के महत्व को ध्यान म रखते हुए उपचारो पर विस्तार से विचार करना उपयुक्त लगता है।

ऐसे व्यक्ति जो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त होने से विदेशी विश्वविद्यालयो, शोध सस्थानो तथा सरकारो से व्याख्यान देने हेतु आमन्त्रित किये जाएँ तो उन्ह इस लेख के क्षेत्र से बाहर समझना चाहिए। ऐसे विद्वान व्यक्तियो का लाभ सम्पूर्ण विश्व को मिलना चाहिए न कि किसी एक देश को। इन्ह विश्व नागरिक की सज्ञा दी जा सकती है। सामाजिक कल्याण तथा विश्व नागरिकता के दृष्टिकोण से यह न्याय-सगत है।

---

8 शिक्षक की शैक्षिक स्वतंत्रता

शिक्षक को कक्षाध्यापन के समय कक्षागृह म कितनी स्वतन्त्रता है ? यह प्रश्न कई बार पूछा जाता है। मान लीजिए, भूगोल विषय के कालाश में ताबा खनिज का पाठ पढ़ाया जा रहा है। अध्यापन के समय बच्चे के मन म खेतडी ताबा परियोजना क बार मे कई जिज्ञासाएँ उठीं। बच्चे द्वारा प्रश्न पूछन पर शिक्षक को इस सम्बन्ध मे उत्तर देना चाहिए या नही और यदि हाँ तो किस सीमा तक ?

खेतडी ताँबा परियोजना म कितन व्यक्ति किस किस योग्यता वाले, किस प्रकार के अनुभव वाले रोजगार प्राप्त कर सकते हैं ? रिक्त स्थानों के लिए इस आशय की विज्ञप्तिया समय-समय पर प्रकाशित होती रहती है। यदि शिक्षक के पास एसी सूचनाएँ तत्काल उपयोग के लिए हैं तो उसका उपयोग किया ही जाना चाहिए। पर यदि कोई बच्चा यह पूछ बठे कि इस परियोजना म रोजगार प्राप्त कर लूँ तो जीवन म आग चलकर रोजगार क क्षेत्र म सन्तोष व सफलता मिलेगी या नहीं। ऐसी स्थिति म शिक्षक क्या करे ? उत्तर द या उत्तर न द। उसकी स्थिति बडी असमजस वाली हो जाती है। स्पष्ट है कि इस स्थिति का हर शिक्षक सामना करने का तत्पर नहीं होता है। शिक्षक बच्चा की मनोवृत्ति का अध्ययन करता है निर्देशन की तकनीक जानता है एव इस क्षत्र म उच्च प्रशिक्षण प्राप्त है बाल-मनोविज्ञान का ज्ञाता है साधनो तथा अन्य विधिया से बच्चा की अभिरुचि परीक्षण कर सकता है रोजगार म सफलता के लिए आवश्यक बुद्धि का स्तर निश्चित कर सकता है बच्चा का सलाह-मशविरा देते देते दक्ष हो गया है ता वह प्राप्त ज्ञान व तकनीक का उपयाग कर बच्चा की उस क्षेत्र म सफलता का अनुमान लगा सकता है। बच्चो का सलाह-मशविरा के द्वारा शिक्षक सफलता की सभावना ही बता सकता है शत प्रतिशत रूप से सफलता या असफलता की भविष्यवाणी शिक्षक नहीं करेगा। पर आज स्थिति यह है कि हर शिक्षक न ता रुचि या अभिरुचि परीक्षण द सकता है न बुद्धिलब्धि ज्ञात कर सकता है तथा न ही वह निर्देशन तकनीक म विशेषज्ञ होता है। ऐसी स्थिति म उसे चुप रहना चाहिए। किसी भी धन्धे के लिए आवश्यक बुद्धि स्तर का पता नहीं लगा सकता, बच्चे की माली हालत नहीं जानत प्रवेश के लिए न्यूनतम शैक्षिक योग्यता का ज्ञान नहीं है, व्यक्तित्व क लक्षणों का सही अनुमान नहीं लगा सकता, किसी विशिष्ट तकनीक की बाजार म माग व पूर्ति का ज्ञान नहीं

है तो शिक्षक को तटस्थ ही रहना चाहिए। जितनी सूचनाएँ उसके पास हों वह वस्तुनिष्ठ रूप से बिना घटाए-बढ़ाए बच्चों को दे दे तथा शेष के लिए उसे विशेषज्ञ के पास भेज देना ही श्रेयस्कर होगा। अपनी विशेषज्ञता के क्षेत्र से बाहर न तो शिक्षक को बोलना चाहिए तथा न ही शक्षिक स्वतन्त्रता का सहारा लेकर उसे ऐसा करने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

इस उदाहरण से जरा दूर हटकर सोचें। कुछ उदाहरण ऐसे भी हो सकते हैं जिनका शिक्षण निरापद नहीं है। विषय का प्रस्तुतीकरण, संभव है, शिक्षक एकांगी रूप में कर दें जो शक्षिक दृष्टि से वांछनीय न हो, ऐसा करने से बालकों को लाभ के *स्थान पर हानि होने की संभावना रहती है।* ऐसे चर्चित विषय पर *शिक्षक द्वारा* ऐसे विचार कक्षा में व्यक्त कर देना जो समाज को स्वीकार्य नहीं है या स्वयं शिक्षक के कार्य तथा व्यवहार में अन्तर है या उन विचारों को बच्चे पसंद नहीं करते हैं या शिक्षक की उन विचारों के प्रति आस्था नहीं है तो ऐसे विचार विद्यार्थियों की हानि कर सकते हैं। यह प्रजातान्त्रिक तरीका नहीं है कि बच्चों को चिन्तन, तर्क करने, अनुमान लगाने तथा तथ्यों के प्रस्तुतीकरण करने, निर्णय लेने से रोक दिया जाए। यदि शिक्षा का उद्देश्य (अन्य कई उद्देश्यों के साथ) बच्चों में चिंतन शक्ति का विकास करना है तो बच्चों के सामने विवादास्पद पहलू भी प्रस्तुत करने ही होंगे। इसके लिए सबसे अच्छा तरीका यह है कि पहलू के पक्ष के सभी बिन्दुओं को वस्तुगत रूप से विद्यार्थियों के सामने रख दें, स्वयं कोई पक्ष न लें, अपना कोई निर्णय न दें तथा विद्यार्थियों को स्वयं निर्णय लेने दें, निर्णय लेने में उनकी मदद करें।

शिक्षक विद्यार्थियों से योग्यता, उम्र, अनुभव तथा ज्ञान में श्रेष्ठ होने से कक्षा में विद्यार्थियों द्वारा नेता माना जाता है तथा उसका स्थान कक्षा में अधिकारी के रूप में रहता है पर शिक्षक को हर समय यह बात दिमाग में नहीं रखनी चाहिए। ऐसी स्थिति में वह अपना कहना मानने के लिए कक्षा में विद्यार्थियों से कहे या न कहे विद्यार्थी तो उसका कहना मानेंगे ही, उसकी वाणी को देववाणी मानेंगे। परम्परा से ही शिक्षक कक्षा में ऐसे स्थान पर रहता आया है कि उसका *कहना विद्यार्थी स्वतः ही मानते हैं जिसके फलस्वरूप शिक्षक तथा शिक्षार्थी के* प्रभावी तथा मधुर सम्बन्धों का विकास होता है। कुछ शिक्षाविदों के अनुसार शिक्षक नेतृत्व करें निर्णय लें तथा छात्र शिक्षकों की आज्ञा का पालन करें। इसीलिए Dr KARL MENNINGER के अनुसार शिक्षण व्यवसाय में प्रवेश करने वाले नवयुवक भाग्यशाली हैं क्योंकि वे मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से स्वस्थ हैं तथा चिकित्सालयों में चिकित्सा के लिए बहुत कम आते हैं। पर कुछ अन्य विचारकों का ऐसा भी कहना है कि शिक्षक सदैव अपरिपक्व मस्तिष्क की संगति में रहते हैं वे बालकों के बीच रहते हैं अतः कोई निर्णय लेने की स्थिति में नहीं रहते, या उनके द्वारा

लिया गया निर्णय कोई वजन नहीं रखता, उनका निश्चय या निर्णय सूझ-बूझ पूर्ण या न्यायसगत नहीं कहा जा सकता, इसलिए उनकी आवाज को महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। चूंकि बच्चे सोच विचार व व्यवहार मे अपरिपक्व होने से शिक्षक के मार्गदशन म कक्षा-व्यवहार व कार्य करते हैं अत कैसा पाठ्यक्रम हो, इसके लिए वे शिक्षक पर निभर रहना शुरू कर देंगे। शिक्षक कक्षा म बच्चा का उतना अधिक पढाने के लिए स्वतन्त्र होना चाहिए जितना बच्चे पठन के लिए तत्पर हो। इसी भाति शिक्षक को अध्यापन की तथा विद्यार्थिया का सीखा के लिए उपयुक्त स्वच्छन्दतापूर्ण मुक्त वातावरण के चयन की स्वतन्त्रता होनी चाहिए जिसस वे विद्यालय म उपयुक्त गति से प्रगति करत रह।

सोचने विचारने की प्रक्रिया मे सुधार हो यह बहुत सीमा तक अध्यापन विधि पर निभर करता है। शिक्षक व्याख्यान विधि से पढाते हैं या स्रोत विधि से। व्याख्यान विधि की अपेक्षा स्रोत विधि म बच्चा की पहल न करने की प्रवत्ति का लाभ उठाया जा सकता है उनका सोचन की प्रक्रिया म इस विधि के माध्यम से स्वनिभर बनाया जा सकता है जबकि व्याख्यान विधि स बच्चे शिक्षक पर निभर रहना सीख सकते हैं। पर साथ ही शिक्षका का पूर्वाग्रहा या अन्धानुकरण के द्वारा शिक्षण से भी बचना चाहिए क्योंकि कक्षाध्यापन म इसकी पूरी-पूरी सम्भावना रहती है। विद्यार्थी बजाय अपनी बुद्धि स स्वतन्त्रतापूर्वक सोचे दूसरा की बुद्धि पर आश्रित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति मे होना यह चाहिए कि विद्यार्थी का निर्णय शिक्षक के निर्णय से सम्पूरित किया जाय। बालक को नात कारणा आधारा एव तथ्या के प्रकाश म निर्णय लेने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। शिक्षण सस्थाओ स बाहर जाने वाले विद्यार्थी किसी एक राजनैतिक दल के अनुयायी न बनें और न ही सरकार का किसी एक मत या विचारधारा पर दृढ रहकर प्रचार प्रसार करना चाहिए बल्कि राजनीति की जगह अकादमिक आधारो पर आग्रह करना चाहिए, जिससे पढे लिखा पर पृथक्कीकरण की छाया न पडे। ऐसी स्वतत्रता स बच्चा को जो जन्म से अनन्य विलक्षण क्षमताएँ मिली हैं उनको अधिकतम विकसित होने का अवसर मिलता है। इस प्रकार शिक्षक बच्चो की वयक्तिक स्वतन्त्रता का रक्षक है। एक शिक्षित नवयुवक स्पष्ट चिन्तन की ओर अग्रसर तथा नये विचारों का खुले मस्तिष्क से स्वीकार करने को तत्पर रहना चाहिए। समझ बूझ का विकास उदार दृष्टिकोण स्वतन्त्रता के मौलिक मूल्य का विकास करने के लिए शिक्षको का विद्यार्थियो की मदद करना चाहिए। स्वतन्त्र समाज म सही व उपयुक्त आलोचना के प्रति झुकाव या लगाव का विकास करना चाहिए।

प्रभावी शिक्षण विधि का फल चिन्तन म सुधार की योग्यता का विकास करना है। अध्यापन म कक्षा का आकार भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, बम

विद्यार्थियों को कक्षा में सभी विद्यार्थियों को बोलने तथा अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के अधिक अवसर मिलते हैं। ऐसी कक्षाओं में विद्यार्थियों को अधिक सीखने—अधिगम कार्य व्यापार में भाग लेने की सम्भावना रहती है। इससे कक्षा में विद्यार्थी के कार्य बढ़ते हैं तो उनकी चिन्तन शक्ति को अग्रसर करने में सहायक होते हैं। हाँ, बड़ी कक्षाओं अर्थात अधिक छात्रों वाली कक्षाओं में ऐसा नहीं हो पाता। चरित्र तथा नैतिक आचरण चिन्तन तथा आदान की उपज है। व्यवहारों के प्रतिफल के रूप में अधिक सामंजस्य है।

निजी शिक्षा संस्थाओं में कार्यरत शिक्षक शिक्षा के सुधार के लिए अधिक योगदान कर सकते हैं वे सहमति या असहमति के लिए स्वतन्त्र है। यदि मानविकी संकाय में पढ़ा लिखा शिक्षक अपने सम्पूर्ण साधनों का प्रयोग करके भौतिकी अधिक दक्षता से पढ़ा सकता है, विज्ञान विषय के छात्रों को अधिक लाभ पहुँचा सकता है तो उसे ऐसा करने की तत्काल स्वीकृति मिल सकती है जबकि राजकीय विद्यालयों में ऐसा नहीं किया जा सकता, ऐसे शिक्षकों का विद्यालय के लिए यह बहुत बड़ा योगदान है। दक्ष कर्मचारियों को समान प्रकार का कार्य करने वाले पदों पर रोकने के दृष्टिकोण से निजी संस्थान अच्छे हैं व अपने कर्मचारियों की विशिष्ट सेवा का मूल्य समझते हैं। ऐसा करने से विद्यालय की अर्थ व्यवस्था पर भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। शिक्षा के गुणात्मक सुधार के लिए शिक्षक की शक्षिक स्वतन्त्रता बहुत ही अर्थपूर्ण है। इस भाँति वैयक्तिक योग्यता पर आधारित यह सुरक्षा तथा स्वतन्त्रता अच्छी शिक्षा का बीमा है।

चिन्तन में स्वतन्त्रता प्रजातान्त्रिक पद्धति का जनक है। शिक्षा पर सरकार के नियन्त्रण के दुष्परिणामों का अभी कल्पना नहीं की गई है। राज्य शिक्षा को प्रचार तथा अन्धानुकरण का साधन बना सकती है तथा नागरिक सीमित क्षेत्र में ही सोच विचार कर सकते हैं। ऐसी शिक्षा व्यवस्था जिसमे शिक्षक को सोचने विचारने की स्वतन्त्रता है, प्रयोग करने शिक्षण की नई तकनीक काम में लेने को स्वतन्त्र है शोध करके निष्कर्षों को प्रकाशित करने सत्य को परख कर पढ़ाने को पूर्ण स्वतन्त्र है जो अपने गुणों के अनुसार पहल करने को स्वतन्त्र है ऐसा ही शिक्षक स्वतन्त्र एवं आलोचनात्मक चिन्तन का अग्रसर करता है। कोठारी शिक्षा आयोग (1964–66) के अनुसार दल अथवा सत्ता की राजनीति के दबाव अथवा विचारों की प्रतिबद्धता से मुक्त स्वाधीन संस्था ही सत्य की खोज कर सकती है तथा अपने अध्यापकों व छात्रों में स्वतन्त्र चिन्तन एवं स्वतन्त्र विचार विमर्श की आदत पनपा सकती है।" शिक्षक अध्ययन करने शोध निष्कर्षों को प्रकाश में लाने के लिए तथा राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण एवं विवादास्पद विषयों पर बोलने तथा उन पर आयोजित कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए स्वतन्त्र

होने चाहिए।[1] निजी शिक्षण संस्थाएँ इस प्रकार के स्वतन्त्र चिन्तन एवं विचार अभिव्यक्ति के लिए अधिक उपयुक्त है। कुछ विशिष्ठ प्रकार की शिक्षण संस्थाओं में भी शैक्षिक स्वतन्त्रता सीमित कर दी जाती है, शिक्षक की अभिव्यक्ति के लिए प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हैं। उदाहरण के लिए डी ए वी स्कूल के शिक्षक को महात्मा ईसा का पाठ बड़ी सावधानी से पढाना होगा। यदि कहीं उसके अध्यापन में पक्षपात झलका तो अधिकारियों द्वारा अगले दिन से उसे अन्यत्र नौकरी ढूंढने के लिए कहा जा सकता है। इसलिए जब तक इस प्रकार की स्वतन्त्रता की सुरक्षा नहीं की जाती, सामाजिक प्रगति के मार्ग में बाधा ही उपस्थित होती रहती है। यह प्रशासकों तथा अधिकारियों का उत्तरदायित्व है कि समाज के कोई सदस्य विद्यार्थियों का दुरुपयोग करके शिक्षकों पर उनके निर्णय लेने में, पाठ्य सामग्री के प्रस्तुतीकरण में, बाह्य प्रभाव डालने से बचाए।

अध्यापन के दौरान उस वक्त और भी कठिनाई उपस्थित होती है जब शिक्षक उस विवादास्पद पहलू के प्रति उदासीन हो या भिन्न हो। शिक्षक के व्यक्तित्व को उसके शिक्षण से पृथक् नहीं किया जा सकता। शिक्षक उसके प्रति कितनी ही उदासीनता शिक्षण के समय दिखाए पर व्यवहार में, सम्भव है ऐसा न लगे। शिक्षक अपना व्यक्तित्व अपने शब्दों से छिपा नहीं सकता। शिक्षक चाहे मुँह से न बोले पर उसका शान्त व्यवहार उससे भी ज्यादा प्रभावी होता है। कई बातों में से शिक्षक का व्यक्तित्व भी महत्त्वपूर्ण होता है जो बालक की विचारधारा, उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। बालक के व्यक्तित्व का विकास उपयुक्त राह पर होता हुआ देख कर शिक्षकों को प्रसन्नता होती है। इस भांति यह कहना कि बिना अपना निर्णय दिए पहलू की सत्यासत्य स्थिति बच्चों के सामने रखना उपयुक्त है अधिक वजनदार तर्क नहीं है।

यदि शिक्षक अपने विचारों को छिपाता है तो विद्यार्थी उसे घमण्डी समझेंगे क्योंकि वे जिस बात पर विश्वास करते हैं उसे न पढ़ाकर दूसरी बात पढ़ाते हैं या वे जिस बात पर आग्रह करते हैं वह उनके व्यवहार में नहीं है या उसके अनुसार वे स्वयं व्यवहार नहीं करते हैं। यदि ऐसा होता है तो शिक्षक बच्चों तथा स्वयं में अविश्वास का विकास करता है। वास्तविकता यह है कि शिक्षक का बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ेगा तथा प्रभाव भी कहने की अपेक्षा करनी का अधिक स्थायी होगा। साथ ही वह उस पहलू पर अधिकारी विद्वान के विचार भी बच्चों के सामने प्रस्तुत कर सकता है। भय से शिक्षक पर कहने सुनने की पाबन्दी नहीं लगाई जानी

1 कोठारी शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन (1964–66) शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली दि मैनेजर पब्लिकेशन्स डिविजन, 1966 अंग्रेजी संस्करण, पृष्ठ 326।

चाहिए। महत्वपूर्ण तो यह है कि बच्चो को सीखने की स्वतन्त्रता हो। इस सम्बन्ध म सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात तो यह है कि जो भी तथ्य या सूचना या विचार प्रस्तुत किया जाय वह स्पष्ट हो, सही हो, संगत तथा संक्षिप्त हो। शिक्षक विवादास्पद मामलों के सभी पक्षो को निष्पक्ष ढग से प्रस्तुत करे तथा इस बात की सतर्कता बरते कि स्वय शिक्षक या छात्र कोई एक पक्ष ग्रहण न करें। ऐसा होने पर भी एक भय तो बना ही रहेगा कि पक्ष तथा विपक्ष दोनो समान रूप से वस्तुगत प्रस्तुत किये गए है तो बालक कोई निर्णय ही न कर सकेगा क्योंकि उसे हर तर्क संतुलित प्रतीत हो रहा है। यदि ऐसा हुआ तो उसके व्यक्तित्व के विकास म बाधा पहुँचेगी या व्यक्तित्व का वांछित विकास न हो सकेगा।

कई बार एक ही शिक्षक या दो कक्षाओं म शिक्षण भिन्न भिन्न रूप मे लिया जा सकता है, क्योंकि सम्भव है एक कक्षा के बालक दूसरे मे भिन्न सम्प्रदाय के हों। इसी भाँति दो शिक्षको का अध्यापन भी भिन्न भिन्न रूपो मे लिया जा सकता है। ऐसी स्थिति जब भी पैदा हो तत्काल विचार विमर्श कर स्पष्टीकरण कर लिया जाना चाहिए। ऐसा न करने पर दोनो शिक्षको म अविश्वास पनप सकता है जो हानिकारक है। इससे भी अधिक बुरा यह होगा कि विद्यार्थी अपने ऐसे शिक्षको का विश्वास खो देंगे, सम्मान गवा बैठेंगे।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यदि विवादास्पद विषयो का शिक्षण बिना पूर्व योजना के छोड दिया गया तो शिक्षण के समय अवश्य ही शिक्षक अपने निजी विचारो से प्रभावित होगा। विवादास्पद विषयो का निर्णय एकाध दिन या सप्ताह मे नही होता—इस प्रकार के निर्णयो मे दीर्घ अवधि की जरूरत पडती है—ऐसे विषयो की प्रारम्भिक जानकारी विद्यार्थियो को दी जाए जिससे वे उस विषय की प्रकृति से परिचित हो सकें तथा स्थिति का उपयुक्त ज्ञान प्राप्त कर सकें। सामाजिक शक्तियों तथा विचारधाराओ के निष्कर्षों पर आधारित ऐसी विवादास्पद वस्तुओं की जानकारी यदि विद्यार्थियो को दी जाए तो बच्चो को समाज की गतिविधियो रीति रिवाजो की जानकारी होगी तथा उनको उत्तरदायी नागरिक बनाने के लिए शिक्षक को प्रशिक्षण देने मे मदद मिलेगी। उत्तरदायित्व न होने से तो शिक्षको मे भी अप्रसन्नता का विकास होता है। एक सही शिक्षक ही वह है जो अपने विद्यार्थियो मे समाज सम्मत मूल्य एव सामाजिक व्यवहारो का विकास करता है। विद्यार्थियो को परखने, आलोचना एव प्रत्यालोचना के ढग से सोचने विचारने को अग्रसर करता है जिससे वे साहसपूर्ण कार्यों को करने के लिए आगे बढ़ें।

शोध पर आधारित तथा उपयुक्त तथ्यो के प्रकाश म तर्क संगत निर्णय लिए जाने चाहिएँ। तर्कपूर्ण उपयुक्त व संतुलित निर्णय लेने म विद्यार्थियो की मदद के क्षेत्र में या इस कार्य के लिए उनको प्रशिक्षण देने के सम्बन्ध म शिक्षको का बड़ा

महत्त्वपूरण स्थान है। भावी समाज के लिए शिक्षको को आवश्यक साधन सम्पन्न बनाने के लिए शिक्षक शिक्षा की सस्थाओ की भूमिका अति महत्त्वपूरण है, इसी महत्त्व को ध्यान मे रखते हुए उन्ह अपना शिक्षण कायक्रम पुनर्नियोजित करना चाहिए।

विश्वास

स्वतन्त्रता की नीव विश्वास पर जमी हुई है। यदि शिक्षक का शिक्षण मे स्वतन्त्रता पर विश्वास है तो वह घोर सकटो का सामना भी करेगा। यदि उसे अपनी परिवर्तित शिक्षण तकनीक म विश्वास है तो कितनी ही कठिनाइया आने पर भी उनके अनुसार ही शिक्षण करेगा। ऐसे दृढ निश्चय वाले शिक्षक स्वेच्छा एव गव के साथ अपने माग पर चलते रहेग। किस प्रकार वह अपने प्रयत्ना मे सफल होता है, यह बहुत कुछ शिक्षक के व्यक्तित्व पर निभर करेगा।

शिक्षण की स्वतन्त्रता से जुडा दूसरा घटक उत्तरदायित्व

शिक्षण की स्वतन्त्रता मे विश्वास के साथ ही जिम्मेदारी भी जुडी हुई है। शिक्षक यदि उत्तरदायित्व का भार वहन कर सके तभी उस स्वतन्त्रता का आनन्द मनाने की सोचनी चाहिए। जा स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहत हैं, उसे अपने व्यवसाय का भी पूरा ज्ञानी होना चाहिए। यदि शिक्षक को शिक्षण तकनीक का अद्यतन ज्ञान नही है, पाठयक्रम रचना की नवीन दिशाओ का ज्ञान नही है तो वह कक्षा शिक्षण के समय न्याय नही कर पाएगा। अत स्वतन्त्रता का उपयोग करने के लिए व्यवसाय सम्बन्धी ताजा जानकारी पूव आवश्यकता है।

कई शिक्षको को व्यवसाय का ज्ञान तो है पर काय करने की इच्छा नही है। स्वतन्त्रता म इच्छा पूव कल्पना है। उदासीनता तथा स्वतन्त्रता साथ साथ नही चल सकती। किसी विद्यालय मे प्रयोग करन से पहले उस विषय का गहन एव विस्तृत ज्ञान ही काफी नही है पर साथ ही साथ शिक्षक, प्रधानाध्यापक, अभिभावक को भी सतुष्ट कर सकन का गाढा विश्वास होना चाहिए। ऐसे कार्यों म बडे साहस की जरूरत है। तनिक भी कठिनाई के समय सभी विरोधी उठ खडे हाग तथा साथी शिक्षक का मनोबल गिराने की कोशिश करेंगे।

शक्षिक स्वतन्त्रता पर सभी शिक्षाविदा का मतक्य नही है। कुछ विचारक शक्षिक स्वतन्त्रता की मात्रा का सीखने वाले की परिपक्वता से जोडना चाहत हैं। स्पष्ट है कि महाविद्यालय या विश्वविद्यालय का स्नातक अधिक शक्षिक स्वतन्त्रता का उपयोग करेगा जबकि प्राक विश्वविद्यालय का छात्र उससे कम तथा विद्यालयी बालक उससे भी और कम।

नागरिक स्वाधीनता तथा शैक्षिक स्वतन्त्रता

यह नही भुलाया जाना चाहिए कि शिक्षक शिक्षक होने के साथ साथ नागरिक भी है। शिक्षकों को उसी प्रकार स्वतन्त्र रहने का अधिकार है जिस प्रकार अन्य नागरिकों को। जिस प्रकार अन्य नागरिक धर्म, पूजा पाठ, विश्वास, वेशभूषा, नाच गान, खान-पान के सम्बन्ध में स्वतन्त्र हैं, ठीक उसी प्रकार शिक्षक भी स्वतन्त्र रहना चाहते हैं। जब तक शिक्षक अपने समाज के लोकाचारों, आशाओं और आदर्शों का पालन करता रहेगा, तब तक उसके सामने कोई कठिनाई नहीं होगी। पर ज्योंही वह इन सामाजिक मर्यादाओं से दूर हटा नही कि उस पर आपत्तियाँ आ सकती हैं। इस सम्बन्ध मे ब्राउबेकर भी समान राय रखता है। उनके अनुसार 'यदि शिक्षक को यथापूर्व स्थिति से हटने या विचलित होने की स्वतन्त्रता रही तो वह प्राय निश्चित रूप से अपने अधिक शत्रु बना लेगा।[1] इसके लिए तर्क यह दिया जाता है कि शिक्षक केवल कक्षा में अध्यापन ही नही करता बल्कि वह खेल के मैदान में, पुस्तकालय आदि स्थानों में अपने आचरण से भी बालकों को अनौपचारिक रूप से शिक्षा देता है। ऐसा कहा जाता है कि यदि कोई इंजीनियर सीमेन्ट में बालू मिलाकर निम्न किस्म का पुल बना देता है तो एक पुल ही खराब होगा पर शिक्षक ने सामाजिक मूल्यों के अनुसार कार्य नही किया तो पीढ़ी बिगड़ जाएगी। इसी भांति वनिए तथा डाक्टर के कार्य से भी शिक्षक की व्यावसायिक तुलना की जा सकती है। यदि शिक्षक समाज सम्मत रीति रिवाजों का पालन नहीं कर सकता नागरिक सद्गुण धारण नही करता तथा आलोचना का पात्र बनता है तो उसे अपना व्यवसाय त्याग देना चाहिए।

यहाँ नागरिक स्वाधीनता तथा शैक्षिक स्वतन्त्रता को सही अर्थों में लिया जाना चाहिए तथा इसी भावना से इनका अन्तर भी समझ लिया जाना चाहिए। नागरिक स्वाधीनता के दृष्टिकोण से यदि शिक्षक कोई ऐसा कार्य जो समाज के रीति रिवाजों के अनुकूल नहीं है, कर लेते हैं तो समाज उनसे अपने पद से त्याग-पत्र की माग कर सकता है। यदि ऐसा हो तो शिक्षक शैक्षिक स्वतन्त्रता का नागरिकों द्वारा अतिक्रमण बताते हैं। यदि कोई व्यवसाय प्रबन्ध में स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण प्रधानाचार्य विद्यार्थियों को परीक्षा में सफलता के सूत्र पर व्याख्यान देता है तो वह आचार्य के रूप में अनुभव सिद्ध उपयोगी बातें बताता है जिनका उसने आजीवन अध्ययन किया है तथा इस विषय पर सामान्य व्यक्ति नही बोल सकता है। इस स्थिति मे वह अपनी नागरिक स्वाधीनता की (न कि शैक्षिक स्वतन्त्रता की) आशा कर

1 जान एस ब्राउबेकर, शिक्षा की आधुनिक दर्शन धाराएं नई दिल्ली भारत सरकार, शिक्षा मन्त्रालय (वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा) प्रथम हिन्दी संस्करण, 1969, पृष्ठ 197

सकता है। पर यदि प्रधानाचाय अपने विशिष्टता के क्षेत्र से बाहर भी अधिकारपूवक बोलता है तो भी न उन्हें दण्डित किया जा सकता है तथा न ही पद मुक्त। समाज का कत्तव्य है कि वह प्रधानाचाय के छोटे मोटे दायित्वो को स्वय वहन कर ले जिससे वह अपना काय समाज हित म और अच्छी प्रकार कर सके।

यायपालिका की स्वतन्त्रता लोकतात्रिक स्वतन्त्रता की आधार शिला है। पर राज्य द्वारा प्रर्वाघत शिक्षा के खतरो को आज तक नही सोचा गया है। राज्य शिक्षा का प्रचार एव अधानुकरण के रूप मे प्रयोग कर सकती है तथा नागरिको को तकलीफ मे डाल सकती है। ऐसी शिक्षा व्यवस्था जहाँ शिक्षक को स्वतन्त्रता है शिक्षा म स्वतन्त्रता जन्मदायिनी है तथा उसी के परिणामस्वरूप मूल विचार अग्रसर होते हैं। प्रथम स्थान पर स्वतन्त्रता को प्रभावी रूप से प्रयोग करने के योग्य बनाती है। शक्षिक स्वतन्त्रता प्रतिकूल वातावरण मे फल फूल भी नही सकती। सही अर्थो म शक्षिक स्वतन्त्रता को सुदृढ एव समृद्ध बनाने के लिए अध्ययन में रुचिशील, निभय तथा समर्पित शिक्षक व विद्यार्थी वग का सहयोग अपेक्षित है। शक्षिक स्वतन्त्रता के क्षेत्र म प्रशासको की ओर से फिर भी एक भय बना ही रहेगा। प्रशासक जब तक मुख्यत सरकारी विद्यालयों म हस्तक्षेप की नीति के समथक रहेगे तब तक शक्षिक स्वतन्त्रता आकाश कुसुम ही बनी रहेगी। कल्पना कीजिए—किसी विशेष विद्यालय म कार्यानुभव पर कोई काय नहीं हुआ तो विद्यालय प्रधान को विद्यालय निरीक्षक की ओर से चेतावनी मिल जाएगी दूसरी बार ऐसा न करने के लिए स्पष्टीकरण मागा जाएगा। तीसरी बार स्पष्ट लिख दिया जाएगा कि ऐसा न होने पर सम्बधित अधिकारी को अपराधियो की सूची मे अकित कर दिया जाएगा।

ऊपर दिये विवेचन से विशुद्ध विशिष्ट ज्ञान रहित जनसाधारण तथा शिक्षाविद विचारको के दो सम्प्रदाय स्पष्ट होते हैं। प्रथम सम्प्रदाय के अनुसार विद्यालय को परम्परा से चली आई शिक्षा व्यवस्था का पालन करना चाहिए, शिक्षको को उस स्थिति का बिना प्रतिवाद किये अन्धानुकरण करना चाहिए तथा उन्हे अपनी स्वतन्त्रता का मर्यादित उपयोग भी परम्परा के अनुसार ही करना चाहिए। शिक्षक का काय ऊपर से निर्धारित नीतियो का पालन प्रचार व प्रसार करना मात्र हो जाता है। ऐसी स्थिति मे प्रेरणा तथा आलोचनात्मक चिन्तन के विकास का प्रश्न स्वत ही समाप्त हो जाता है। इसी भाँति विचारको के दूसरे सम्प्रदाय के अनुसार विद्यालय को सामाजिक प्रगति का अग्रदूत बनना चाहिए उसको समाज की गतिहीन स्थिति की आलोचना करनी चाहिए। शिक्षक को अपन शिक्षण म आलोचनात्मक भावना ग्रहण करने म अधिक स्वतन्त्र होना चाहिए। विद्यालय सामाजिक प्रगति का आलोचनात्मक अध्ययन करें उनके अनुसार विद्यालय अग्रदर्शी होना चाहिए विद्यालय को परम्परागत व्यवस्था से ऊपर उठकर सोचना

चाहिए तथा नये प्रयोग करने के लिए स्वतन्त्रता होनी चाहिए एव इस स्वतन्त्रता का क्षेत्र भी विस्तृत होना चाहिए। अच्छी सामाजिक व्यवस्था की सुविचारित ठोस आधारों पर योजना तयार करना तथा उस विद्यालय की ओर पहल होनी चाहिए। वे विद्यालय को समाज के हितार्थ प्रयोगशाला के रूप म मानते हैं, इसलिए उसकी उपेक्षा नही करनी चाहिए। इस विचारधारा के अनुसार विद्यालय को सामाजिक प्रगति के लिए मार्गदर्शन करना चाहिए। इस प्रकार एक ओर शिक्षक शिक्षण के समय घिसीपिटी विधि अपनाते हैं तो दूसरी ओर स्वतन्त्र क्रिया विधियो के अनुसार भी शिक्षण काय किया जाता है। कुछ विचारकों का कहना है कि शिक्षकों को परम्परा से हटकर बातें कहने म शक्षिक स्वतन्त्रता की सुरक्षा होनी चाहिए। पर दूसरे सम्प्रदाय के विचारक कहते हैं कि जनसाधारण से अधिक सुरक्षा नही होनी चाहिए *क्योंकि जसा ऊपर कहा गया है, शिक्षक शिक्षक होने से पहले नागरिक है* तथा वह नागरिक स्वाधीनता का भी उपयोग करता है।

भारत मे वर्तमान स्थिति

आज स्वतन्त्र भारत में शक्षिक स्वतन्त्रता का अर्थ लिया जाता है कि *प्रजातान्त्रिक विधियो से शिक्षक को अध्यापन की, शोध छात्र को अनुसन्धान की,* वैज्ञानिक को प्रयोग करने की, शिक्षार्थी को सीखने की स्वतन्त्रता है। इन सबकी स्वतन्त्रता समाजवादी समाज म प्रजातन्त्र की स्वतन्त्रता से भिन्न है। प्रजातन्त्र म स्वतन्त्रता थोडी मर्यादित हो जाती है। प्रजातन्त्र म व्यक्ति-व्यक्ति के विचारो म भिन्नता हो सकती है। विचारो मे भिन्नता होते हुए भी संयुक्त जीवन के लिए उसके योगदान की भी प्रशंसा की जानी चाहिए, उसके व्यक्तित्व का आदर किया जाना चाहिए तभी सम्मान के साथ उनका जीवनक्रम चलता रह सकता है।

पाठ्यक्रम

आज स्थिति यह है कि शीर्षस्थ व्यक्ति द्वारा मनोनीत या चयनित व्यक्ति पाठ्यक्रम तयार करते हैं तथा यह आशा की जाती है कि अन्य शिक्षक उसका अनुगमन करेंगे। क्या इससे यह अर्थ नही निकलता कि केवल कुछ ही शिक्षकों को सोचने विचारने की आवश्यकता है? यदि ऐसा ही है तो शक्षिक स्वतन्त्रता कहाँ है? समाज म बेकारी बढ़ी तो पाठ्यक्रम बदलो। शिक्षा के पाठ्यक्रम म उद्योग या कार्यानुभव जोडो। इसी भाँति समाज म अनतिकता भ्रष्टाचार या धोखा घडी बढ़ी तो पाठ्यक्रम बदलो पाठ्यक्रम को इस प्रकार समृद्ध करो, उसमे नतिक शिक्षा जोडो जिससे बालकों म आने वाली पीढ़ी मे नतिकता का विकास हो। सामान्य शिक्षकों से कुछ भी नही पूछा जाता तथा अधिकारी लोग ही सब निर्णय ले लेते हैं। यदि पाठ्यक्रम की रचना आवश्यक हो तो शिक्षकों के मार्गदर्शन के लिए सुझाव के रूप मे कुछ आधारभूत बिन्दु दे देने चाहिएँ तथा पाठ्यक्रम की रचना स्वयं शिक्षक पर

छोड़ देनी चाहिए। ऐसा पाठयक्रम समाज की आवश्यकताओं को अधिक अच्छी तरह से पूरी कर सकेगा क्योंकि वह अनुभव की हुई आवश्यकताओं पर आधारित होगा। इस प्रकार की कोई स्वतन्त्रता शिक्षक को आज तक नहीं दी गई।

अध्यापन विधि

आज के वातावरण मे शिक्षक को विधियों पर प्रयोग करने, विधियों मे परिवर्तन, संशोधन परिवर्द्धन करने की भी व्यवहारतः कई कारणों से स्वतन्त्रता नही है। उसे केवल परम्परा से चली आई विधियों के अनुसार ही पढाना है। दूसरे शब्दों में शिक्षण विधियों मे गत्यात्मकता नही है। बच्चों से प्रश्न पूछे ही नहीं जाते। यदि पूछे जाते हैं तथा विद्यार्थी विस्मयकारी उत्तर देते हैं तो वे शिक्षक के कोप भाजन बन जाते हैं। घूम फिर कर उनके उत्तरों को स्वीकार कर बालकों में सृजनात्मकता का विकास किया जा सकता है। शिक्षकों को स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि आवश्यकता के समय शिक्षण विधि मे परिवर्तन कर शिक्षण को अधिक प्रभावी बना सकें जिससे विद्यार्थी अधिकाधिक लाभान्वित हो सकें। मूल्यांकन के लिए भी यही कहा जा सकता है।

पाठ्यपुस्तकें

इस क्षेत्र मे भी शिक्षकों का कोई स्थान नही। पाठयपुस्तकें शिक्षा निदेशक तय करता है। लगभग सभी राज्यों में पाठयपुस्तकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है ऐसी स्थिति मे राष्ट्रीयकरण के सभी दोष यहाँ भी घर कर गये है। इस व्यवस्था मे किस प्रकार पुस्तकों का स्तर गिरा है, किसी से छिपा नहीं है। इस सम्बन्ध मे भी राज्य को विषय की एक से अधिक पुस्तक प्रकाशित करवाकर शिक्षकों को चयन का अवसर दे सकती है। शिक्षकों को इतनी स्वतन्त्रता तो होनी ही चाहिए कि वे अपने बच्चों के लिए उपयुक्त पुस्तकों का चयन कर सकें। इसमे डर यह है कि शिक्षक या प्रकाशक भ्रष्ट हो जाएँगे। पर यह तो व्यवस्था का दोष है न कि स्वयं सिद्धान्त का। पाठयपुस्तकों का चयन बच्चों पर छोडना वांछनीय नही होगा क्योंकि बच्चे तो अगाध व न्यूनाधिक रूप से पराश्रित होते हैं। स्वतन्त्रता शिक्षक का विशुद्ध रूप से वैयक्तिक विशेषाधिकार नही है परन्तु प्रमुख रूप से वह विद्यार्थियों के लाभ के लिए ही है।" इसलिए पाठ्यपुस्तकें ऐसी होनी चाहिए कि वह केवल तैयार व बने-बनाए निष्कर्षों को ही प्रस्तुत नही करें वरन निष्कर्षों तक

1 जान डी-वी दि सोशल सिग्नीफिकेंस आफ अकेडमिक फ्रीडम 2 165–166 जान एस ब्राउबकर द्वारा रचित शिक्षा की आधुनिक दर्शन धाराएँ से उद्धृत नई दिल्ली भारत सरकार शिक्षा मंत्रालय (वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा) प्रथम हिन्दी संस्करण 1969 पृष्ठ 226–227।

पहुँचने के लिए विद्यार्थियो को स्वतन्त्रता भी प्रदान कर। इसमे विद्यार्थी आगे चलकर नागरिक के रूप मे व्यावहारिक समस्याओं के श्रवण, मनन व निदिध्यासन के माध्यम से समाधान ढूँढने मे सक्षम होगे।

प्रश्न उठता है कि शिक्षक स्वतन्त्रता क्या चाहता ? उच्चाधिकारियों के सकेतानुसार काम करके वह सन्तोष क्या नही कर लेता ? स्वतन्त्रता शिक्षक का जन्मजात अधिकार, सहजवृत्ति एव बुनियादी आवश्यकता है। स्वतन्त्रता से मनाही का अर्थ है आत्मानुभव के अवसरा व समाज सेवा से दूर होना। प्रश्न यह नहीं है कि बिना स्वतन्त्रता के भी कुछ शिक्षक अच्छा काय कर रहे हैं यह कोई कृपा नहीं है पर ऐसा करना तो उन शिक्षका के स्वभाव मे है। स्वतन्त्रता म ही रह कर शिक्षक अधिकतम विकास कर सकता है। क्या कभी अन्तर्राष्ट्रीय तनाव व भय समाप्त होगे ? क्या कभी व्यक्तियो की हत्या करने तथा सावजनिक सम्पत्ति को जलाने के बजाय तक व प्यार से भी बात होगी ? क्या कभी सम्पूर्ण विश्व को कुटुम्ब के रूप मे पिरोया जा सकेगा ? इस विचार का विकास किया जाना चाहिए। इस प्रकार से विश्व की रचना के लिए शिक्षक का स्थान महत्त्वपूर्ण है। क्या शिक्षक अपने तुच्छ राजनतिक स्वार्थों तथा अपनी पाशविक इच्छाओ के वशीभूत होकर स्वतन्त्रता, समानता, अहिंसा तथा सत्य पर आधारित अपना कर्त्तव्य भूल जाएगा ? क्या शिक्षक सत्य के लिए आग्रह करेगा तथा विद्यार्थियों को भी सत्य पर आग्रह के लिए तत्पर बनायेगा ? इन सब प्रश्नों के उत्तर पर ही भावी सभ्यता निभर करती है।

---

9 नैदानिक परीक्षण एवं उपचारात्मक शिक्षण

नैदानिक परीक्षण जो कि मूल्याङ्कन के विश्लेषण पर आधारित है, शैक्षिक कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण अंग है। ऐसी स्थिति में शिक्षक का थोड़े समय के लिए अपना उच्च स्तरीय ज्ञान भूल जाना चाहिए तथा बच्चों के ज्ञान के स्तर तक आ जाना चाहिए। यदि शिक्षक अपने ज्ञान के स्तर से पढ़ाना प्रारम्भ करे तो उसके प्रयास बच्चों का कुछ भी हित न कर सकेंगे कारण कि बच्चे उसे ग्रहण करने, सीखने के योग्य ही नहीं होंगे। इस प्रकार बच्चों के पूर्व ज्ञान या उनके स्तर को ध्यान में रखकर शिक्षण कराना चाहिए। कक्षाध्यापन के समय किसी छात्र की कोई कठिनाई रह गई तो छात्र एकाग्रचित न हो सकेगा तथा अगले दिन तो उसके सीखने में और भी अधिक कठिनाई होगी, तीसरे दिन न सीखने के कारण वह घबरा कर कक्षा से भाग जायेगा। फलतः उस विषय की उस छात्र की कमियाँ या निर्योग्यतायें बढ़ती ही जायेंगी। इसके साथ साथ जब विद्यार्थी का पढ़ाई में विश्वास नहीं रहता उसकी रुचि नहीं होती तथा उसकी उपलब्धि बराबर गिरती जाती है तो उस समय उसे शैक्षिक मार्ग दर्शन के रूप में प्रोत्साहन की अत्यधिक आवश्यकता रहती है। अतः उनकी विशिष्ट विषयों की विभिन्न प्रकार की त्रुटियों का निश्चित स्तर ज्ञान करने के लिए नैदानिक परीक्षायें प्रयुक्त की जानी चाहिएँ। विद्यार्थियों में रुचि तथा उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उनके सीखने के परीक्षणों के आधार पर ज्ञात दोषों का सांगोपांग विश्लेषण किया जाय तथा प्राप्त जानकारी के आधार पर उचित उपचार किया जाए। किसी भी विषय में वाञ्छित योग्यता या उपलब्धि प्राप्त न करने पर शिक्षक को अपने शिक्षण की जानकारी होने पर तथा अपना शिक्षण निरर्थक सिद्ध होने पर नैदानिक परीक्षण एवं उपचारात्मक शिक्षण की आवश्यकता पड़ती है।

नैदानिक परीक्षाओं के प्रमुख उद्देश्य

नैदानिक परीक्षाओं के दो प्रमुख उद्देश्य हैं। प्रथम विद्यार्थियों के निम्न अधिगम में सुधार करना तथा द्वितीय, अप्रभावी होने पर शिक्षक की शिक्षण विधि या तकनीक में परिवर्तन एवं संशोधन करना। इस प्रकार उद्देश्य शिक्षक एवं शिक्षार्थी के कार्य कलापों पर आधारित है। विद्यार्थियों के विकास हेतु उनके दोषों एवं उनके कारणों का पता लगाकर उनका निवारण किया जाना चाहिए। इस प्रकार

कहा जा सकता है कि नदानिक परीक्षण का सर्वोपरि उद्देश्य निम्न श्रेणी के अध्यापन एव अधिगम का निवारण करना है। नदानिक परीक्षण बालक एव उसकी आवश्यकताओ के चारो ओर घूमता रहता है। इसी भाँति उपचारात्मक शिक्षण का ध्येय रहना है कि विद्यार्थियो की अप्रभावी आदतो म परिवतन लाया जाय तथा विद्यार्थियो का शिक्षण काय यदि आरम्भ ही करना है तो उनमे वाछनीय आदतो रुचियो एव कौशलो का विकास किया जाय। इस प्रकार नदानिक परीक्षण दो प्रकार की कमियो पर निभर है—खराब आदतो का पाया जाना तथा अच्छी आदतो का न होना।

नदानिक परीक्षाओ का अन्य मुख्य उद्देश्य किसी विशिष्ट विषय की कमी का या निर्योग्यता के क्षेत्र का पता लगाना है। ऐसी स्थिति म उस विषय की समग्र उपलब्धि जानन का या उस विषय का सामान्य स्तर जानने का प्रयत्न नही किया जाता है। इस प्रकार की परीक्षाओ का मुख्य उद्देश्य होता है—विषय समझने की गुणात्मक तथा सख्यात्मक कठिनाई का पता लगाना। अत स्पष्ट है कि ये परीक्षाएँ किसी भी विषय की समग्र उपलब्धि पर विचार नहीं करती है बल्कि उस विषय के विशिष्ट उपविभागो की उपलब्धि बताती है जिससे विद्यार्थियो की कठिनाइयो का पता लगाया जाता है। इस प्रकार उपलब्धि परीक्षा किसी भी विषय का समग्र मूल्याकन करती है, जबकि नदानिक परीक्षा उस मूल्याकन का विश्लेषण।

नदानिक परीक्षणो की काय विधि

चूकि ये परीक्षायें विद्यार्थी विशेष की कमी का पता लगाती हैं अत सभी विद्यार्थियो को देने के बजाय ये परीक्षायें जरूरत वाले विद्यार्थियो को ही देनी चाहिए तथा इन परीक्षाओ म इतने उपपरीक्षण होन चाहिएँ कि शिक्षक विषय के विशिष्ट भाग की कठिनाई आसानी से ज्ञात कर सके। इससे उन्हे विद्यार्थियो का मागदशन करने मे सुविधा हो जाती है।

मुख्य उद्देश्यो के अनुसार य परीक्षाए किसी भी विषय म छात्रो का कठिनाई जानने का प्रयत्न करती हैं न कि उसकी सम्प्राप्ति, जो कि सम्प्राप्ति से कही अधिक महत्त्वपूर्ण भी है। अत इन परीक्षाओ म अन्य परीक्षाओ की भाति समय की पाबन्दी नही होती है। यदि विद्यार्थी परीक्षा क समय किसी खास प्रकार का अनोखा व्यवहार करे तो उसे भी नोट कर लेना चाहिए तथा उपचार के समय उस पर भी विचार करना चाहिए। परीक्षार्थी द्वारा परीक्षा को दिया जाने वाला महत्त्व समझना परीक्षाकर्ता का इन सब प्रदतो के प्रकाश म मूल्याकन करना चाहिए। जब तक उद्देश्य की प्राप्ति नही होती, कठिनाई की जगह या कठिनाई का स्तर ज्ञात नही होता, परीक्षाओ को दोहराया जाता है जिससे यह जाना जा सके कि विद्यार्थी विषय मे सामान्य प्रगति क्यो नही कर रहा है?

निर्योग्यता का पता लगाने के लिए निष्पत्ति परीक्षा विद्यार्थी से साक्षात्कार, व्यक्तित्व की परख, रुचियों एवं रुझानों का अभिलेख, उसका वृत्त इतिहास विषयाध्यापक की राय, कक्षा में व्यवहार सामान्य सम्प्राप्ति को भी विचार में लिया जा सकता है क्योंकि ये सभी घटक घर पर या विद्यालय में विद्यार्थी की शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार इन परीक्षाओं की उपलब्धि पर निर्भर करने, उन पर कार्य करने के पूर्व अन्य सूचनाओं से प्रश्नावलियाँ, साक्षात्कारों एवं निरीक्षणों से परीक्षा की उपलब्धि की विश्वसनीयता भी जान लेनी चाहिए। कुछ उपलब्धि परीक्षाओं से भी बच्चों की कठिनाई जानी जा सकती है पर इन उपलब्धि परीक्षाओं का मुख्य उद्देश्य यह नहीं होता है। फिर भी यदि ऐसी जानकारी मिले तो उसका भी उपयोग किया जा सकता है। भाषाओं में कुछ सीमा तक गृह कार्य को भी नदानिक परीक्षा के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

नदानिक परीक्षाएँ निश्चित रूप से विश्वसनीय होनी चाहिएँ। जिस परीक्षा को जो कार्य करना हो, वह उस कार्य को निश्चित रूप से करे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जो परीक्षा वैध नहीं होगी, उसके विश्वसनीय होने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसा न होने पर कठिनाई का स्तर तथा क्षेत्र जान लेने के बाद भी उपचारात्मक कार्य न हो सकेगा। उपयुक्त समय पर शिक्षकों को विद्यार्थियों की व्यक्तिगत रूप से सहायता करनी चाहिए।

किसी भी विषय की विशिष्ट कठिनाई का स्तर जानना ही पर्याप्त नहीं है और न ही कमजोरी जान लेना ही शिक्षक के लिए काफी है तथा न ही कार्य यहीं समाप्त हो जाता है। पर इससे एक महत्त्वपूर्ण संकेत इस दिशा में मिलता है कि शिक्षक कमजोरी के सम्भावित कारणों का पता लगाकर सुधार के लिए किस दिशा में किस मात्रा में व किस प्रकार प्रयास करता है। साथ ही किसी भी विषय की उस क्षेत्र की विशिष्ट निर्योग्यता या कमी के लिए उत्तरदायी सभी तत्त्वों का विस्तृत अध्ययन भी किया जाना चाहिए। उपयुक्त मार्गदर्शन के लिए ऐसे छात्रों का ज्ञान शिक्षक के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अब शिक्षक इस स्थिति में होता है कि वह विद्यार्थी के विषय विशेष में अनुत्तीर्ण होने के कारणों को समझ सके तथा उनके निवारण के उपाय कर सके।

अंतिम पर महत्त्वपूर्ण कि एक समय दी गई नदानिक परीक्षा चाहे वह कितनी ही वैध एवं विश्वसनीय हो, उस विशिष्ट समय में ही लागू हो सकती है। वह परीक्षाफल बिना सोचे समझे हर समय लागू नहीं किया जा सकता और किसी भी प्रकार की भविष्यवाणी के लिए वह निश्चित रूप से अस्थिर आधार है। इस प्रकार के अल्पकालिक परीक्षणों से सुदीर्घ भविष्यवाणियाँ तो क्या, भविष्यवाणी की सम्भावना बताना भी त्रुटिपूर्ण हो सकता है पर उस विशिष्ट समय के सन्दर्भ में

तात्कालिक उपयोग के लिए व्यक्तित्व या बुद्धि का परीक्षण महत्त्व रखता है। मनोवैज्ञानिक धरातल पर कहा जा सकता है कि बार-बार दिये गये परीक्षणों के आधार पर विकास की रेखा निरंतर ऊपर की ओर उठी होने के बजाय सतत ऊँची नीची हो सकती है। इससे फलानुमान मे मदद मिलती है। इसके सिवाय *भिन्न भिन्न उम्र मे भिन्न भिन्न विधियो से, विभिन्न बुद्धि स्तर वाले, विभिन्न व्यक्तित्व* वाले बालकों को बार बार विभिन्न परीक्षण देने से मूल्याङ्कन अधिक सही होता है तथा भविष्यवाणी के गुणा म वृद्धि होती है।

यह स्मरणीय है कि नैदानिक परीक्षाओं का परीक्षाफल विद्यार्थी की निर्योग्यताओं का अस्थायी सूचक ही मानना चाहिए। इसकी मुख्य उपयोगिता तो यह है कि वे विद्यार्थी के व्यवहार को समझने में कितना अन्तर्बुद्धि का प्रयोग करते हैं तथा समान या असमान परिस्थितियो म वे बालक के व्यवहार की कहा तक भविष्यवाणी कर सकते हैं परन्तु यह सब नैदानिक परीक्षक पर बहुत कुछ निर्भर करता है। आदर्श स्थिति यह होगी कि परीक्षाफल के पूरे अर्थ का स्पष्टीकरण निष्कर्षों मे दिया जाय। नैदानिक परीक्षा का लेखा रखने वालो के समक्ष एक बहुत बडी कठिनाई यह आती है कि वे अपने परीक्षाफलो के सकेतो का अर्थ नही लगा सकते। इससे कई बार गलत निष्कर्ष भी प्राप्त कर लिए जाते हैं।

कोई भी नैदानिक अध्ययन, यदि उसकी उपयुक्तता पर विचार न करें तो भी विद्यार्थी के व्यवहार के चुने हुए तथ्यो का संग्रह है। अन्य सभी प्रतिदर्शों के समान ये चुने हुए तथ्या का लेखा भी गलत प्रतिनिधित्व कर सकता है। यहाँ तक कि कई बार वृद्ध परीक्षाएँ भी विद्यार्थी का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत नही करती हैं या गलत प्रस्तुत करती हैं। किसी भी विद्यार्थी के लिए सम्भव है, लिखित व्यवहारो के सिवाय अन्य व्यवहार उसका सही प्रतिनिधित्व कर सके। इसलिए विश्वास करना चाहिए कि परीक्षाफल विद्यार्थी की एक झलक मात्र न कि सम्पूर्ण तथा सही चित्र बताते हैं। आखिरकार, विद्यार्थी का व्यवहार, न कि उसके चुने हुए व्यवहारो का ढाचा ही उत्तम कसौटी है। परीक्षण भी एक उपयोगी, प्रामाणिक एव सीधा सादा तरीका है जो कि प्रतिदर्श से सम्बन्धित तत्त्वो के मूल्याङ्कन म मदद करता है।

मंद प्रगति के कारण

मंद बुद्धि—कक्षा मे कुछ बालक मंद बुद्धि के भी होते हैं तथा वे प्रखर एव औसत बुद्धि के बालकों के समान प्रगति नही कर सकते हैं एव निरन्तर पिछड़ने लगते हैं।

हीन भावना—कई बार विद्यार्थी अपने स्थान के बारे म अनभिज्ञ होते हैं वे साथियो के साथ बोलने में झिझकते हैं। ऐसी स्थिति मे कई बार विद्यार्थी उत्तर जानते हुए भी कक्षा मे उत्तर नही दे पाता है।

अंगीय दोष—कई छात्र अंग दोष की दृष्टि से पीड़ित होते हैं, इससे वे अपने साथियों के साथ हिल मिल नहीं पाते, हकलाना, आंख मटकाना, कान का दोष आदि ऐसे ही दोष हैं। ऐसे दोष बालक की प्रगति में बाधा डालते हैं।

भावुक छात्र—ऐसे छात्र किसी भी बात पर शीघ्र ही अपना सन्तुलन खो बैठते है तथा क्रोधी बन जाते हैं। ऐसे छात्र कक्षा के साथ चलने मे असमर्थ रहते है।

उत्प्रेरणा एवं रुचि की कमी—कई बार छात्र माता पिता या अभिभावकों के आग्रह से ऐसे विषय चुन लेते है जिनमे उनकी रुचि नहीं होती फलतः कक्षा में पढ़ते समय भी वे ध्यान नहीं दे पाते तथा कई बार तो वे उस विषय के शिक्षक से भी बचने का प्रयास करते हैं। रुचि के अभाव मे वे उस विषय की घर पर भी तैयारी नहीं करते तथा वे कक्षा में वांछित प्रगति नहीं करते हैं।

विचारों में अस्पष्टता तथा दोष पूर्ण अध्यापन—शिक्षा बालक के विकास के लिए है न कि बालक शिक्षा के लिए। शिक्षक को विद्यार्थी की प्रकृतिदत्त सम्भावनाओं का ज्ञान होना चाहिए तथा उसके विकास में व्यक्तिगत रूप से रुचि लेना चाहिए। कक्षाओं में अत्यधिक छात्र तथा शिक्षक पर कार्य का अधिक भार इस पर विपरीत प्रभाव डालता है, शिक्षक छात्रों के साथ कक्षा मे न्याय नहीं कर पाता है।

अन्य कारण—विद्यार्थियों की शैक्षणिक सम्प्राप्ति के कुप्रभाव करने वाले घटक विषयों की अपूर्ण जानकारी, आत्म प्रेरणा का अभाव, आत्म संकल्पना तथा अनुकुलन की अक्षमता भी है।

प्रो० रेसमन के अनुसार ये कारण इस प्रकार हो सकते हैं

1. कक्षा मे विद्यार्थियों को मार्ग दर्शन कम मिलना।
2. विद्यालय के रीतिरिवाज तथा परीक्षा पद्धति मे तालमेल न होना, विद्यार्थियों द्वारा अपने को दुविधा की स्थिति मे पाना।
3. विद्यार्थियों द्वारा विद्यालय का वातावरण हेय समझना।
4. घर का अवरोधक वातावरण।

और भी

1. आवश्यक साधना रहित विद्यालय एवं अपर्याप्त शैक्षिक सहायक सामग्री।
2. अयोग्य एवं अप्रशिक्षित अध्यापक।
3. एक ही कक्षा में अधिक विद्यार्थी।
4. संकीर्ण तथा अव्यवस्थित पाठ्यक्रम।
5. व्यक्तिगत मार्ग दर्शन की कमी।

6 पर्यवेक्षण की कमी या दोषपूर्ण अध्ययन।

7 अशुद्धियों से भरी पुस्तकें।

8 पूरक पाठन सामग्री की कमी।

सामान्य उपचार

शिक्षक जब शिक्षण में कारण जानकर संशोधन या सुधार करता है, सम्भावित कारणों को दूर करने का प्रयत्न करता है तो ये प्रयत्न या सुधार ही उसका उपचारात्मक शिक्षण है। उदाहरण के लिए एक शिक्षक जब एक कठिन वर्तनी का अर्थ कक्षा के छात्रों को बताता है तथा देखता है कि बच्चे आश्चर्य से या बिना किसी हावभाव के शिक्षक को देख रहे हैं तो शिक्षक यह अनुमान लगाता है कि बच्चों को कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है। यह अनुमान लगाना ही निदान है तब शिक्षक अपने शिक्षण में उदाहरण की मदद लेता है या किसी शिक्षण सामग्री का प्रयोग करता है। यह उदाहरण या शिक्षण सामग्री ही उपचारात्मक शिक्षण है। ऐसा करने के बाद शिक्षक बच्चों से कई उदाहरण भी पूछ सकता है। जब शिक्षक गृहकार्य ठीक करता है गलतियाँ दर्शाता है विद्यार्थियों की कमियाँ निकालता है लिपि के सुधार के लिए या सुलेख के लिए संकेत करता है तभी से उपचारात्मक शिक्षण प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार उपचारात्मक शिक्षण में बच्चों का योगदान भी प्राप्त किया जा सकता है। मोटे रूप से यह कहा जा सकता है कि शिक्षक शिक्षण के लिए सरलात्मक तरीके प्रयोग करते हैं।

मोटेतौर पर उपचार इस पर निर्भर करेगा कि निर्योग्यता का प्रकार तथा स्तर क्या है? सभी निर्योग्यताओं के लिए एक ही तरीका उपचार काम में नहीं लाया जा सकता। पर इसके विपरीत चिकित्सक ज्वर में सभी रोगियों को पेनिसिलिन का इन्जेक्शन लगा सकता है पर विद्यालय में छात्रों की स्थिति दूसरी है। सभी विद्यार्थियों को इन कारणों के अनुसार समान उपचार नहीं दिया जा सकता है। यथासम्भव छोटे छोटे दलों में विद्यार्थियों को बाँट-बाँट कर उनके कारणों का ध्यान रखते हुए उपचार किया जाना चाहिए। यदि कोई विद्यार्थी शारीरिक दोष के कारण पीड़ित है तो तत्काल किसी चिकित्सक की मदद ली जानी चाहिए। हकलाना, तुतलाना, कुपोषण या स्नायु गड़बड़ी सम्बन्धी अन्य व्याधियों के लिए भी विशिष्ट चिकित्सक की मदद ली जानी चाहिए, जब तक इन सब बातों का ज्ञान नहीं हो जाता उपचारात्मक शिक्षण पर भी कोई काम नहीं किया जा सकता है।

यदि विद्यार्थी की बुद्धि का स्तर ही नीचा है तो स्वयं शिक्षक को उससे महत्वाकांक्षाएँ नहीं रखनी चाहिएँ। उसको उसके बुद्धि स्तर के अनुसार ही पढ़ाया जाय, तथा वे यदि किंचित उत्कर्ष या सफलता प्राप्त करने के लिए प्रेरित हों

सकेंगे । उनको उनकी बुद्धि के उपयुक्त ही काय दिये जाएँ । ऐसी मद बुद्धि वालका के साथ व्यवहार करते समय KIRK महोदय बताते हैं कि—

1 जब भी विद्यार्थी मिले उनसे पुस्तको तथा पुस्तको के आश्चयजनक स्थला या तथ्यो पर बातचीत कीजिए ।

2 बिना समझे हुए भी बच्चो को पढने दीजिये । याद रखने का आग्रह करते ही बच्चा सजग हो जायगा—जिससे उसके हताश हो जाने की सम्भावना रहती है ।

3 बच्चा द्वारा पढी जाने वाली आसान व रुचिप्रद पुस्तका के चयन मे उनकी मन्द कीजिये । उनके लिए स्तरानुसार शब्द भण्डार बढाते हुए अच्छी कहानिया की पुस्तकें लिखवाइ जानी चाहिए ।

4 बच्चा का पढने के लिए उत्प्रेरणा देने के लिए अन्य विधिया—प्रोजक्टस आदि का भी प्रयोग किया जाए ।

यदि घर की स्थितिया बच्चो के कार्यों म बाधक हैं बच्चे घर पर अपने को असुरक्षित अनुभव करते हैं, माता पिता सादव ताडना देते हैं बच्चा की अवहेलना करत हैं तो उनके सुधार के लिए माता पिता या अभिभावका से सम्पक किया जाना चाहिए । यदि घर की स्थितिया म सुधार नही दीखे तो बच्चा को छात्रावास म रखने का माता पिता से आग्रह किया जाना चाहिए ।

जो बच्चे पढ़ने म रुचि नहीं लेते हैं तथा जिनम अन्य कई निर्योग्यतायें है तो ऐसी स्थिति म शिक्षक का पाठ एक से अधिक बार पढाने के लिए तैयार रहना चाहिए, धय से काम लिया जाना चाहिए । बच्चा से प्रेक्षण विधिया के द्वारा काम लिया जा सकता है ताकि बच्चा को आत्म प्रदशन के अवसर भी मिल सकें । मनोवनानिका के अनुसार बच्चा को आत्म प्रदशन मे सन्ताप मिलता है—उनका साहस बढ़ता है ।

हर बच्चा दूसरे बच्चा से भिन्न होता है । इस स्वीकृत तथ्य के बाद भी उनम कई समानतायें देखी जाती हैं । इन्ही समानताओ को ध्यान म रखते हुए समान उपचार भी सुझाया जा सकता है जो हर स्थिति म हर बालक को निर्योग्यता निवारण के लिए काम मे आ सकता है—

1 बच्चा के स्तर पर उतर कर सुधार के लिए प्रयत्न कीजिये । शिक्षका को अपना स्तर ध्यान मे नही रखना चाहिए तथा केवल बच्चा का स्तर ध्यान म रखकर ही पढाना आरम्भ करना चाहिए । जब तक बच्चे सीखने को तत्पर नहीं होंगे—सभी प्रयास या उपचार व्यथ होंगे ।

2 बच्चो को उनकी प्रगति तथा परीक्षाम्रा के परिणामा का ज्ञान समय समय पर कराया जाना चाहिए। बच्चो को उनकी प्रगति रेखाचित्र, ग्राफ चाट प्रगति पत्र ग्रादि के माध्यम स बताई जानी चाहिए। इससे बच्चा को ग्रधिक सीखने के लिए उत्प्रेरणा मिलती है, वे ग्रपने साथिया से तो प्रतियोगिता करते ही हैं, पर साथ ही स्वय से भी प्रतियोगिता करते हैं वे हर ग्रगली बार ग्रधिक ग्रक प्राप्त करने के लिए तत्पर रहत हैं। Good या Star लिखने से भी बच्चो को प्रेरणा मिलती है। शिक्षक देखत हैं कि ऐसा करने से विद्यार्थियो मे किसी विषय विशेष के प्रति ग्ररुचि ता उत्पन्न नही हाती है। इस प्रकार ग्रात्म प्रकाशन के माध्यम स भी शिक्षार्थिया को सन्तुष्टि होती है।

3 ग्रध्यापन काय को जीवन से—रोज के कार्यों स—जोडिये। ऐसी व्यवस्था कीजिये कि बच्चा की आवश्यकताएँ शक्षणिक कार्यों से पूरी हा। शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए तथा ग्रधिगम को स्थायी बनाने के लिए मुख्यत निम्न बुद्धि स्तर के बालका का शिक्षण करते समय—शिक्षक को सहायक श्रव्य दृश्य शिक्षण सामग्री का उपयोग करत हुए सहानुभूतिपूवक व्यवहार करना चाहिए।

4 बालको को सफल प्रयत्नो से मिलने वाला सन्तोष उनके प्रयत्नों म तत्परता लाता है ग्रत बच्चा को ग्रसन्तोष से बचाना चाहिए। बच्चे स्वय भी सफलता देने वाले प्रयत्ना को दोहराना पसद करते हैं।

5 बालको को भिन्न भिन्न प्रकार के कई ग्रभ्यास करवाये जाने चाहिए। मानव स्वभाव के ग्रनुसार नये ग्रनुभव प्राप्त करने के लिए मस्तिष्क तत्पर रहता है।

उपचारात्मक शिक्षण की तैयारी

ग्राज चारो ग्रोर से सुना जा रहा है कि विद्यार्थी बहुत फेल हो रहे हैं तथा शिक्षा का गुणात्मक स्तर गिर रहा है। इसमे सुधार के लिए जरूरी है कि हर शिक्षक नदानिक परीक्षण एव उपचारात्मक शिक्षण से परिचित हो जिससे कि इस राष्ट्रीय समस्या को हल करने म मदद मिल सके। उपचारात्मक शिक्षण के लिए निर्योग्यताग्रा पर किया जाने वाला शोध काय ठोस ग्राधारों पर होना चाहिए। मनोवज्ञानिका के ग्रनुसार एक ही व्यवहार के लिए भिन्न भिन्न कारण बताये जाते हैं। बालका की व्यवहारगत समस्याग्रा के समाधान के लिए जो गृह विद्यालय तथा पास पडोस स सम्बन्धित हैं चिकित्सा शास्त्री मन रोग निदान शास्त्री, मनो वज्ञानिक, समाज शास्त्री तथा शिक्षा शास्त्री के सतकतापूवक तथा सजगतापूवक किए गए सामूहिक प्रयास उपयोगी हो सकते हैं।

यह स्पष्ट हो गया है कि नदानिक परीक्षण एव उपचारात्मक शिक्षण का ग्रपना महत्त्वपूण स्थान है। ऐसे शक्षिक कायक्रम खर्चीले हैं तथा बहुत समय लेत हैं। पिछडे हुए विद्यार्थिया को भविष्य म सभी सुविधाएँ मिल जाएँगी यह एक

महत्वपूर्ण प्रश्न है। पिछड़ेपन, उसके कारण, उपयुक्त उपचार तथा मूल्यांकन पर विभिन्न अभिकरणों को मिलकर सहयोग से काम करना चाहिए। या तो इस कार्य के लिए विशिष्ट प्रकार का प्रशिक्षण शिक्षक के लिए होना चाहिए। पर भारतवर्ष में आज की स्थितियों में यह सम्भव नहीं है कि इस प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था हो सके। ऐसी स्थिति में जिन शिक्षकों को यह काम करना है, उन्हें इस विषय पर उपलब्ध साहित्य का सांगोपांग अध्ययन कर लेना चाहिए। उन्हें इस विषय की पुस्तकों तथा पत्रिकाओं के निरन्तर सम्पर्क में रहना चाहिए। कुछ अंशों में यह भी शत प्रतिशत रूप से सही है कि प्रशिक्षण तथा साहित्य का ही अध्ययन करके निपुणता प्राप्त नहीं की जा सकती। इस क्षेत्र में लम्बी अवधि तक निरन्तर कार्य करके, अनुभव प्राप्त करके दक्षता प्राप्त की जा सकती है। प्रखर बुद्धि शिक्षक बिना अधिक तैयारी के भी अपनी सूझ-बूझ से बच्चों का काफी भला कर सकते हैं।

ऐसे शिक्षकों को विद्यार्थियों की कमियों या या निर्योग्यताओं का पता लगाने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए, वे बच्चों की कठिनाइयाँ जानने में रुचि लें तथा उनकी बातों को सुनी अनसुनी न करें।

नैदानिक परीक्षाओं का प्रयोग करना धैर्यशील एवं दक्ष व्यक्ति का काम है पर इस कार्य से सामान्य शिक्षक को भी उपेक्षित नहीं रखा जा सकता तथा न ऐसा करना वाञ्छनीय ही है। व्यवहार में हर शिक्षक अपने विद्यार्थियों की कमजोरियों को ज्ञात करते ही हैं तथा उन्हें दूर करने के लिए भी उपचार करते ही हैं। शिक्षकों को दक्षता प्राप्त करने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में, यदि इस प्रकार के पाठ्यक्रम उपलब्ध हों तो लाभ उठाया जाना चाहिए। पिछले एक दो वर्षों से शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में स्थित सेवा प्रसार विभाग भी अवकाश के समय में इस प्रकार के अल्पकालीन पाठ्यक्रम आयोजित करने लगे हैं यही बात राज्य शिक्षा संस्थाओं के लिए भी कही जा सकती है उनसे भी लाभ उठाया जा सकता है। दक्षता प्राप्त करने पर शिक्षक स्वयं भी अपनी परीक्षण सामग्री तैयार कर सकते हैं। इन सब पाठ्यक्रमों में व्यावहारिकता पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।

इन कार्यों में लगे शिक्षकों को विभिन्न प्रकार के बुद्धि, व्यक्तित्व तथा रुझान सम्बन्धी परीक्षण देने तथा उनका अर्थ लगाने की समझ-बूझ आनी चाहिए। इस प्रकार के परीक्षणों में व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों प्रकार की परीक्षाएँ सम्मिलित हैं। विभिन्न परीक्षाओं का देना तथा उनका अर्थ लगाना ही पर्याप्त नहीं है शिक्षकों को प्रारम्भिक सांख्यिकीय विधियों का ज्ञान भी जरूरी है। इन विधियों में मध्यमान, मध्यांक, बहुलांक शतांशीय अंक प्रमाणित अंक, प्रमाणित विचलन, सम्भावित त्रुटि, परीक्षण की वैधता एवं विश्वसनीयता तथा सह-सम्बन्ध आदि प्रमुख हैं।

नदानिक पाठ्यक्रमा मे नदानिक विधियाँ, मानसिक निर्योग्यता, निम्न स्तर की शक्षिक उपलब्धि, किसी विषय की विशिष्ट कमी या निर्योग्यता, व्यावहारिक कठिनाइयाँ, बालापराध, मानसिक स्वास्थ्य, विशिष्ट बच्चो की आवश्यकताएँ, वाचन की कठिनाई या निर्योग्यता, व्यक्तित्व सम्बन्धी कमी या निर्योग्यता, श्रवण या अनुभव करने सम्बन्धी कठिनाई आदि इसी प्रकार के विषय सम्मिलित किए जाने चाहिएँ। इससे शिक्षको को व्यावहारिक लाभ होगा। अभी भारत की वतमान स्थितियो मे शिक्षको के लिए मनोविकार विज्ञान का पाठ्यक्रम उपलब्ध कराने की कल्पना नही की जा सकती।

अच्छा यह होगा कि शिक्षक ऐसे पाठ्यक्रमों मे उपस्थित होने के पूव एव वृत्त अध्ययन साथ लेकर आयें, जिस पर वहाँ विचार विमश किया जा सके कुछ भी हो, अनुभव से ही शिक्षक दक्षता की ओर अग्रसर होते हैं। इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि इस काय म विद्यार्थियो का भी भरपूर सहयोग लिया जाय। यदि ऐसा नही किया गया तो सम्भव है विद्यार्थियो मे रुचि न हो। उपचारात्मक शिक्षण की सहगामी क्रियाओ से जोडकर उसम जीवन लाया जा सकता है। उपचारात्मक शिक्षण के लिए शिक्षण का समय शिक्षण का तरीका व विषय सामग्री भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इन सब कार्यों का उद्देश्य बच्चो मे यह विश्वास पदा करना है कि वे सफलता के बहुत निकट हैं तथा सतत प्रयत्न से सफलता मिलती है।

---

10 शैक्षिक प्रशासन में निर्णय प्रक्रिया

किसी भी काय को सफल या असफल होने के लिए उसके प्रशासन को उत्तरदायी ठहराया जाता है। यह बात समान रूप से शिक्षा के क्षेत्र मे भी लागू होती है। जब भी कोई दो व्यक्ति सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं तभी से प्रशासन का जन्म होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि उद्देश्य प्राप्ति के लिए योजना, प्रबन्ध नियन्त्रण एव निर्देशन करना होना है और इन विभिन्न क्रियाओं का तालमेल ही प्रशासन कहलाता है। इस प्रकार प्रशासन का मोटे रूप से अर्थ लिया जाता है काय सम्पन्न करवाना (To get things done)। फक्टरी, मिल, वर्कशॉप म इस अर्थ से काम चल सकता है क्योंकि वहाँ कर्मचारियों का निर्जीव वस्तुओं के साथ काय करना है, रात का काय समाप्त होने पर या सप्ताह या माह के अन्त म अपने किए काय की मात्रा का भी ज्ञान हो सकता है तथा कुछ अंशों तक यह काय की मात्रा उनको दिए जाने वाले पारिश्रमिक पर भी प्रभाव डाल सकती है। पर शिक्षा या विद्यालय प्रशासन में इसका अनुसरण पालन नहीं किया जा सकता, कारण स्पष्ट है कि इस क्षेत्र म निर्जीव वस्तुओं के साथ नहीं वरन सजीव बच्चों अर्थात विद्यार्थियों के साथ शिक्षकों शिक्षाधिकारियों को व्यवहार करना पडता है। विद्यार्थियों के साथ निर्जीव वस्तुओं के रूप में व्यवहार नहीं किया जा सकता और बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा कितनी प्रभावी हुई है, इसका प्रतिदिन मूल्यांकन भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह बडी पचीदी प्रक्रिया है।

Griffiths के अनुसार प्रशासन सामाजिक सगठन म निर्देशन व नियन्त्रण की प्रक्रिया है जिसका मूल उद्देश्य निर्णय प्रक्रिया को विकसित व निर्देशन म विधिवत बनाना है। Graham Balfour के अनुसार शिक्षा प्रशासन का अर्थ—प्राप्त साधनों का ध्यान रखते हुए सही विद्यार्थी को उपयुक्त शिक्षक द्वारा सही प्रकार की शिक्षा दी जाए जिससे कि विद्यार्थी विद्यालय जीवन म प्रकृतिदत्त सीमाओं तक अधिगम (सीख) कर सके। Campbell Corbally और Ramseyer के अनुसार शिक्षा प्रशासन का अर्थ मूलत अधिगम एव अध्यापन के उद्देश्यों एव नीतियों को विकसित करने, उनके लिए उपयुक्त कार्यक्रम निर्धारित करने उन भौतिक एव मानवीय साधनों को प्राप्त करने तथा उन्हें तत्पर बनाने के उपागम से है। Russel T Gregg इससे भी एक कदम आगे बढ़ा है तथा कहते हैं कि **शिक्षा प्रशासन का अर्थ**

साधनो को इस प्रकार काम मे लेने से है कि इससे सहज रूप म मानवीय गुणो का विकास हो। शिक्षा प्रशासन या काय केवल विद्यालय के बालको का हित देखना ही नही है बल्कि वयस्कों (मुख्यत विद्यालय की स्थिति म अध्यापन काय मे रत शिक्षको) के हितो की रक्षा करना भी है।

कालान्तर मे Luther Gullick के विचारो ने जोर पकडा जो इसके विस्तृत क्षेत्र के समथक थे। उन्होने आसकानिसप्रब या पोस्डकब Posdcorb के प्रत्यय का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार प्रशासन के क्षेत्र मे योजनाएँ बनाना सगठन करना, कमचारियो की व्यवस्था करना, निर्देशन व समन्वय के काय करना, प्रतिवेदन तयार करना तथा बजट बनाना आदि विषय सम्मिलित किए जाते है। आसकानिसप्रब शब्द उन्ही तत्वो के प्रथमाक्षरो से बना है। यह अग्रेजी शब्द Posdcorb अग्रेजी अक्षरो का समूह है तथा इन प्रथम अक्षरो से बनने वाले नीचे लिखे शब्द हैं जो प्रशासन का क्षेत्र स्पष्ट करते हैं। यथा—

P=Planning	—आयोजन (आ)
O=Organising	—सगठन करना (स)
S=Staffing	—कार्मिक व्यवस्था करना (का)
D=Directing	—निर्देशन करना (नि)
Co =Co ordinating or Controlling	—समन्वय या नियन्त्रण करना (स)
R=Reporting	—प्रतिवेदन लिखना (प्र)
B=Budgeting	—बजट तयार करना (ब)

काय विशेष को सम्पन्न करने के लिए प्रशासन का जन्म होता है और उन कार्यों को करने के लिए, उस प्रक्रिया से गुजरने के लिए निणय लेना एक पूव आवश्यकता है।

निणय प्रक्रिया की विधियाँ

इसम मुख्यत तीन प्रकार की विधियाँ जानी जाती हैं—

1 तानाशाही या एकतन्त्रीय इस विधि मे बिना अपने साथी, सहयोगियो के पूछे या बिना उन्हें जिम्मेदार बनाए एक व्यक्ति अपना निणय ले लेता है और घोषणा कर देता है। इस प्रकार के निणय भावना प्रधान होते हैं और उनम निजी विचारो की झलक होती है। एसे निणय कई बार शीघ्रता म लिए जाते हैं और आश्चयजनक परिवतन उपस्थित करते हैं। इस प्रकार लिए गए भावना प्रधान निणय व्यक्ति के अनुभव, सूझ-बूझ और सगठनात्मक दक्षता पर आधारित होत हैं।

2 नौकरशाही इस प्रकार के निणय को कानूनी निणय की सज्ञा दी जाती है जो पिछले उदाहरणा पर आधारित होते हैं। ऐसे निणय छोटे आदमी की तरफ से बडे आदमी की तरफ चलते हैं और ऐसे किसी भी पहलू पर उस विषय से सम्बन्धित व्यक्ति अपना योगदान पत्रावली पर देते चलते हैं, ऐसे निणय प्रशासनिक होते हैं, जो कि चल रहे कानून कायदे को ध्यान मे रख कर किए जाते हैं।

3 प्रजातान्त्रिक प्रजातान्त्रिक निणया को कई बार प्रतियोगी निणय भी कहते हैं। प्रजातान्त्रिक निणय लेने के लिए नीचे लिखे तरीको मे से कोई भी एक तरीका कम या अधिक प्रजातान्त्रिक भावना के साथ उपयोग किया जाता है।

अ प्रस्ताव→विचार विमश→राय→निणय
आ प्रस्ताव→विचार विमश→प्रचार→विचार विमश→राय→निणय
इ प्रस्ताव→विचार विमश→लिखित राय→राय की गणना→निणय
ई स्थिति→विचार विमश→प्रस्ताव→विचार विमश→राय→राय की गणना→निणय

प्रजातान्त्रिक निणय यद्यपि अधिक समय लेते हैं पर वे अधिक प्रभावी व सुदृढ होते हैं। कई बार लिए गए प्रजातान्त्रिक निणया को परामर्शात्मक निणय भी कहते हैं। प्रजातान्त्रिक निणय निम्न बातों पर निभर हैं। कोई भी महत्त्वपूण सूचना से सभी परिचित हैं। प्रतियागी व दल सक्रिय योगदान करता है। हर दल के पास निणय का प्रभावित करने की क्षमता है।

दिन प्रतिदिन तानाशाही या एकतन्त्रीय निणय गायब होता जा रहा है। नौकरशाही निणय विभिन्न सगठनों म दीख पडते हैं और उनकी विधि के प्रति निणय लेने वालो से बडा विद्रोह पनप रहा है। प्रजातान्त्रिक निणय समय की माग है पर उसका पर्याप्त मात्रा म विकास नहीं हुआ है।

कल्पना कीजिए कि शक्षिक जगत म विद्यालय स्थिति में—एक काय करना है— नवम्बर मास से पूव अन्त कक्षायी खेल-कूद प्रतियोगिता सम्पन्न करवानी है।" इस स्थिति म केवल विद्यालय प्रधान का निणय ही पर्याप्त नहीं है। अन्य व्यक्ति कमचारी भी इस निणय को प्रभावित करेंगे। इन अन्य व्यक्तिया या कमचारियों म व्यायाम शिक्षक उसके सहायक, अन्य आवश्यक वस्तुआ की व्यवस्था करने वाले शिक्षक चतुथ श्रेणी कमचारी आदि आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। इन सबके मधुर तालमेल एव सहयोग से ही खेल-कूद प्रतियोगिता का सफल आयोजन किया जा सकता है। निणय लेने की प्रक्रिया म सम्पन्न किये जाने वाले काय से सम्बन्धित जितने अधिक सक्रिय व्यक्तिया की राय ली जा सकेगी निणय प्रक्रिया उतनी ही अधिक वज्ञानिक तथा गुणात्मकता की दृष्टि से उत्तम एव प्रभावी होगी तथा तभी उद्देश्या की प्राप्ति की आशा की जा सकेगी।

निणय प्रक्रिया के कुछ सोपान हैं जो इस प्रकार बताए जा सकते हैं—

1 उद्देश्य स्पष्ट करना व समस्या का निरूपण करना।

2 सम्बंधित साहित्य का मूल्यांकन-कार्यविधि निश्चित करना तथा उसके अनुसार सूचनाएं व सम्बंधित आवश्यक सामग्री संकलित करना।

3 उद्देश्य के संदर्भ में प्राप्त सामग्री का विश्लेषण, मूल्यांकन करना अर्थ लगाना एवं सामान्यीकरण प्राप्त करना।

यहाँ यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि हर निर्णय प्रक्रिया में ऊपर दिए सभी सोपान दृष्टिगोचर हो ही कई बार यह आवश्यक नहीं है। मान लीजिए, स्कूल चलो अभियान पर कार्य करना है। यहाँ उद्देश्य स्पष्ट है उच्चाधिकारी ने सामान्य लक्ष्य स्पष्ट कर दिया है। संभव है, इस स्थिति में सभी सोपान न दीखें। पर फिर भी मोटी व्यवस्था में विद्यालय विशेष अपने लिए भी लक्ष्य यदि चाहे तो निश्चित कर सकता है। जैसे कि—

1 स्कूल चलो अभियान से विद्यालय में 25 प्रतिशत छात्रों की वृद्धि करना।

या

2 स्कूल चलो अभियान की अवधि में अभिभावकों में शिक्षा के प्रति चेतना उत्पन्न करना। या

3 स्कूल चलो अभियान की अवधि में 5 से 11 वर्ष की आयु वर्ग की 25 प्रतिशत बालिकाओं को विद्यालय में प्रवेश करवाना।

या इसी प्रकार के अन्य और भी लक्ष्य निर्धारित किये जा सकते हैं।

लक्ष्य निश्चित करने से पूर्व आवश्यकता है उस स्थिति का पूर्व का इतिहास जानना। क्या उस लक्ष्य के अनुसार कार्य किया जाना उचित है? भूतकाल में उस पर क्या क्या प्रयत्न किए गए हैं? यहाँ स्थिति का यों विश्लेषण किया जा सकता है कि स्कूल चलो अभियान की क्या आवश्यकता हुई? क्या इस प्रकार के इस क्षेत्र में पहले भी कोई प्रयत्न किए गए हैं? यदि हाँ तो उनका क्या फल रहा? यदि आशातीत सफलता नहीं मिली तो असफलता के लिए क्या क्या कारण उत्तरदायी हैं? किसी भी समस्या का इतिहास उस समस्या की प्रवृत्ति एवं गम्भीरता समझने में मदद करता है। इससे नई तथा पुरानी स्थिति की तुलना करके यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उद्देश्यों की प्राप्ति क्या नहीं हुई तथा अब प्राप्ति के लिए कहाँ संशोधन करना है? समस्या का इतिहास संचालन में आने वाली कठिनाइयों का भी अनुमान लगाने में मदद करता है। इस दृष्टि से समस्या का निरूपण तथा लक्ष्यों का निर्धारण निर्णय प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण सोपान है।

दूसरे सोपान में उस समस्या से सम्बंधित अब तक हुई शोधों से परिचित होना है। समस्या के क्षेत्र में स्वतन्त्र व निष्पक्ष चिंतन करना है जिससे विभिन्न

दृष्टिकोण से सोच विचार के साथ निर्णय लिया जा सके, तथ्यों की गहराई आंकी जा सके। यह सोपान ही गलत तरीका न अपनाने के लिये मदद करता है तथा इधर उधर भटकने से भी बचाता है। यह सामग्री सूचना, चेतावनी, संकेत तथा संदेश आदि देती है। न केवल इतना ही बल्कि प्राप्त सामग्री का समरूपता वैधता, विश्वसनीयता एवं व्यावहारिकता के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है।

ऊपर दिए विवेचन के बाद समस्या के समाधान के रूप में कुछ विकल्प प्राप्त होते हैं। कुछ विकल्प सहज, तार्किक एवं अवश्यम्भावी हो सकते हैं पर कुछ विकल्पों को संशोधित कर उनके अनुसार भी कार्य किया जा सकता है। कई बार इन विकल्पों पर उपयोगिता, व्यावहारिकता तथा मूल्य स्तर (Value Orientation) की दृष्टि से भी देखा जाता है। इसी प्रकार शैक्षिक प्रशासक विकल्प का चुनाव करते समय लाभ हानि या सुविधा असुविधा या व्यावहारिकता अव्यावहारिकता का ध्यान रखता है तथा चाहता है कि चयनित विकल्प से सबसे अच्छा और आवश्यक परिणाम प्राप्त हो।

आज केवल विद्यालय प्रधान द्वारा लिया गया निर्णय आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता। ऐसे प्रधानाध्यापकों को तानाशाह कहा जा सकता है जो बिना सहयोगियों से पूछे-ताछे एकाएक निर्णय बता देते है तथा साथी शिक्षकों से काम करवाते हैं, फलतः ऐसे निर्णय को तानाशाही निर्णय ही कहा जाना चाहिए। पर अब व्यक्ति की गरिमा परिवर्तन में विश्वास आदि के साथ साथ प्रजातांत्रिक निर्णय का विचार जोर पकड़ता जा रहा है। यही बात शैक्षिक प्रशासन में भी समान रूप से लागू होती है। अब अधिकांश विद्यालय प्रधान या प्रशासक अपने सहयोगी शिक्षकों की या अधीनस्थ कर्मचारियों की राय लेते है निर्णय प्रक्रिया में उनके स्थान को स्वीकार किया जाने लगा है। इससे स्पष्ट होता है कि आजकल निर्णय किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं लिए जाते वरन् उन निर्णयों में अनेक व्यक्तियों (या विद्यालय के संदर्भ में शिक्षकों) का हाथ रहता है उनका योगदान रहता है। सामान्य प्रशासन में इसको यों कहा जा सकता है कि कोई एक व्यक्ति निर्णय लेने की जोखिम नहीं उठाना चाहता तथा उसके द्वारा लिया गया निर्णय संयुक्त या सहकारी निर्णय का रूप ले लेता है और निर्णय तक पहुँचने की प्रक्रिया में कई व्यक्तियों का सहकार व सहयोग मिलता है यद्यपि लिए गए निर्णय की घोषणा एक व्यक्ति द्वारा ही की जाती है।

औपचारिक रूप से विद्यालय प्रधान निर्णय लेने की शक्ति धारण करता है। विद्यालय प्रधान चाहे या न चाहे उसके निर्णयों का प्रभाव शिक्षकों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से तात्कालिक या दूरगामी अवश्य पड़ता है। इसलिए विद्यालय प्रधान भी शिक्षकों को निर्णय तक पहुँचने की प्रक्रिया में सम्मिलित करना चाहता है उनसे विचार विमर्श करके उनकी राय जानना चाहता है। उदाहरण के लिए समस्या

के निरूपण का जहाँ तक सम्बन्ध है, साथी शिक्षक पर्याप्त योगदान कर सकते हैं। विद्यार्थी विद्यालय म विलम्ब स क्या आते है ? इस समस्या के निवारण के विकल्प पर हर शिक्षक योगदान कर सकता है, सोच सकता है पर साथी शिक्षको द्वारा प्रस्तुत किए विकल्पो का जब चयन करना होता है तो शिक्षको का योगदान सीमित हो जाता है।

विद्यालय प्रधान कितना विवेकशील है ? जितना अधिक वह परिवतन म विश्वास, व्यक्ति की गरिमा का आदर करता है उतना ही अधिक वह निणय लेने मे अपने सहयोगी शिक्षको को भागीदार बना लेता है। इसे एक उदाहरण से सरलता पूवक *इस प्रकार समझाया जा सकता है। प्रधानाध्यापक ने प्रजातान्त्रिक ढग से* निणय लेने के लिए अपन साथी शिक्षको को आमन्त्रित किया है। ऊपर दिया उदाहरण ही फिर देखिए—काय है—अन्त कक्षायी खेलकूद प्रतियोगिता नवम्बर *माह से पूव सम्पन्न करवानी है। अब निणय की स्थितिया देखिए—*

— पहली स्थिति यह हो सकती है कि प्रधानाध्यापक प्रभावी है दवग एव रोबीला है तथा सदव अपन को अधिकारी ही समझता रहा है तो सभी शिक्षक प्रधानाध्यापक के कथन के नीचे अपने हस्ताक्षर मात्र कर देंगे, प्रधानाध्यापक की हाँ म हाँ मिलाकर काम समाप्त कर देंगे निणय ले लेंगे।

— *दूसरी स्थिति मे प्रधानाध्यापक शिक्षकों म से दो चार को आमन्त्रित कर* उनकी राय के अनुसार निणय लेकर विद्यालय के हित मे अपने निणयो की घोषणा कर सकता है।

— तीसरी स्थिति में प्रधानाध्यापक तत्काल ही मौखिक रूप से साथी शिक्षको की राय ले ले, सहमत शिक्षको की सख्या जान ले, गिन ले उनकी प्रतिक्रिया जान ले तथा निणय की घोषणा कर दे।

— चौथी स्थिति यह हो सकती है कि प्रधानाध्यापक सभी शिक्षको से लिखित म राय ले ले प्राप्त राय का विश्लेषण कर ले मतो को गिन ले तथा विद्यालय के हित म अधिकाश शिक्षको द्वारा दी गई राय को प्रस्तुत करके, उनकी राय के अनुसार निणय की घोषणा कर द।

— पाचवी स्थिति यह भी हो सकती है कि प्रधानाध्यापक साथी शिक्षकों से यह भी जान ले कि अमुक काय अमुक समय पर ही क्यो करवाया जाना चाहिए— इसके लिए शिक्षको द्वारा प्राप्त आधारो का विश्लेषण कर शिक्षको म वितरण कर दे तदनन्तर निणय ले।

अब तक निर्णय लेने के स्तरा पर—इन शिक्षकों की राय पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है जो यह राय रखते हैं कि अन्त कक्षायी खेल-कूद प्रतियोगिता नवम्बर से पूर्व सम्पन्न न करवायी जाय या अन्त कक्षायी खेल कूद प्रतियोगिता नवम्बर से पूर्व सम्पन्न करवाना ही नहीं चाहते हों। एक अच्छा प्रजातान्त्रिक निर्णय यह होगा कि जिसमें विरोधियों की आवाज को भी सुनी जाए, उनके तर्कों को समान महत्त्व दिया जाए। यदि लिखित रूप में राय ली गई है तो विरोध करने वाले शिक्षकों के कारण ज्ञात किए जा सकते हैं। ऐसे शिक्षकों को उन आधारों की भी जानकारी दी जा सकती है जिन्होंने पाचवीं स्थिति के अनुसार निर्णय लिया है। अब विद्यालय प्रधान इस स्थिति में होता है कि राय में सहमति वाले तथा असहमति रखने वाले दोनों दलों को आपस में उन्हीं की प्रक्रियाओं से परिचित करवा दे। अब इस स्थिति में प्रधानाध्यापक को निर्णय लेने में कुछ समय का विलम्ब कर देना चाहिए। अर्थात् निर्णय को कुछ समय तक टाल देना चाहिए। इस समय की अवधि में दोनों दल एक दूसरे के विचारों को समझ लेंगे। वैसे तो प्रजातन्त्र में अल्प मत का कोई महत्त्व नहीं है उन्हें भी बहुमत का निर्णय मानना होता है पर यदि उनकी विरोधी राय पर भी विचार किया जा सके तो यह बहुत बड़ा उपलब्धि मानी जाती है। समय बीतने पर प्रधानाध्यापक जब सहयोगी शिक्षकों को निर्णय लेने के लिए दूसरी बार बुलाए तो वे एक नई सूझ-बूझ नये विचार, विशाल दृष्टिकोण तथा सहिष्णुता के साथ मिलेंगे तथा दूसरी बैठक में लिया गया निर्णय अधिक प्रभावी होगा। इस भाँति निर्णय लेने की प्रक्रिया में शिक्षकों को जितना अधिक (संख्या तथा गुणात्मकता दोनों दृष्टियों से) भागीदार बनाया जा सकेगा, निर्णय उतना ही अधिक स्पष्ट, प्रभावी, सुदृढ एवं तर्कसंगत होगा।

प्रजातान्त्रिक विधि से लिया गया निर्णय सार रूप में इस प्रकार दर्शाया जा सकता है

1 उद्देश्यों का निश्चय—मूल्य तन्त्र और उद्देश्य सभी निर्णय लेने के लिए मार्गदर्शन करते हैं।

2 सूचनाओं का संग्रह—उपयुक्त प्रासंगिक और विश्वसनीय सूचनायें संग्रह की जाती हैं उनका उपयुक्त तरीके से प्रस्तुतीकरण होना है और सम्बन्धित व्यक्तियों या विभागों में भिजवा दी जाती हैं। यदि स्थिति के अनुसार किसी विशिष्ट ज्ञान या अधिकारी की राय की आवश्यकता है तो उसे प्राप्त की जाती है।

3 वैकल्पिक तरीकों का प्रस्तुतीकरण।

4 वैकल्पिक हलों का प्रस्तुतीकरण—इस प्रकार के हलों का परम्परागत तरीकों से या आधुनिक तरीकों, मतगणना आदि द्वारा विश्लेषण किया जाता है।

5 सर्वाधिक उपयुक्त वकल्पिक पद का चयन—उत्तरा का विश्लेपण प्रशासनिक वित्तीय और व्यावहारिकता के दृष्टिकोण से पदानुसार किया जाता है। कुछ विकल्पो का एक या अन्य तरीके से आसानी से अकन किया जाता है पर कई बार सयोगवश दो दा विकल्पो को समान स्थान प्राप्त हो जाता है, और ऐसे समय मे निणय लेना दु खदायी हो जाता है। ऐसी स्थिति मे निणय लेने वाले सावेगिक विकास और मूल्य सरचना महत्त्वपूण भूमिका निभाती है। यदि पहले का तरीका न्यूनाधिक रूप से त्रुटिपूण भी हो तो गलत राय इस प्रकार के निणयो म बहुत कम हो जाती है।

6 निणय को यावहारिक रूप देने के लिए प्रशासनिक प्रक्रिया—अतिम निणय प्रशासनिक आदेशो म वदल दिए जाते हैं और उनके अनुसार काय करने के लिए उनकी प्रतिया विभिन्न विभागो को भेज दी जाती हैं। ऐसा करते समय काम मे आ रहे कानून कायदे, दक्षता का स्तर और प्राप्त मानवीय और भौतिक साधनो पर भी ध्यान रखा जाता है।

एक कदम और आगे वढिए। इस निणय लेने की प्रक्रिया म (खल-कूद प्रतियोगिता सवधी) छात्र परिपद को भी भाग लेने का अवसर दे सके तो लाभदायक होगा—क्योकि खेल-कूद प्रतियोगिता म छात्र सक्रिय सभागी होगे तथा प्रतियोगित का आयोजन शिक्षक करेंगे। दोनो को मिलकर काम करना है दोनो पर समान रूप से उत्तरदायित्व है एव खेल कूद प्रतियोगिता विद्यार्थियो के विरुद्ध कोई रहस्य है नही और न ही छात्रों के खिलाफ कोई पडयन्त्र है फिर उनको विद्यालय जीवन म ही नागरिक जीवन के उत्तरदायित्व वहन करने का प्रशिक्षण मिल जाएगा। ऊपर वताई सभी स्थितियो म छात्र परिपद को भी आमन्त्रित किया जा सकता है। छात्र परिपद को कब कब आमन्त्रित करें, यह कार्यों तथा उसके उद्देश्यो पर निभर रहेगा। उदाहरणाथ—परीक्षा के समय वठने की व्यवस्था या विद्यालय सगम की बठक, ऐसे अवसरा पर छात्र परिपद का योगदान नही के वरावर या नगण्य ही रहेगा।

पूण रूप से प्रजातान्त्रिक आधार पर लिए गए निणय से कई लाभ हैं। इसमे सभी शिक्षकों का सतोप प्राप्त होगा उनके 'स्व या अहम की सतुष्टि होगी, वे अनुभव करेंगे कि काय उनके निणय क अनुसार हो रहा है फलत शक्षिक प्रशासक का पूरी तरह स सहयाग देंगे। प्रशासक तो मात्र निणय की घोपणा करने वाला है निणय तो स्वय शिक्षका का है, इस विचार से ही शिक्षका म प्रसन्नता होगी। शिक्षक यह सोचेंगे कि विद्यालय प्रधान के कार्यों म उनका योगदान है अत वे व्यक्तिगत रूप से ध्यान देंगे, उत्तरदायित्व अनुभव करेंगे। ऐसी स्थिति म शिक्षकों के

प्रयत्न भी केंद्रित होंगे। इससे शिक्षकों मे उदासीनता या असतोष भी नही फलेगा और विद्यालय प्रधान के साथ उनके मधुर एव शातिपूर्ण सम्बन्ध भी बने रहेंगे। इन सबसे अधिक कि जब निर्णय सब मिलजुल कर लेते है तो विद्यालय प्रधान को या प्रशासक को मानने मे, निर्णय स्वीकार करने में कोई असुविधा नहीं रहेगी शिक्षक भी निर्णय को अपना सयुक्त निर्णय मानते हुए काय मे पूर्ण रूप से रुचि लेंगे तथा व समझते हैं कि विद्यालय प्रधान उनकी शिकायतो व विरोधा को सुनता है। विद्यालय प्रधान का एक अच्छा निर्णय ही वही है जिसम वह अपने सहयागी शिक्षको को सम्मिलित करता है। ऐसा करने से सचालन के लिए कई प्रब ध सम्ब धी समस्याएँ भी अपने आप समाप्त हो जाती हैं, नियंत्रण की कठोरता कम हो जाती है, अनुशासनात्मक कायवाही को प्रोत्साहन नही मिल पाता। ऐसी स्थिति म प्रधान का पद औपचारिक एव नाममात्र का रह जाता है। यह निर्विवाद रूप स सत्य है कि एक से अधिक मस्तिष्कों द्वारा लिया गया निर्णय तुलनात्मक रूप से अधिक उपयोगी साथक एव प्रभावी होता है क्योंकि प्रत्येक पहलू पर पक्ष विपक्ष के बौद्धिक मथन के साथ विस्तृत विचार विमश करके निर्णय लिया जाता है।

पर प्रश्न यह है कि क्या भारत म इस प्रक्रिया से निर्णय लेने के लिए उपयुक्त वातावरण है ? क्या प्रशासक अपने अधीनस्थ कमचारियो के व्यक्तित्व वा उनके विचारो का आदर करता है ? यहा प्रशासक की स्थिति अन्य प्रकार की है। सभी शिक्षक प्रतीक्षा करते हैं कि विद्यालय निरीक्षक या निदेशक आदेश दे तभी काय सम्पन्न हा। अपने द्वारा लिए जान वाले निर्णय के प्रति शिक्षक स्वय सजग नही है इसका कारण भी स्पष्ट है कि वे अब तक सदव ऊपर की ओर ही देखते रह हैं तथा उनको अपने स्थान का ज्ञान ही नही है। जब तक उच्चाधिकारी या प्रधाना ध्यापक नही बताए या आदेश दे तो शिक्षक काय ही नही करत हैं। इस प्रकार इस क्षेत्र म भी सास्कृतिक प्रभाव स्पष्ट होता है। विद्यालय निरीक्षक या निदेशक आदेश जारी करता है—कोइ शिक्षक या प्रधानाध्यापक विरोध नही करता व्यावहारिकता पर सन्देह नहीं करता, उसकी प्रभावोत्पादकता पर टीका टिप्पणी नही करता—शिक्षक सदियो से इस वातावरण म रहते आए हैं कि ऊपर से प्राप्त निर्देशको के अनुसार काय कर लें उनको पहल करने की शक्ति का कोई उपयाग नहीं किया गया, इसी का फल है कि व किसी ऊपर के अधिकारी द्वारा लिए गए निर्णय पर प्रश्न ही नहीं करते हैं। ऐसी स्थिति का अधिकारी भी पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं। विद्यालयो म क्स काय होगा इसके लिए परिस्थिति एव काय के अनुसार विद्यालय निरीक्षक तथा शिक्षा के निदेशक समय समय पर आदेश जारी किया करते हैं और उसी के अनुसार उनसे काय करवा लेते हैं।

कोई ग्रावश्यक नही कि सभी शिक्षक इसी प्रकार के विचारो के हों—पर यह सोचकर कि विरोध करने से उच्चाधिकारी ग्रप्रसन्न हो जाएँगे वे विरोध मे बोलने की, प्रश्न करने की पहल भी नहीं करत। शिक्षको को विश्वास हो कि प्रश्न करने वाले शिक्षको का कोई ग्रहित नही होगा, तो कई व्यावहारिक बिन्दु शिक्षकों से प्राप्त हो सकते हैं—उनके ग्रनुसार काय किया जाए, शिक्षको को ग्रपने स्थान, प्रतिभा विद्वत्ता से परिचित कराया जाए तो शिक्षको म, सहज ही उनके व्यक्तित्व का ग्रादर करत हुए, सृजनात्मक्ता का विकास किया जा सकता है। इसके लिए शीषस्थ स्थान पर ग्रावश्यकता है शक्षिक प्रशासनाधिकारियो को सोचने विचारने के दृष्टिकोण म परिवतन करने की।

———

11 सम्प्रेषण प्रणाली एव शिक्षा प्रशासन

विद्यालय समाज का लघु रूप है। जिस प्रकार समाज का काय व्यापार आपसी समभौते व सहकार से चलता है उसी प्रकार विद्यालय के सचालन के लिए भी इसी प्रकार के अववोध की निता त आवश्यकता है। वसे विद्यालय समाज का ही लघु रूप होने से उसे उपसमाज की सना भी दी जा सकती है। विद्यालय का सचालन अय सस्थाओं के सचालन से तनिक भिन्न माना जाना चाहिए। कपडे की मिल म मशीनों पर काय होता है, अब ऊन की मिल तथा खाद के कारखाने के लिए भी यही कहा जा सकता है। यद्यपि कमचारी वहा भी होते हैं, पर वहाँ कमचारियों का प्रब ध व्यवस्था से जा सम्ब ध होता है वह सम्ब ध विद्यालय के विद्यार्थियों का प्रब ध यवस्था से नहीं होता है। मिल की उत्पादित वस्तु कपडा या खाद है या ऊन का धागा है जबकि विद्यालय से उत्पन्न एव बाहर निकलने वाली वस्तु विद्यार्थी है। क्या विद्यार्थियो के साथ कपडे या खाद के समान व्यवहार किया जा सकता है? कदापि नहीं। इसके अतिरिक्त भी मिल मे मजदूरो की सख्या बढाकर प्रतिदिन या सप्ताह के अन्त में उत्पादन की मात्रा पर हुआ प्रभाव आका जा सकता है। पर यह स्थिति विद्यालय के साथ नही है। इतना होत हुए भी यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि समाज की एक व्यवस्था है और उसी सीमा के अ दर रह कर ही विद्यालय प्रशासन भी काय करता है। साराश रूप म विद्यालय प्रशासन शिक्षा के पूव निश्चित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए अपनी सीमा म रहत हुए कमचारियो की सृजनात्मक प्रोत्साहन, अध्यवसाय, पहल करने की योग्यता एव सहकार की भावना का उपयोग करते हुए सफलता की ओर अग्रसर होता है।

सगठन के कार्यों को अधिक प्रभावी बनाने के लिए उसे क्षेत्रा मे विभाजित कर लिया जाता है। जब किसी सगठन का क्षेत्रीयकरण किया जाता है तो औप चारिक रूप से यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि सम्प्रेषण का रूप क्या होग [illegible] किसके द्वारा आनाएँ दी जायेंगी? जब किसी सगठन मे वास्तविक व्यवहा [illegible] अध्ययन किया जाता है तो पाते हैं कि यहाँ सम्प्रेषण से सम्बन्धित समस्याएँ बहुत अधिक होती हैं। अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए एक सफल सम्प्रेषण व्यवस्था आवश्यक होती है। सम्प्रेषण द्वारा सम्पन्न कराये जाने वाले काय इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं कि जिससे क्षेत्रीय अध्यक्ष (यहाँ क्षेत्रीय शिक्षा उप निदेशक) अपने अधीनस्थों

को तकनीकी परामर्श देते रहे, क्षेत्रीय अधिकारी पूरे संगठन के सभी कार्यों से परिचित रहे मुख्य कार्यालय के विशेषज्ञ अधिकारी क्षेत्रीय स्तर के विशेषज्ञ अधिकारियों की उपलब्धियों के तथा समस्याओं से परिचित रहे, क्षेत्रीय अधिकारियों के बीच स्थित सम्प्रेषण व्यवस्था से मुख्य कार्यालय परिचित रहे क्षेत्रीय अभिकरण अपनी प्रगति से मुख्य कार्यालय को परिचित कराते रहें। शिक्षा प्रशासन के सन्दर्भ में बात करें तो मुख्य कार्यालय का सर्वोच्च अधिकारी शिक्षा निदेशक होता है क्षेत्रीय अधिकारी उप निदेशक या संयुक्त निदेशक हो सकते हैं जो अपने क्षेत्रों में जिला शिक्षा अधिकारियों द्वारा किए गए कार्यों से निदेशक को परिचित रखते हैं, जिला शिक्षा अधिकारियों को तकनीकी सलाह भी देते हैं।

सम्प्रेषण का महत्त्व प्रशासन में इसलिए बढ़ रहा है कि इसकी मदद से समाचार देने वाला तथा समाचार पाने वाला दोनों उपयुक्त तथा विश्वसनीय प्रणालियों से सूचना पाकर अपने अपने कार्य समझ लेते हैं। इस प्रकार सम्प्रेषण के माध्यम से एक दूसरे सहयोगी कार्यकर्त्ता के साथ ताल-मेल बिठाना तथा सहायता पहुँचाना है। सम्प्रेषण जितना स्वास्थ्यकर और शीघ्रगामी होगा उतना ही वह प्रभावोत्पादक होगा। लोकतन्त्र की सफलता के लिए सम्प्रेषण व्यवस्था उत्तम प्रकार की होनी चाहिए अन्यथा सम्प्रेषण व्यवस्था भंग होने पर भयंकर परिणाम सम्भव हैं। बिना उत्तम सम्प्रेषण व्यवस्था के उच्च व निम्न पदाधिकारी के बीच सम्बन्धों की स्वरूप रचना सम्भव नहीं है। हेमन कहता कि "स्वरूप सम्प्रेषण से बहुत सी भ्रांतियाँ दूर हो जाती हैं दीर्घकालीन योजनायें सम्भव हो जाती हैं तथा विविध प्रकार की क्रियाएँ नियन्त्रित व समन्वित की जा सकती हैं।'

सामान्यतया एक ही विभाग के विभिन्न प्रकार के अधिकारियों में सम्प्रेषण किया जाता है। कि विभिन्न विभागों में अधिकारी अपने समान अधिकारी अधीनस्थ अधिकारी एवं यदा-कदा अपने से अपरिचित अधिकारी या अन्य व्यक्तियों को भी सम्प्रेषण किया करते हैं। अर्थशास्त्री अपने विचार अर्थशास्त्र की पत्रिका के माध्यम से पाठकों के सम्मुख रखता है इसी भाँति समाजशास्त्री तथा शैक्षिक कार्यकर्ता भी सहारा लेता है। सामान्य व्यक्ति अपने परिक्षेत्र से सम्प्रेषण करते देखे जाते हैं।

स्मिथ (1966) के अनुसार विचारों का सही रूप में आदान प्रदान ही सम्प्रेषण है। मान लीजिए एक समाजशास्त्री अपने सहायक को एक पत्र का उत्तर टंकण का आदेश देते हैं, तो यह समाजशास्त्री व सहायक के बीच सम्प्रेषण नहीं है, क्योंकि यहाँ सहायक अपनी ओर से कुछ भी सम्प्रेषण नहीं कर रहा है, वह तो अपने अधिकारी के लिए उत्तर टंकण मात्र कर रहा है, तथा सम्प्रेषण तो दो समाजशास्त्रियों के बीच में हो रहा है। हाँ, सहायक माध्यम की भूमिका पूरी कर कर रहा है जिस प्रकार कि एक डाकिया पत्र बाँट कर करता है। मानवीय सम्प्रेषण

व्यवहार है, वो भेजन वाले तथा पाने वाले की अन्त क्रिया एवं पोषण (फीड बक) पर निर्भर है।

सम्प्रेषण क्या है ?

ग्रेग के अनुसार सम्प्रेषण एक प्रक्रिया है जो निर्देश, समाचार, सूचनायें, विचार, स्पष्टीकरण तथा प्रश्न एक आदमी दूसरे आदमी या एक सगठन दूसरे सगठन को भिजवाता है। इससे दो व्यक्तिया म आपसी सम्बन्ध बढता है जा उनकी अन्त क्रियाओ पर निर्भर है दोना व्यक्ति सामान्य उद्देश्य समझते हैं उन्हें स्वीकार करते हैं, तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते हैं।

साइमन के अनुसार 'औपचारिक रूप से सम्प्रेषण को किसी भी ऐसी प्रक्रिया के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है, जिसके द्वारा लिए गए निर्णयो को सगठन के एक सदस्य से दूसरे सदस्य तक पहुँचाया जाता है।'

हमन के अनुसार 'साधारण रूप से सम्प्रेषण का अर्थ सूचना व ज्ञान को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाने की प्रक्रिया के समस्त प्रबन्धात्मक कार्यों के लिए प्रमुख एव मौलिक सम्प्रेषण विचारो को प्रदान करने तथा अपने आपको दूसरो द्वारा समझने की प्रक्रिया है।'

इस प्रकार सम्प्रेषण का केन्द्र बिन्दु सूचना नही है, वरन् उसको समझना है। जसा कि टीड ने कहा है—'सम्प्रेषण का मुख्य लक्ष्य सामान्य विषयो पर मस्तिष्का को मिलाना है।" इसी सम्बन्ध मे मिलेट न कहा है कि "सम्प्रेषण ऐसे तथ्यो के बारे मे बँटी हुई समझ होती है जो कि स्वय भी बँटे हुए होते हैं।"

लुइस एलन ने सम्प्रेषण की परिभाषा करत हुए कहा है कि 'सम्प्रेषण उन समस्त बाता का सयुक्त स्वरूप है, जो व्यक्ति दूसरो को समझाना चाहता है। यह आशय एव अर्थों का मूल है। यह कहने सुनने तथा समझने की क्रमिक निरन्तर प्रक्रिया है।'

लाटेंस के शब्दो म सम्प्रेषण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति अपनी भावनाओ एव विचारो को दूसरे पर प्रकट करता है। उसके अनुसार सम्प्रेषण का अर्थ सूचना प्रेषित करने मात्र से ही नहीं है वरन सूचना को समझने से भी है।

पीटर डिरका ने सम्प्रेषण को व्यापक रूप म समझा है और उसके अनुसार यह एक दूसरे को समझने की व्यवस्था है। अध्ययनो स पाया गया है कि सगठन के सदस्यो के मनोबल और सम्प्रेषण मे धनात्मक सह सम्बन्ध है। अरनाल्ड तथ अन्य के अनुसार सुसम्प्रेषण या सूचनाओ का मुक्त रूप से आदान प्रदान शिक्षको व विद्यालय के कर्मचारियो के उच्च मनोबल स जुडा हुआ है। सगठन के सदस्यो का मनोबल ऊँचा हो इसके लिए आवश्यक है कि उन्हें योजनाओ, नीतियो, कार्य विधियो तथा मूल्यांकन से परिचित रखना चाहिए।

पद सजगता

कई पद जुड़कर या सगुयन मे बधकर सगठन बनाते हैं। समाजशास्त्री, शिक्षक, सचिव, सहायक तथा शक्षिक प्रशासन इन सबकी पृथक-पृथक भूमिका है। मानवीय एव सामाजिक सम्बन्धो मे एक अधिकारी अपने समान अधिकारी को, सहायक अपना समान सहायक को सम्प्रेषण करते हैं। सम्प्रेषण मे समाचारो का मुक्त प्रवाह होता है। प्रशासनिक ढांचे के रूप मे विद्यालय (या शिक्षा) प्रशासन पद सोपान (हाइरारकीकल) के अनुसार व्यवहृत होता है, जसा कि नीचे की तालिका से स्पष्ट होता है—

सर्वोच्च अधिकारी
निदेशक
↓
समकक्ष अधिकारी — अधीनस्थ अधिकारी — समकक्ष अधिकारी
(उप निदेशक समाज शिक्षा) ←— (सयुक्त / उप निदेशक —→ (उपनिदेशक जोधपुर)
मुख्यालय — जयपुर–उदयपुर)
↓
अधीनस्थ अधिकारी
↓ ↓ ↓
जिला शिक्षा अधिकारी चित्तौडगढ — जिला शिक्षा अधिकारी भीलवाडा — जिला शिक्षा अधिकारी बूंदी
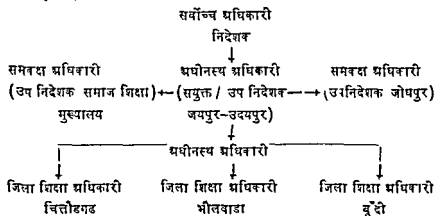
इस भांति इस तालिका का और विकास किया जा सकता है। व्यावहारिक रूप मे इस प्रकार के पद सोपान की व्यवस्था इसलिये आवश्यक है कि अधिकारियो को ज्ञात रहे कि उन्हें किन किन कार्यों को सम्पन्न करना है। उनके क्या-क्या अधिकार हैं तथा उच्च अधिकारी उनसे क्या अपेक्षायें करते हैं तथा उच्च अधिकारियो की आज्ञाओ के अनुकूल अधीनस्थ अधिकारियो को क्या-क्या भूमिकाओ का निवहन करना है ? इस प्रकार से काय का बँटवारा उद्देश्यो की प्राप्ति में मदद करता है तथा विभिन्न अधिकारियो की भूमिकाओं म सामजस्य बिठाने के लिए सुविधाजनक होता है। परिस्थितियो का ध्यान रखते हुए व्यक्ति के अन्त सम्ब धो पर आधारित प्रशासनिक प्रक्रिया का जन्म होता है।

सम्प्रेषण एक प्रणाली है जिसम समाचार देने वाला तथा समाचार पाने वाला काय करता है तथा दिये व पाने वाले समाचारो की उपयोगिता ही उनको नियमित करती है।

सम्प्रेषण विधि के तत्व

प्रशासनिक सम्प्रेषण एक विधि है, जिसम समाचार या विचार दिए जाते हैं तथा उसी रूप म प्राप्त किए जाते हैं ऐसे समाचार प्राप्त करने वाले से प्राप्त की

जाती है कि अन्तत सगठन के उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए समाचार पाने वाले से दिए गए समाचारो के अनुसार काय करने की आशा की जाती है। सम्प्रेषण विधि के पाच तत्त्व ये हैं —

(1) सम्प्रेषण कर्त्ता—हर सम्प्रेषण काय मे एक ऐसा व्यक्ति होता है, जो सूचनाओ को प्रसारित करने का काय करता है। इसे समाचारो के सम्प्रेषण का जनक कहा जा सकता है। जहा तक शिक्षा विभाग का प्रश्न है यहा सम्प्रेषक शिक्षा निदेशक होता है बिना पहल के सगठन एक कदम भी आगे नही बढ सकता।

(2) प्रक्रिया—सम्प्रेषण का समय व ढग पूव निश्चित होते हैं सगठन के सदस्यो म सम्प्रेषण के सम्बन्ध म कुछ निश्चित नियमो द्वारा यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि कौन किसको और कब आना आदेश या अनुदेश प्रदान करेगा तथा उसका क्या स्वरूप होगा ?

(3) रूप—तीसरा तत्त्व है—सम्प्रेषण किस रूप मे दिया जाए, लिखित या अलिखित ? इसी भाति प्रतिवेदन आना, प्राथना या सुभाव के रूप म प्रस्तुत किया जा सकता है। सम्प्रेषण का रूप जो भी हो स्पष्ट होना चाहिए। सम्प्रेषण का रूप अस्पष्ट होने पर लक्ष्य की प्राप्ति नही हो सकती।

(4) प्रभाव—सम्प्रेषण का अथ केवल इतना ही नही है कि कोई बात अथवा निर्देश अथवा प्रतिवेदन किसी सगठन के कमचारियो तक पहुँच जाए बल्कि सम्प्रेषण का वास्तविक लक्ष्य यह है कि सम्प्रेषण अधिक से अधिक लोगो को प्रभावित करे। इस सबध म साइमन तथा अन्य विद्वानो का कथन है कि "सम्प्रेषण जब प्राप्त करने वालो की डेस्क पर पहुँच जाता है तो उसे सम्प्रेषण नही मान लेना चाहिए किन्तु ऐसा तभी माना जाता है कि जब वह उनके मस्तिष्क म पहुँच जाए। इसलिए विद्वानो का मत है कि सम्प्रेषण प्राप्त करने वाले व्यक्तियो की कम से कम तथा अधिक से अधिक सख्या निश्चित कर देना चाहिए।

(5) लक्ष्य की दिशा—सम्प्रेषण का एक मुख्य तत्त्व इस आधार पर भी निश्चित किया जाता है कि वह अपने लक्ष्य की दिशा म कितना अग्रसर हुआ है। वास्तव म सम्प्रेषण व्यवस्था को एक ऐसा रूप प्रदान करना चाहिए कि वह सगठन म वाछित लक्ष्य की प्राप्ति कर सके।

सम्प्रेषण प्रणाली इस भाँति समाचार या साकेतिक समाचार देने वाला तथा पाने वाले के बीच आदान प्रदान का एक माध्यम है। अन्य शब्दो मे इसे व्यक्ति तथा उसकी भूमिका अधिकारी के काम तथा उससे अपेक्षाओं के बीच जोडने वाली कडी है।

सम्प्रेषण ही वह माध्यम है जिससे वह अपने मन के भावों का साथी, सहयोगी को प्रस्तुत करता है सक्षेप म विभिन्न व्यक्तियो या जोडने के साधन हैं तथा

इसीलिए वे (समाचार पाने वाला तथा देने वाला दोनों) संगठन के व्यक्तित्व से जुड़े रहते हैं।

शिक्षा के संदर्भ में जब सम्प्रेषण पर विचार करते हैं तो यह सामाजिक विचार बन जाता है, और जो सामाजिक अन्त सम्बन्धों का आधार है। सम्प्रेषण के प्रयत्न को स्पष्ट रूप से समझने के लिए निम्न बातों का ज्ञान आवश्यक है —

1 वह स्थिति जिसमें कार्य करना है ?
2 कार्य कौन करेगा ?
3 क्या करना है ?
4 कहने का उद्देश्य क्या है ? या किस उद्देश्य से कहा जा रहा है ?
5 किस प्रणाली से कहा जा रहा है ?
6 अन्तत किसे कहा जा रहा है ?
7 (अ) अन्तत समाचार पाने वाला कौन है ?
8 (आ) समाचार किस माध्यम से भेजा जा रहा है ?

सम्प्रेषण के प्रकार—सम्प्रेक्षण के प्रकारों को मुख्यत चार आधारों पर बाँटा जाता है।

(1) ऊपर की ओर (या उध्वगामी) नीचे की ओर या (अधोगामी) समपद सोपान या पद सोपान के अनुसार तीन भाग।
(2) औपचारिक एवं अनौपचारिक।
(3) आन्तरिक और बाह्य, तथा
(4) लिखित एवं अलिखित।

उध्वगामी सम्प्रेषण—शिक्षकों द्वारा विद्यालय प्रधान या जिला शिक्षा अधिकारी या निदेशक, शिक्षा विभाग को प्रस्तुत विचार उध्वगामी सम्प्रेषण कहलाता है। इस प्रकार के सम्प्रेषण से—

(1) प्रशासक क्षेत्रीय अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्यों व गतिविधियों से परिचित रहते हैं।
(2) शिक्षकों को संतोष होता है कि उनकी बात अधिकारियों तक पहुँचती है।
(3) प्रशासक अनुमान लगा सकने की स्थिति में होता है कि उनके विचार कहाँ तक अधीनस्थ कर्मचारियों को स्वीकार्य हैं तथा—
(4) प्रशासक स्थिति को समझते हुए ऐसा कोई निर्णय लेने से बच सकते हैं जिससे अधीनस्थ कर्मचारी अप्रसन्न हों।

दुर्भाग्य से इस महत्वपूर्ण प्रणाली को बहुत कम काम म लिया जाता है। सम्प्रेषण के मार्ग मे कई बाधाएँ आ जाती हैं। शिक्षकों को मुक्त रूप से अपनी राय प्रकट करने का अवसर नही दिया जाता यदि कही वे करते भी हैं तो विद्यालय प्रधान द्वारा रोडा लगा दिया जाता है। कई बार जिला शिक्षा अधिकारी बाधा डाल देते हैं जिससे भी शिक्षकों की बात निदेशक तक नही पहुँच पाती। उर्ध्वगामी सम्प्रेक्षण प्रणाली काय करे इसके लिए आवश्यक है कि साथी कायकर्ताओ की राय को महत्त्व दिया जाय। यदि शिक्षक को यह ज्ञात हो सके कि उसे कठिनाई हो सकती है, दण्ड दिया जा सकता है, दुगम स्थान पर स्थानान्तरण किया जा सकता है तो वह अपनी राय प्रकट करना नही चाहेगा। सम्प्रेषण की सफलता के लिए आवश्यक है कि दूसरो के दृष्टिकोण को सही रूप मे समझा जाए, ऐसा न करने पर सगठन को हानि की सम्भावना रहती है। इस प्रकार का सम्प्रेषण प्रतिवेदना, प्रार्थनाओ तथा सुझावो के रूप म किया जा सकता है।

समपद सोपानवत सम्प्रेषण

इस प्रकार का सम्प्रेषण समान पदाधिकारियो के बीच में किया जाता है। सम्प्रेषण के माध्यम से सूचनाओं को स्टाफ सदस्यो को दी जाती है। उपयोगी विचार भिन्न भिन्न सदस्यो को पहुँचाए जाते हैं। इस स्थिति मे उच्च या अधीनस्थ कर्मचारियो का प्रश्न नहीं उठता है। एक ही विषय को पढाने वाले विभिन्न कक्षाओ के सभी अध्यापक या एक ही कक्षा के विभिन्न वर्गों को एक विषय पढाने वाले सभी अध्यापक सूचनाए सहज ही बाँट सकते हैं। इस प्रकार कमचारी अध्यापको को अपने साथी अध्यापको की गतिविधियो एव काय प्रणालियो से परिचित रखा जाता है।

अधोगामी सम्प्रेषण

इस प्रकार का सम्प्रेषण उच्चाधिकारियो (शिक्षा निदेशक) की ओर स अधीनस्थ कमचारियो (यथा उप निदेशक, जिला शिक्षा अधिकारी आदि) की ओर भिजवाया जाता है। किसी भी सगठन म सूचनाओ, विचारो, सुझावो तथा आदेशो का प्रसारण उच्च अधिकारी स निम्न अधिकारी की ओर दिया जाता ह। भारतीय विद्यालयों मे प्राय उच्च अधिकारी ही अपने निकटस्थ निम्न अधिकारी को सूचनायें देते रहते हैं। ऐसी सूचनायें प्राय पदक्रम से होती हुई गुजरती हैं। सम्प्रेषण के इस तरीके का अपना महत्व है पर यही सब कुछ नही है। स्थिति के अनुसार जहाँ जो तरीका उपयोगी पाया जाय, उसी से काम लिया जाय।

औपचारिक अनौपचारिक सम्प्रेषण

दूसरे तरीके के अनुसार सम्प्रेषण को औपचारिक तथा अनौपचारिक के आधार पर भी बाँटा जा सकता है। अनौपचारिक सम्प्रेषण का सम्बन्ध सम्प्रेषण

की स्थिति पर आधारित है । यदि उच्चतर अधिकारी किसी अपने निम्नतर अधिकारी को आदेश देता है तो इसे औपचारिक प्रकार का आदेश या सम्प्रेषण कहते हैं । अनौपचारिक सम्प्रेषण इन सब बातों से युक्त रहता है । सकेत चुप रहकर तथा चेहरे पर भावावश या आक्रोश लाकर अनौपचारिक ढग का सम्प्रेषण दिया जाता है । यदि कोई चपरासी काय पूर्ण होने पर अपने प्रधानाध्यापक के पास स्कूल से जाने की स्वीकृति लेने पहुँचता है और प्रधानाध्यापक चुप रहता है, तो यह मूक सकेत द्वारा स्वीकृति का सम्प्रेषण हुआ । शक्षिक प्रशासन के क्षेत्र का एक उदाहरण और प्रस्तुत है ।

औपचारिक सम्प्रेषण मे किसी निश्चित उद्देश्य के अनुसार ही प्रधानाध्यापक शिक्षकों को बुलाकर समाचार देता है तथा समाचार के ठीक बाद शिक्षक बिखर जाते हैं । इस प्रकार क सम्प्रेषण म समय का ध्यान रखते हुए प्रधानाध्यापक सभी या सबधित शिक्षकों को एक निश्चित समय पर बुलाकर विचार विमश करत हैं, पर अनौपचारिक सम्प्रेषण मे ऐसी कोई व्यवस्था नही होती है तथा प्रधानाध्यापक देखकर विचार या सूचनायें एव समाचार सम्प्रेषण कर देते हैं । मध्यावकाश म चाय पीने के साथ-साथ खेलकूद प्रतियोगिता की तिथियों पर विचार विमश के बाद निश्चित कर लेना इसी प्रकार का उदाहरण है ।

सम्प्रेषण का तीसरा प्रकार है आन्तरिक तथा वाह्य । प्रथम का सम्बन्ध सगठन तथा उसके कमचारियो से है । यह उच्च पदाधिकारियो की ओर से निम्न पदाधिकारियो को आदेश, आज्ञा तथा निर्देश के रूप म दिया जाता है । निदेशक शिक्षा विभाग के आदेश इसी श्रेणी म आते हैं । वाह्य सम्प्रेषण का सम्बन्ध सगठन तथा जनता क सम्बन्धो स है । इनका स्वरूप जनसम्पक का होता है । जन साधारण से भवन निर्माण हेतु निदेशक शिक्षा विभाग की अपील इसी श्रेणी मे आती है ।

मौखिक या लिखित

यह सम्प्रेषण का चौथा प्रकार है । लिखित सूचनायें भिजवाना, व्यक्तिगत पत्र भिजवाना, स्मरण पत्र जारी करना, विद्यालय मे अवकाश गोष्ठी की सूचना जारी करना, इसी प्रकार का सम्प्रेषण है । हाव भाव वयक्तिक भेंट के समय ऐसे हाव भाव बडे प्रभावी होते हैं । किसी शिक्षक के विद्यालय मे देर से आने पर दीवाल पर लगी घडी को या अपन हाथ पर बँधी घडी को देखना, इसी प्रकार शिक्षक के देर से आने पर उसकी कक्षा मे चले जाना तथा उसके जात ही घडी देखकर कक्षा छाड दना । गोष्ठी या व्यक्तिगत बातचीत भी इसी श्रेणी मे आती है । विलम्ब से आने वाले शिक्षक को बुलाना तथा बातचीत करना इसी प्रकार की प्रणाली है ।

पहले में बात मौखिक रूप स कही जाती है तथा लिखित म कुछ नहीं । प्रवचन, साक्षात्कार, मन्त्रणा, टेलीफोन द्वारा बातें आदि । इस प्रकार के

सम्प्रेषण म धन तथा समय दोना की बचत होती है। यह अधिक प्रभावी होता है, समझने म कठिनाई नहीं होती, सम्प्रेषण के प्रभाव का मापना सरल होता है। सकटकालीन स्थितियो मे इसी एक मात्र प्रकार का सम्प्रेषण सुलभ होता है। लिखित सम्प्रेषण का अपना महत्त्व होता है। नोटिस, समाचार-पत्र प्रतिवेदन, मेनुअल पुस्तक पत्रिका पोस्टर आदि लिखित सम्प्रेषण की श्रेणी मे आते हैं। लिखित सम्प्रेषण स्थायी महत्त्व का होता है बडे सगठनो के लिए उपयोगी होता है। किन्तु इसके कुछ दोष भी है—

(1) अधिक महँगा रहता है (2) काम मे विलम्ब होता है, निर्णय लेने म देर होती है। (3) नौकरशाही को प्रोत्साहन मिलता है, (4) हर समय हर बात को लिखित रूप म लाना कठिन होता है।

माध्यम

(1) श्रव्य साधन सम्प्रेषण, गोष्ठी साक्षात्कार, टेलीफोन, लिखित प्रसारण आदि।

(2) दृश्य-साधन विज्ञप्ति मेनुअल, प्रतिवेदन, बुलेटिन, पुस्तकें, चित्र सम्मेलन पद्धति इसका प्रयोग दिन प्रति दिन निरन्तर बढता ही जा रहा है। इसके कई लाभ हैं—

(1) समस्याओं के प्रति जागरूकता में वृद्धि
(2) समस्या हल करने म सहयोग
(3) निर्णयो को लागू करना तथा स्वीकृति प्राप्त करना
(4) कर्मचारियो मे विचार विनिमय को प्रोत्साहन देना।

सम्प्रेषण विधियाँ

एकपक्षीय—इसम पोषक (फीड बक) को कोई स्थान नही होता है।
द्विपक्षीय—इसम पोषक (फीड बक) को प्रोत्साहन दिया जाता है।

(1) जब सम्प्रेषण द्रुतगति से किया जाना हो।

(2) जहाँ किसी घटना के घटने की सम्भावना हो या वस्तुएँ तरतीब वार ठीक स्थान पर रह व्यवस्था हो।

(3) साथियो का ध्यान जब अपनी गलतियो पर न दिलाया जाता हो

(4) जब अपने स्थान व शक्तियो की सुरक्षा करनी हो।

(5) तुलनात्मक रूप से यह शीघ्र कार्यशील होती है।

द्विपक्षीय विधि के गुण

(1) यह अधिक शुद्ध, स्पष्ट व यथार्थ होता है।

(2) इसम समाचार प्राप्तकर्त्ता को ज्ञात रहता है कि कब, क्या काम, कैसे करना है ? उसे सही निर्णय लेने के अधिक अवसर मिलते हैं, उसे गलत व सही का भी ज्ञान रहता है।

(3) मनोवैज्ञानिक रूप से इसम सन्देश देने वाला अपने को भिन्न अनुभव कर सकता है।

(4) इस विधि म शोरगुल हो सकता है।

(5) पोषक (फीड-बक) को शीघ्र मुँह खोलन का अवसर मिल जाता है।

(6) दोनो के अन्त सम्बन्धो की मात्रा अधिक रहती है, अत आदान प्रदान मे वृद्धि की सम्भावना रहती है। इसे चित्रो से इस प्रकार समझा या जाना जा सकता है।
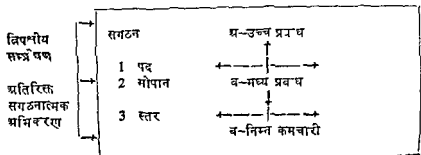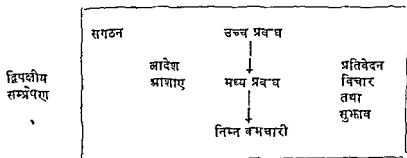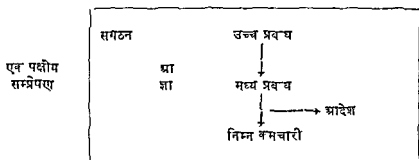
इस प्रकार के सम्प्रेषण मे निम्न बातें होती हैं—

(1) समाचारो का भेजना (2) अन्तर्विभागीय सम्प्रेषण (3) प्रतिवेदन, सुझाव तथा विचारो को भेजना (4) अतिरिक्त अभिकरणो द्वारा निम्न कर्मचारियो तक सूचनाओं का प्रेषण।

सम्प्रेषण पदो की शृंखला सम्प्रेषण का अत्यावश्यक अंग है—

(1) सम्प्रेषण की भौतिक क्रिया (2) अवबोध का विकास (3) स्वीकृति प्राप्त करना (4) प्रेरणा।

सम्प्रेषण के नियम

(1) चाहे गए कार्य को लाभदायक रूप मे सम्पन्न करने के लिए अपने विचारो व समाचारो का प्रभावी रूप मे सम्प्रेषण।

(2) सम्प्रेषण कार्य बातचीत या विधि के माध्यम से होता है। सम्प्रेषण की कला सुनने मे निहित है, जो अन्तत अवबोध को प्रभावित करती है। इससे भी एक कदम आगे बढा जा सकता है। कई बार बिना सुने भी एक व्यक्ति अपने सम्प्रेषक को समझ सकता है।

(3) प्रभावी सम्प्रेषण दो प्रकार के विश्वासो पर निर्भर करता करता है— (अ) उन व्यक्तियो मे विश्वास जिनको मार्गदर्शन या निर्देशन देना है। (आ) अपने द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले विचारों मे विश्वास।

सम्प्रेषण के परिणाम

किसी भी सम्प्रेषण का प्रभाव मुख्यत पूर्व से बनाये गए दृष्टिकोणों तथा भावनाओ, जो देने वाला तथा प्राप्तकर्ता एक दूसरे के प्रति रखते हैं पर निर्भर करता है। इसी भांति वह दोनो की पूर्व निश्चित अपेक्षाओ तथा प्रेरणाओ पर भी काफी अंशो मे निर्भर करता है।

सम्प्रेषण की प्रभावशीलता

सम्प्रेषण की प्रभावशीलता मालूम करने के लिए दो बातों का ज्ञान आवश्यक है। (1) गति तथा (2) स्पष्टता जिससे कार्य को किया जाता है। इसके साथ ही सम्प्रेषण मे सम्भागी व्यक्तियो के सन्तोष की मात्रा भी देखी जानी चाहिए, जिसकी कि वे किसी कार्य से आशा करते हैं। शीर्षस्थ व्यक्ति से निम्नस्थ व अधीनस्थ व्यक्ति के बीच जितनी कम कडियाँ होगी सम्प्रेषण उतना ही अधिक प्रभावशाली होगा। एक तरफ जाने वाली कम कडियाँ होना सम्प्रेषण को अधिक प्रभावशाली बनाता है। पर दूसरी ओर कार्यकुशलता व सन्तोष की मात्रा को कम करता है। कडियो का कम होना केन्द्रीयकरण या अधिनायक या तानाशाही की ओर अग्रसर होता है।

नही आता। ऐसी दशा म सम्प्रेपण प्राप्तकर्त्ता उच्चाधिकारिया का म तव्य ठीक ठीक नही समझ पाता।

6 सद्धा तक बाधाएँ

कमचारियो मे सद्धा तिक विरोधो का होना अस्वाभाविक नही है। सगठनों मे यह एक बहुत बडी रुकावट है जो गलत फहमी को उत्तेजित करती है और गलत तरीके से प्रचार *किया जाता है फलत मतक्य उत्पन्न नहीं हो पाता।*

7 अनिच्छा का भाव

यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब उच्च पदाधिकारी अपने अधीनस्थ कमचारियो की बात सुनना पस द नही करता उनके सुझावा को हीन समझकर रद्दी की टोकरी मे डाल देता है। इससे निम्न कमचारी अपने आप म हीन भावना तथा कुण्ठा अनुभव करने लगते हैं और प्रशासन मे अविश्वास भी उत्पन्न होने लगता है। ऐसे पराधिकारी चाटुकारिता को प्रोत्साहन देते देखे जाते हैं।

8 विकृत उद्देश्य

कभी-कभी योजना का वास्तविक उद्देश्य प्रकट होने वाले उद्देश्य से भिन्न होता है। यदि स्थान-स्थान पर विद्यालय खोलकर साक्षरता की वृद्धि करना उद्देश्य न हो कर सम्ब धित क्षेत्र के विधायको को सुरक्षित रखना है तो विद्यालय खोलन का वास्तविक उद्देश्य ही असफल हो जायेगा।

9 विभिन्न स्तर

सम्प्रेपण के माग म एक अ य बाधा पद सोपान सिद्धा त के अनुसार विभि न स्तरो का भी है। अधीनस्थ कमचारियो अर्थात पचायत समितियो मे कायरत शिक्षा प्रसार अधिकारी तथा निदेशक शिक्षा विभाग के बीच सम्प्रेपण की व्यवस्था अनेक स्तरो पर की जाती है। इन विभि न स्तरो पर सम्प्रेपण की व्यवस्था के अनेक अथ लगाये जा सकते हैं फलत भ्रम उत्प न हो जाता है। कई बार कमचारी अपने अधिकारी को खुश करने के लिए जानकर भी नया अथ लगा लेते हैं। इस सम्ब ध म साइमन तथा अ य लेखको का कहना निश्चय ही सत्य है कि अनेक कारणो से खुश करने वाली बातें ऊपर की ओर भेज दी जाती है तथा गलतियो स सम्बन्धित सूचनाओ को रोक दिया जाता है।

10 स्थान की दूरी

सम्प्रेपण के माग म सबसे बडी कठिनाई स्थानो की दूरी है। यद्यपि पत्र, *तार टेलिफोन द्वारा सम्प्रेपण किया जाता है,* किन्तु फिर भी कुछ एसी भौगोलिक दूरी है वहाँ पर सम्प्रेपण के साधन पयाप्त नहीं हैं।

11 सम्प्रेपण सामग्री को घटा-बढ़ा कर बताना

सम्प्रेपण की सामग्री को घटाने का काय तीन कारणो से होता है। (1) भाषा की प्रभावोत्पादकता (2) प्रयुक्त भाषा का प्रकार (3) समाचार देने वाले तथा

प्राप्त करने वाले के बीच असगतता की मात्रा। कई बार घटनाओ या तथ्यो या समाचारो को जानते हुए रग देकर भेजने वाले के विचारो से तालमेल खाती हुई बनाकर प्रस्तुत की जाती है। यह जानकारी रुचिप्रद है कि प्राय अधीनस्थ कर्मचारियो द्वारा दिये जाने वाले सम्प्रेषण मे रग दिया जाता है क्योकि इस दिशा के प्रवाह पर लिपिका का नियन्त्रण रहता है।

सम्प्रेषण की धाराओं को हल करने के साधन

1 विश्वास की समस्या या अविश्वास—सम्प्रेषण मित्रता के साथ चलता है। जब एक दूसरे का विश्वास किया जा रहा है तभी सम्प्रेषणीय सामग्री अधिक स्वतन्त्रता से, सहज गति से प्रेषण की जा रही है। इसी भांति समाचार पाने वाला भी भेजने वाले की सामग्री को सही व स्पष्ट रूप से प्राप्त करता है।

2 कर्मचारियों मे अन्त निर्भरता के विकास की समस्या—सगठन के उद्देश्यो की प्राप्ति के साधनो की एकरूपता पर सहमत होना आधी सफलता है। जब कर्मचारियों के उद्देश्य भिन्न भिन्न हों तथा उनकी मूल सरचना भी भिन्न हो तब आवश्यकताओ व तरीकों के सम्बन्ध मे आपसी समझ या अवबोध और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इसलिए महत्वपूर्ण यह है कि स्टाफ सदस्यो म आपसी सम्बन्ध एव अवबोध का विकास किया जाय, जिससे गलत समझने या सन्देह उत्पन्न होने के अवसर न्यूनातिन्यून हो जायें। इसके लिए गोष्ठी उपनिषद दल चर्चा, परिषद या समिति की बैठक बुलाकर विचार विमर्श किया जा सकता है। समाचार प्रेषक के लिए साहित्य या बुलेटिन का भी सहारा लिया जा सकता है।

3 पुरस्कार वितरण की उपयुक्त व्यवस्था की सम्भावना—यह व्यवस्था ऐसी हो कि कर्मचारियो की आवश्यकताए पूरी की जा सकें उनकी आशाओ तथा सम्भावनाओ म न्यूनातिन्यून अन्तर हो। यदि ऐसा हुआ तो कर्मचारी सगठन के सामान्य उद्देश्यो की प्राप्ति की ओर अधिक प्रेरित होकर काम कर सकेंगे।

4 सामान्य सहमति तथा अवबोध की समस्या—एक सगठन म सामान्य सहमति एव अवबोध से सम्प्रेषण के प्रवाह को मूल रूप से शुद्ध व स्पष्ट तरीके से गति मिल जाती है। पर यदि काय स्थान अधिकार व प्रतिष्ठा के आधार पर आग बढे तो काय की गति म अवरोध आ सकता है।

5 सम्प्रेषण व सामग्री को घटा बढाकर बताना भी प्रशासन के दो मुख्य शत्रु हैं, हर सम्भव प्रयत्न करके इससे बचना चाहिए।

6 स्पष्टता की समस्या—सम्प्रेषण में भाषा स्पष्ट होनी चाहिए जिसे सरलता से समझा जा सके। जिन शब्दो का सम्प्रेषण म प्रयोग किया जाए वे इतने सरल व स्पष्ट हो कि उनका वही अथ सम्प्रेषण प्राप्तकर्ता समझे जो सम्प्रेषण भेजने वाला समझ रहा है। इस प्रकार का एक उदाहरण दखिए। भारत म

डिजर्टेशन शब्द का अर्थ स्नातकोत्तर स्तर का लघुशोध कार्य तथा थीसिस का अर्थ शोध उपाधि के लिए लिया गया है। जबकि पाश्चात्य देशों में इसका उलटा समझने का रिवाज है। सम्प्रेषण की स्वस्थता बहुत सीमा तक भाषा की स्पष्टता तथा बोधगम्यता पर निर्भर करती है। सम्प्रेषक को उलझे हुए तथा विविध अर्थों वाले शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अच्छा होगा यदि वह स्वीकृत तकनीकी शब्दावली का ही प्रयोग करे।

7 **पूर्णता की समस्या**—सम्प्रेषण में उन सभी बातों का होना आवश्यक है जिससे वांछित लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके। इस सम्प्रेषण में पूर्णता का होना सम्प्रेषण की सफलता का द्योतक है। सम्प्रेषण में वांछित सामग्री का स्पष्ट रूप होना आवश्यक है। महत्त्वपूर्ण आदेशों व निर्देशों पर यदि सम्प्रेषण का तरीका लिखित है तो रेखांकित कर देना चाहिए। अपर्याप्त सम्प्रेषण हानिकारक सिद्ध हो सकता है। सम्प्रेषण की जाने वाली सामग्री बड़े ही विवेकपूर्ण ढंग से तैयार की जानी चाहिए। सम्प्रेषण भारी व जटिल नहीं होना चाहिए। टुकड़ों में दिए जाने वाला सम्प्रेषण जटिलता उत्पन्न कर सकता है।

8 **एकरूपता की समस्या**—जब तक किसी भी संस्थान के कर्मचारियों की भूमिकाएँ एवं संरचनाएँ नहीं समझी जाती, वहाँ के कर्मचारियों के कार्यों व उनसे अपेक्षाओं का स्पष्ट ब्यौरा न हो तो सम्प्रेषण प्रणाली कार्य नहीं कर सकती। किसी स्थान में कोई कर्मचारी अपने साथी को मनोवैज्ञानिक के पद पर पाता है तो उससे मनोवैज्ञानिक के रूप में व्यवहार की आशा करता है। यदि अन्य कर्मचारी उसे मनोवैज्ञानिक के पद पर होते हुए भी मनोवैज्ञानिक के रूप में नहीं पाता है तो दोनों की अपेक्षाओं में अन्तर आ जाएगा। दोनों व्यक्ति उसे अपने अपने दृष्टिकोण तथा पसन्द के अनुसार देखते हैं। कई बार एक व्यक्ति को दो रूपों में भी देखा जा सकता है। जैसे सहायक तथा शैक्षिक प्रशासक या सचिव तथा समाजशास्त्री। पर ऐसे सम्मिलित व्यक्तित्व वाले बिरले ही मिलते हैं। सम्प्रेषण में यह आवश्यक है कि उच्चाधिकारियों व अधीनस्थ कर्मचारियों के विचारों में एकरूपता रहे। शिक्षा निदेशक की आशाओं तथा जिला शिक्षा अधिकारियों के कार्यों में तालमेल होना चाहिये, यदि शिक्षा निदेशक की आशाओं के उसी रूप में जैसा निदेशक समझ रहा है जिला शिक्षा अधिकारी समझ रहा है तो अधीनस्थ कर्मचारी वर्ग अपने कार्यों में रुचि लेगा। संक्षेप में उच्चाधिकारी तथा अधीनस्थ कर्मचारी की आशाओं आकांक्षाओं में अन्तर नहीं होना चाहिए।

9 **सम्प्रेषण की प्रकृति अवरोधी हो**—स्वयं सूचनाओं में विरोध हानिकारक है। परिचित नीतियों, कार्यक्रमों तथा उद्देश्यों का तनिक भी विरोध नहीं होना चाहिए। निर्धारित नीतियों का विरोध हानिकारक है। जिन अपवादों का बार बार

प्रयोग करना पड़े उन्हें नीतियों का अंग बना लेना चाहिए, जिससे विरोध की स्थिति समाप्त हो जाय।

10 उचित समय—सम्प्रेषण की सफल व्यवस्था के लिए यह भी जरूरी है कि उच्चाधिकारियों द्वारा जो भी समाचार भेजे जाएँ वे ठीक समय पर भेजे जाएँ ताकि अधीनस्थ कर्मचारी वर्ग उनके अनुकूल समय पर कार्य कर सके या उत्तर दे सकें, अन्यथा समय के उपरान्त भेजे जाने वाले या समय से बहुत पूर्व भेजे जाने वाले समाचार महत्त्वहीन हो जाते हैं। उदाहरण के लिए शिक्षा निदेशक विद्यालय के समय में वृद्धि किए गए एक घंटे के समय के लिए अधीनस्थ कर्मचारियों की राय एक प्रश्नावली पर जानना चाहते हैं। तो निदेशक उस प्रश्नावली को इस प्रकार भेजे कि विद्यालय प्रधानों के पास वह शनिवार की संध्या तक पहुँच जाए। इससे विद्यालय प्रधान उसे फुरसत के समय में रविवार को पूर्ति कर लौटा दें। यदि सोमवार को प्रश्नावली विद्यालय में पहुँची तो समय पर काम हो सकेगा, इसमें सन्देह हो सकता है। कारण कि प्रधानाध्यापक को सोच विचार कर उपयुक्त उत्तर देने के लिए रविवार को ही समय मिलता है। इस प्रकार परिस्थिति, समय, मन स्थिति तथा सम्प्रेषण के तकनीकी स्वरूपों का भी ध्यान रखना चाहिए।

11 वातावरण की समस्या—जब उच्चाधिकारी किसी अधीनस्थ कर्मचारी के पास समाचार भेजना है, तो उसको समाचार पाने वाले की स्थिति का भी ध्यान रखना चाहिए। यदि प्राप्तकर्ता को कोई उलझन नहीं है तो समाचार पाते ही समाचार के अनुकूल काम करेगा। इसके विपरीत यदि प्राप्तकर्ता किन्हीं अन्य उलझनों में फँसा है तो वह तत्काल कार्यवाही नहीं कर सकेगा। फलत उच्चाधिकारी तथा अधीनस्थ कर्मचारी में, मनमुटाव हो सकता है। पहले वाला ही उदाहरण यहाँ फिर देखिए। विद्यालय प्रधान को प्रश्नावली पर उत्तर भेजने हैं, पर यदि किन्हीं कारणों से विद्यालय में हड़ताल चल रही है तो स्पष्ट है कि प्रधानाध्यापक पहले हड़ताल समाप्त करवाने की कोशिश करेगा, निदेशक शिक्षा विभाग द्वारा भेजी प्रश्नावली पर उत्तर देना उसके लिए वर्तमान स्थिति में गौण रहेगा। दोनों में मनमुटाव न बढ़े इसके लिए आवश्यक है कि उच्चाधिकारी समाचार प्राप्तकर्त्ता को भलीभांति समझ लें। निदेशक को पहले ही अनुमान लगा लेना चाहिए कि प्रधानाध्यापक प्रश्नावली पाते ही अनुकूल कार्य करेगा या नहीं।

12 समाचार प्राप्त करने की रुचि—सम्प्रेषण की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि समाचार देने से पूर्व समाचार प्राप्तकर्त्ता की राय एवं उसके विचारों का भी ध्यान रखा जाए। यदि प्राप्तकर्त्ता यह समझता है कि प्राप्त समाचार उसकी राय या विचारधारा के अनुकूल है तो वह समाचार का पालन करने, उसके अनुसार कार्य करने में उच्चाधिकारी को पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा। अच्छा व स्वस्थ सम्प्रेषण

उसे कहा जायेगा जिससे अधीनस्थ व्यक्तियों का मनोबल ऊँचा उठे। यदि वरिष्ठ व्यक्ति विवेक युक्त तथा अच्छा श्रोता हो तभी उर्ध्वगामी सम्प्रेषण सफल हो सकता है।

13 प्रभावशीलता—सम्प्रेषण की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि समाचार देने वाला व्यक्ति प्रभावी हो। जो भी समाचार दिया जाए उसका पालन समाचार देने वाला भी करे। ऐसा होने पर ही अधीनस्थ कर्मचारियों पर अधिक मात्रा में अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।

14 मापदण्ड—सम्प्रेषण की सफलता का एक साधन यह भी है कि समय समय पर इस बात का पता लगाया जाए कि अधीनस्थ कर्मचारियों पर सम्प्रेषण का कितना प्रभाव पड़ा है या अधीनस्थ कर्मचारी सम्प्रेषण को किस सीमा तक समझते हैं। ऐसे मानदण्ड का विकास किया जाय जिससे पता लग सके कि सम्प्रेषण सामग्री का समझा भी गया है या नहीं।

15 मानवी सम्बन्धों में परिवर्तन के बोध का अभाव—कर्मचारी तथा संगठन को केवल अन्त सम्बन्धित के रूप में ही नहीं देखना चाहिए बल्कि एक दूसरे में घुसे हुए मानकर सोचना चाहिए। ऐसी स्थिति में उनका अपने पृथक अस्तित्व की चिन्ता नहीं करनी चाहिए बल्कि एक का अस्तित्व ही दूसरे पर निर्भर है तथा उसे उसका अनुग्रहित होना चाहिए। जहाँ एक का अस्तित्व दूसरे के लिए सार पूर्ण है ऐसी प्रक्रिया भी गतिशील हो।

प्रसार—स्वस्थ सम्प्रेषण वह है जहां ठीक सूचना, ठीक समय पर, ठीक व्यक्ति के पास पहुँचती है। इसका ज्ञान जरूरी है कि क्या सूचित करना है?

सम्प्रेषण के लाभ

(1) कर्मचारियों को उत्तरदायित्व निभाने योग्य बनाना।
(2) दूसरों के अनुभवों का लाभ उठाया जा सकता है।
(3) समस्याओं का उचित समाधान प्राप्त हो सकता है।
(4) उच्च स्तरीय पहल की क्षमता का विकास किया जा सकता है।
(5) सामूहिक चारित्रय का विकास।
(6) बौद्धिक योग्यता व विचारों की उन्नति।
(7) समाचार एवं सूचनाओं से जानकारी।

सम्प्रेषण की सीमायें

(अ) अनावश्यक बातों की व्यापक चर्चा।
(आ) वाद विवाद संक्षिप्त होते हैं अपूर्ण रह जाते हैं।
(इ) कार्य करने में, निर्णय लेने में विलम्ब होता है।

सम्प्रेषण की अनिवार्यताएँ

हेरी के अनुसार सम्प्रेषण की 8 मुख्य बातें हैं—

1 स्वय को सूचित करो।
2 एक दूसरे म विश्वास उत्पन्न करो।
3 अनुभव के आधार पर सामान्य आधार की खोज।
4 परिचित शब्दो का प्रयोग।
5 सन्दर्भ के लिए सम्मान।
6 अधिकाधिक व्यक्तियो को आकर्षित करना।
7 उदाहरण एव दृश्य सामग्री का उपयोग।
8 प्रतिक्रियाओ को रोकने के लिए प्रयास।

अन्य महत्वपूर्ण अनिवार्यताएँ

1 जो देना है उसके साथ भावना भी दीजिए।
2 जिस समाचार या पहलू पर बात कर रहे हैं उस पर सबधित कर्मचारी स पहले ही बात कर लीजिए।
3 देखिए कि लिए गए निर्णयो का पालन हो, और
4 निर्णयो की भावी सीमाए जान लीजिए।

भारत म अभी भी अधोगामी सम्प्रेषण की ही बहुलता है। उर्ध्वगामी सम्प्रेषण के तो यदा कदा ही दर्शन हो पाते हैं। यहा सदैव निदेशक ही समाचार देता रहा है। इससे अधीनस्थ कर्मचारियो की पहल करने की प्रवत्ति का कोई लाभ नही उठाया गया। इसका कारण शायद यहा का सास्कृतिक जीवन रहा हो। अधीनस्थ कर्मचारी सदव ऊपर के आदेशो की प्रतीक्षा करते हैं, कभी सुझाव नही देते, न उसकी व्यावहारिकता पर सन्देह प्रकट करते हैं, तथा न ही उसकी प्रभावोत्पादकता पर टीका टिप्पणी करते हैं।

प्रशासक पहले उच्चाधिकारी होता है प्रशासनिक पद सोपान म उसकी स्थिति विलक्षण होती है। वह तकनीकी मार्गदर्शन देता है तथा अधीनस्थ कर्मचारियो के काम का पर्यवेक्षण भी करता है। शिक्षा निदेशक राज्य के सचिवालय के प्रति उत्तरदायी होता है। वह ही मत्रालय द्वारा निश्चित की गई रीति-नीति के अनुसार विद्यालयो में कार्य करवाता है तथा विद्यालयो की गतिविधियों एव प्रगति से सचिवालय को परिचित रखता है। वही निर्णय लेता है तथा कुछ स्थितियो म अपनी शक्तियो का हस्तान्तरण क्षेत्रीय अधीनस्थ कर्मचारियो को भी कर देता है। शक्तियो का विकेन्द्रीकरण न केवल कार्यों के जल्दी होने पर निर्णय शीघ्र होने म सहायता करता है, बल्कि इससे आपस मे मधुर सम्बन्धो का विकास भी होता है। उसे अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की कमियो को, दोषों को भी स्वीकार करना चाहिए। वह कई

बिन्दुओं पर अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से भिन्न राय भी रख सकता है। पर ऐसी स्थिति में उसे सहिष्णु तो होना ही चाहिए तथा धैर्य के साथ उनके तर्कों को सुनना चाहिए। यदि भविष्य में इस प्रकार के मानवीय सम्बन्धों का विकास हो सका तो प्रशासन को एक बहुत बड़ी देन होगी। अपने सुधार के दृष्टिकोण से प्रशासक अपनी आलोचना खुले मस्तिष्क से सुनेंगे और अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रति सहिष्णुता के साथ सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करेंगे, ऐसी आशा की जाती है। यदि प्रशासक अपने सोचने समझने के तरीकों तथा कार्य व्यवहार में इस दृष्टिकोण से परिवर्तन ला सकें तो संगठन के सदस्यों के तनाव समाप्त होंगे। सदस्यों को अपनी स्थिति का ज्ञान होगा, वे मन लगाकर पूरे मनोयोग से काम करेंगे तथा कार्य कुशलता में वृद्धि होगी, फलतः उन्हें अधिकतम सतोष मिलेगा, जो उनके कुल कल्याण को बढाने का निमित्त बनेगा। इस सबके लिए आवश्यकता है तो केवल यह कि शीर्षस्थ स्थान पर बैठे प्रशासनाधिकारी सदैव गतिशील मानवीय सम्बन्धों के सन्दर्भ में अपने सोचने विचारने के दृष्टिकोण में परिवर्तन करें।

Bibliography

Mukherjee S N (Dr) Educational Administration Theory and Practice) Baroda: Acharya Book Depot, 1970

Rastogi, D P Lok Prakashan Meerut Sadhana Prakashan 1974

Smith Alfred, G Communication and Status University of Oregon The Centre for the Advanced Study of Educational Administration, 1966 (a)

Smith Alfred, G Culture and Communication New York Holt, Rine hart and Winston 1966 (b)

Sharma P D Theory of Public Administration (Hindi) Jaipur College Book Depot, 1970

Singh, R L Lok Prakashan, Agra Ratan Prakashan Mandir, 1973

11(अ) शिक्षा प्रशासन में मानवीय सम्बन्ध

कोई भी सन्देश हो, चाहे वह उच्च अधिकारी को या अधीनस्थ अधिकारी को सम्प्रेषित किया जाना हो इस प्रक्रिया में मानवीय सम्बन्धों के महत्त्व को नहीं भुलाया जा सकता। मोटे रूप मे कहा जा सकता है कि सम्प्रेषण क्रिया के साथ ही मानवीय सम्बन्धों का जन्म होता है। समाज की जटिलताएँ प्रशासन की पेचीदगियों एव विशाल विभाग होने के कारण मानवीय सम्बन्धों म मधुरता की कठिनाई उत्पन्न होती है। मानवीय साधनो के साथ व्यवहार करना एक कला है जो भौतिक वस्तुओं (निर्जीव सामग्री व मशीनो) के साथ किए जाने वाले व्यवहार से बहुत भिन्न है। न केवल इतना ही बल्कि एक ही समय मे भी व्यक्ति का व्यवहार भिन्न भिन्न हो सकता है। शिक्षा उप निदेशक का एक समय जो व्यवहार जिला शिक्षा अधिकारी के साथ होता है वही व्यवहार उसी समय वह निदेशक के साथ नहीं कर सकता। इसीलिए अन्य विभागों के समान श्रम की मात्रा बढा कर तत्काल ही उत्पादन पर प्रभाव का मूल्यांकन चूँकि शिक्षा विभाग मे कठिन है अत मानवीय सम्बन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड सकता है। शिक्षा विभाग म बुद्धिजीवियों को नियोजित किया जाता है, अत सम्बन्धों पर मनोवैज्ञानिक कारणों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। यदि छात्रों के बीच सम्बन्ध मधुर होंगे, उनमें घनिष्ठता होगी तो शिक्षा का स्तर अवश्य ही ऊँचा होगा। इसीलिए विद्यालय कई प्रकार के शैक्षिक व सह शैक्षिक कार्यक्रम प्रस्तुत करते रहे हैं। इस प्रकार विस्तृत अर्थों म मानवीय सम्बन्ध का सम्प्रत्यय अपने क्षेत्र में आन्तरिक एव बाह्य सम्बन्धों को समाविष्ट करता है।

व्यक्तियों के साथ किए एव रखे जाने वाले व्यवहारों को ही मानवीय सम्बन्धों की सज्ञा दी जाती है अत इन सम्बन्धों को परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य मे देखा जाना चाहिए। शिक्षा निदेशक कल्पना कीजिए बच्चों से यदि कार्यानुभव शुल्क वसूल करना चाहते हैं तो निदेशक का बच्चों उनके अभिभावकों तथा बच्चों के शिक्षक माता पिताओं की स्थिति पर ही विचार करना होगा व उनकी सम्भावित प्रतिक्रिया का अनुमान लगायेंगे। इसी भांति प्रधानाध्यापक/प्रधानाचार्य अपने सहयोगियों को किसी काम के लिए आदेश देते समय उनकी शारीरिक सामर्थ्य उनकी मानवीय सीमाएँ तथा उनके जीवन मूल्यों का भी ध्यान रखता है वह मनोवैज्ञानिक रूप से उनके प्रति सजग है, कोई भी कदम उठाने से पूर्व वह उनकी

सम्भावित प्रतिक्रिया का अनुमान लगा लेता है। निदेशक को अपने कर्मचारियों से काम लेने के लिए विभिन्न प्रकार की प्रेरणाएँ देनी होती हैं। अभिप्रेरणा उत्पन्न करने का प्रमुख उद्देश्य ही यह है कि श्रमिक जिज्ञासु बन कर अपनी क्षमता तथा कार्य का उत्तम रूप मे परिचय दे सकें। अभिप्रेरणा दो प्रकार की होती है—नकारात्मक तथा सकारात्मक। दण्ड का भय प्रथम प्रकार की प्रेरणा है जबकि व्यक्तित्व की मान्यता, पद की सुरक्षा, भावी पदोन्नति के अवसर तथा उपयुक्त पारिश्रमिक दूसरे प्रकार की प्रेरणाएँ हैं। एक शिक्षक को नियमित समय से पूर्व विद्यालय बुला कर विद्यालय योजना का काम पूरा करना है। प्रधानाध्यापक किस शिक्षक को जल्दी बुलाए, किस भाषा का प्रयोग करे, किस प्रकार प्रयोग करे ? न केवल इतना ही, बल्कि आदतो व्यवहारो, चरित्र मान्यताओं, दृष्टिकोणों, मूल्यों तथा व्यक्ति के चारो ओर का वातावरण, रीति रिवाज आदर्श एवं प्राथमिकताएँ भी इसे प्रभावित करता है। इन सब बातो के प्रकाश में व्यवहार किया जाना चाहिए प्रधानाध्यापक जिस शिक्षक का निर्देशन दे रहे हैं या जिसका निरीक्षण या निर्देशन कर रहे हैं उसके भावो एवं दृष्टिकोणो से भी वे प्रभावित करती हैं। शिक्षा विभाग के कर्मचारियो का अधिकतम विकास करते हुए, उपलब्ध साधनो का उपयोग करते हुए उद्देश्यों की उच्चतम बिन्दु तक प्राप्ति ही मानवीय सम्बन्धो का परिक्षेत्र है। आधुनिक विचारधारा के अनुसार कर्मचारियो तथा अधिकारियो मे केवल कार्य करने की इच्छा होना ही पर्याप्त नही है वरन उनमें कार्य करने की इच्छा भी होनी चाहिए। इसमें प्रबन्ध की अपनी भूमिका है।

डेविस के अनुसार मानवीय सम्बन्धो का अर्थ एक उत्पादक सहकारिक एवं आर्थिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक सन्तुष्टि से परिपूर्ण कार्य स्थिति मे व्यक्तियो के समन्वय से है।"

कालसी के अनुसार मानवीय सम्बन्ध को अधिकतम उत्पादकता एवं अधिकतम मानवीय सन्तोष के मध्य एक सर्वोच्च सम्बन्ध के रूप मे परिभाषित किया जाता है।'

सरल शब्दो मे मानवीय सम्बन्ध कर्मचारियो एवं अधिकारियो को उद्देश्य सन्तुलन प्राप्त करने हेतु अभिप्रेरित करने वाली प्रभावशील प्रक्रिया है जो अधिकतम मानवीय सन्तुष्टि एवं संस्था के उद्देश्यो की पूर्ति में सहायता प्रदान करती है।

मानवीय सम्बन्धो का महत्त्व

यह कितनी उपहासजनक स्थिति है कि मानवीय सम्बन्धो का व्यवसाय में कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है और मानवीय सम्बन्धो का जहां अध्ययन कराया जाता है उन अध्ययन कराने वाले सदस्यो या उस शिक्षा संस्थान में इस प्रकार के अध्ययन पर कोई ध्यान नही दिया जाता। मनुष्य निर्जीव मशीन के दो पुर्जों के टकराने का

अध्ययन कर सकता है वह उनके टकराव का कारण जानने का प्रयत्न करता है, पर वह स्वयं मनुष्यों के टकराने या एक दूसरे के साथ संघर्ष में आने के कारण नहीं जानता या जानने का प्रयत्न नहीं करता या आदमी को जानने का प्रयत्न नहीं करता है। जीवन के हर क्षेत्र में मानवीय सम्बन्धों की समस्या है। एक ऐसे व्यावसायिक संस्थान में जहाँ उत्पादन प्रमापीकृत हो तथा चेतना रहित हो वहाँ भी उलझनें हैं पेचीदगियाँ हैं, तो शिक्षा विभाग या विद्यालय जहाँ सजीव बच्चे पढते हैं सजीव कर्मचारी काम करते हैं, उनका हर क्षण विकास होता है, हर एक सदस्य या बालक दूसरे से भिन्न है, उनका व्यक्तित्व, सम्वेदनाएँ आवश्यकताएँ, अनुभव, तथा अभिलाषाएं भिन्न भिन्न हैं। शिक्षा तो निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। ऐसी स्थिति में मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन और भी महत्त्वपूर्ण है।

शिक्षा विभाग में मानवीय सम्बन्धों का महत्त्व भी है कि विभाग के कर्मचारियों एवं अधिकारियों की कार्य-कुशलता बढे, उनका मनोबल ऊँचा रहे तथा लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो। कार्य-कुशलता किसी भी संगठन का प्रमुख लक्षण माना जाता है। औपचारिक नियम कितने ही अच्छे क्यों न हों पर जब तक उन्हें सही अर्थों में लागू नहीं किया जायगा अपेक्षित फल प्राप्त नहीं किए जा सकते। नियमानुसार कार्य सम्पादन करने में कर्मचारी सहयोग करें—इसके लिए उन्हें मानवीय सम्बन्धों द्वारा प्रेरित किया जाना चाहिए। अधिकारी तथा कर्मचारी के मधुर सम्बन्ध ही उनका मनोबल बढाते हैं। जब अधिकारी देखते हैं कि आदेशों का पालन हो रहा है आदेशों के अनुसार ही काम हो रहा है तो उनमें उत्साह का संचार होता है वे पूरा उत्तरदायित्व निभाते हैं। अधिकारियों में उत्साह देखकर अधीनस्थ कर्मचारियों का मनोबल ऊपर उठता है जो अन्ततः लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर करता है।

विभाग में मानवीय सम्बन्ध कर्मचारियों के साथ सौजन्यतापूर्ण व्यवहार पर बल देता है जिससे कार्य संतोषजनक तरीके से सम्पादन कर कार्य करने में आनन्द व प्रसन्नता प्राप्त हो। इसके लिए अधिकारियों द्वारा कर्मचारियों के व्यक्तित्व का आदर, उनकी मौलिकता के प्रति सम्मान तथा विभाग में महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में देखा जाना चाहिए। कर्मचारियों को यह अनुभव कराया जाना चाहिए कि विभाग उनके लिए है एवं अधिकारियों को कर्मचारियों का विश्वास जीत लेना चाहिए। कर्मचारी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आश्वस्त होना चाहिए। कर्मचारी केवल धन ही नहीं वह अपनी सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की भी सन्तुष्टि चाहता है। इसीलिए यदि कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की ओर भी ध्यान दिया गया तो कर्मचारियों के संतोष को अधिकतम सीमा तक अग्रसर किया जा सकता है। इसी प्रकार के निष्कर्ष 1941 में एल्टन मेयो तथा उसके सहयोगियों ने "यूयॉर्क के हाथॉर्न प्लान्ट में भी अपनी शोधों से

प्राप्त किए । उन्होंने बताया कि अच्छा व्यवहार करके कमचारियो का सहयोग जीता जा सकता है । यह शोध[1] यद्यपि व्यावसायिक प्रतिष्ठान मे किया गया है, पर

---

1 एक समय टेलीफोन सम्बन्धी सामान बनाने वाली बेल कम्पनी में उत्पादन गिर रहा था । कमचारियो तथा अधिकारियो के बीच सम्बन्ध बिगडे हुए थे, बडी सीमा तक असन्तोष व्याप्त था । कम्पनी के अधिकारियो ने एल्टन मेयो तथा उसके साथियो को उत्पादन म सुधार लाने हेतु सुझाव देने को कहा । एल्टन मेयो तथा उसके साथियो ने सुझाव प्रस्तुत करने के लिए 1927 से 41 तक परीक्षण किए । आरम्भ मे उद्देश्य भौतिक घटको—प्रकाश व विश्राम की अवधि का उत्पादन पर प्रभाव ज्ञात करना था । परीक्षण के समय यह स्पष्ट हुआ कि कमचारियो के काय के प्रति अपने दृष्टिकोण उत्पादन को प्रभावित करता है । इससे दो प्रश्न सामने आए—1 सस्थान के उद्देश्यो की पूर्ति तथा उसका विकास और 2 सस्थान म कायरत कमचारियो की सन्तुष्टि । कमचारियो की ये सन्तुष्टियाँ केवल काय स्थल तथा काय की स्थितियो पर ही निभर नही करती वरन स्वय काय समूह पर भी आश्रित होती हैं । कमचारियो द्वारा अपने पयवेक्षको अपने सहयोगी कमचारियो आदि के प्रति बनाई गई धारणाएँ और साथ काय करते हुए काय से प्राप्त वयक्तिक सन्तुष्टियाँ सस्थान व काय के प्रति उनकी अभिवृत्तियो का निर्धारण करती हैं । प्रयोग से प्राप्त निष्कष यह हैं—

1—विभिन्न तरीको से मूल्याकन के बाद कार्यानुसार मजदूरी देने से आठ सप्ताह तक उत्पादन म निरन्तर काफी वद्धि हुई है ।

2—पाँच सप्ताह तक की अवधि में सुबह शाम पाँच-पाँच मिनिट के दो लघु विश्राम देने से उत्पादन मे वद्धि हुई । विश्राम की अवधि दस मिनिट कर देने पर उत्पादन मे तीव्र गति से वद्धि हुई ।

3—पाँच-पाँच मिनिट के 6 विश्राम देने पर उत्पादन मे गिरावट आई । महिला कमचारियो ने बार बार विश्राम देने से क्रम टूट जाने की शिकायत की क्योकि इससे उत्पादन की गति पर प्रतिकूल प्रभाव पडा ।

4—शिकायत का निवारण करते हुए विश्रामो की सख्या दो करदी गई तथा प्रथम विश्राम क समय कम्पनी की ओर से गरम भोजन दिया गया । इससे उत्पादन म आश्चयजनक वद्धि हुई ।

5—महिला कमचारियो को पाँच की जगह साढ़े चार बजे छुट्टी कर देने से उत्पादन म वद्धि हुई । पर छुट्टी चार बजे कर देने पर उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पडा ।

शिक्षा विभाग भी इससे पर्याप्त लाभ उठा सकता है। शिक्षा विभाग का प्रधान निदेशक, अपने साथी सयुक्त निदेशको, उप निदेशको तथा जिला शिक्षा अधिकारियों के साथ अच्छे मानवीय सम्बन्धों का विकास करते हुए, उनकी कठिनाइयों को दूर करते हुए, उनका अधिकतम व्यावसायिक विकास करते हुए किसी भी नवीन उपक्रम या अभियान मे सफलता के उच्चतम बिन्दु तक पहुँच सकता है।

निष्ठावान तथा पूर्ण योग्य कर्मचारी किसी भी व्यवसाय या विभाग या सगठन के लिए अमूल्य निधि हैं। विश्वास पात्र, निष्ठावान तथा योग्य कर्मचारियो की प्राप्ति हेतु अधिकतम कार्य को सर्वोत्तम स्तर पर निपटाने के लिए तथा मधुर मानवीय सम्बन्धो के विकास के लिए कर्मचारियो के व्यवहारा का, उनकी कठिनाइयो का गहन एव विस्तृत अध्ययन करना जरूरी है। कर्मचारियो की कठिनाइया दूर की जायें, कार्य की स्थितियो मे सुधार किया जाय, उनके साथ सहानुभूति पूर्ण व्यवहार किया जाय जिससे वे सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक रूप से सन्तुष्ट हो कर कार्य निष्पादन कर सकें। सक्षेप म, मानवीय सम्बन्धा के सम्प्रत्यय का महत्त्व समझना आज की सर्वोपरि आवश्यकता है।

मानवीय सम्बन्धों के उद्देश्य

मानवीय सम्बन्धा का उद्देश्य विभाग क कर्मचारियो तथा अधिकारियो व विशिष्ठ लक्षणो व कार्य व्यापारो का अध्ययन करना ही नही है बल्कि यह ता कार्य मूलक (Task Oriented) विचारधारा है जो प्रयत्ना का वाछित दिशा म सजगता के साथ तत्पर बनाती है जो सन्तोषप्रद परिणामा की प्राप्ति हतु पूव आवश्यक्ता है। विभाग के कर्मचारियो का कार्य की स्थितिया से तादात्म्य स्थापित करना, जिससे वे सहयोग के साथ कार्य कर सकें, उपलब्ध साधना का अधिकतम उपयोग करते हुए पूव निश्चित लक्ष्या की प्राप्ति कर सकें, प्राप्त परिणामो से सन्तुष्ट हो सकें तथा वयक्तिक और सामूहिक सम्बन्धों म सुधार हो—मानवीय सम्बन्धों के उद्देश्य हैं। इनके साथ ही कर्मचारियो म मानवोचित व्यवहार का प्रोत्साहित करना, उनका मनोबल ऊँचा उठाना, भी जोडा जा सकता है। सक्षेप में, मानवीय सम्बन्धा

6—मजदूरों को कार्य की प्रेरणा देने तथा उनम प्रसन्नता लाने के लिए अनार्थिक पुरस्कारो का महत्वपूर्ण स्थान है। पर श्रम विभाजन मे अत्यधिक विशिष्टीकरण उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

7—अन्तिम परीक्षण के रूप म, य सारी सुविधाए स्थगित करदी गई। शनिवार को कार्य लेना सप्ताह म 48 घटे काम लेना किसी प्रकार का विश्राम न देना कार्य के अनुसार मजदूरी न देना नि शुल्क भोजन की सुविधा समाप्त कर दना अर्थात कार्य करने की पुरानी स्थितियाँ ही बारह सप्ताह तक प्रदान की गई तो भी उत्पादन की गति ऊँची ही रही।

का उद्देश्य मानव के साथ व्यवहार करने वाली क्रियाओं से सम्बन्धी निर्णयों को मानवोचित बनाना है। उपलब्ध साधनों के दृष्टिकोण से अधिकतम उत्पादकता एवं अधिकतम मानवीय सन्तोष के मध्य एक सर्वोत्तम सूत्र निश्चित करना है जिससे विभाग के उद्देश्यों की प्राप्ति के साथ ही कर्मचारियों तथा अधिकारियों के व्यक्तिगत तथा सामूहिक हितों में तालमेल बना रहे।

मानवीय सम्बन्धों के तत्व

मधुर एवं सराहनीय मानवीय सम्बन्धों के विकास के लिए निदेशक को अपने कर्मचारियों तथा अधीनस्थ अधिकारियों के साथ आत्मीयता रखनी होगी तथा अधिकारियों को भी अपने काम में निष्ठा रखते हुए पूर्ण रुचि से कार्य करना होगा। आदर्श स्थिति तो यह हो कि प्रत्येक कर्मचारी चाहे वह चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी हो या विभागीय अधिकारी, चाहे उनका वेतन, काम व योग्यता के आधार भिन्न भिन्न ही क्यों न हो अपने को एक परिवार के सदस्य समझें। किसी भी संगठन में आदर्श स्थिति का विकास हो, इसके लिए निम्न तत्वों पर बल दिया जाता है

सामूहिक सहयोग

सुदृढ एवं मधुर मानवीय सम्बन्धों के लिए कर्मचारी तथा अधिकारी के बीच सहयोग नितान्त आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक है कि अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों में विश्वास रखे तथा कर्मचारी उनकी न्यायशीलता तथा निष्पक्षता के प्रति आश्वस्त रहे। अधिकारी मानवीय प्रतिष्ठा के आधार पर कर्मचारियों के साथ सम्मान पूर्ण व्यवहार करे, इससे समूह भावना का विकास होगा। दोनों सहयोग सम्भावना तथा प्रेम पूर्ण वातावरण में लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अग्रसर होंगे। कर्मचारियों को यह समझ लेना चाहिए कि विभाग की सामान्य सफलता ही उनकी सफलता है विभाग की सफलता में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विभाग द्वारा निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति की भावना ही उनको कठोर परिश्रम करने को बाध्य करेगी।

संयुक्त परामर्श

विभाग के समस्त कर्मचारियों तथा अधिकारियों में आत्मीयता की भावना विभिन्न छोटे तथा मण्डलीय एवं जिला स्तरीय कार्यालयों में तालमेल बिठाने के लिए संयुक्त परामर्श अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए निदेशक समय समय पर विभिन्न स्थानों पर अधिकारियों की बैठकें बुलाते रहते हैं जहाँ वे अपनी बात, विभाग की रीति-नीति उन्हें बताते हैं, उनकी कठिनाइयाँ सुनते हैं तथा मार्ग दर्शन देते हैं एवं आवश्यक निर्देश जारी करते हैं। संयुक्त रूप से अनुशासन सम्बन्धी बातों पर विचार करने से दोनों को एक दूसरे का दृष्टिकोण समझने में मदद मिलती है। ऐसे [illegible] महत्वपूर्ण परिवर्तन करने के पूर्व आत्मपान कर लेने से सन्देह को दूर किया जा

सकता है जिससे आगे चल कर विरोध उत्पन्न होने की सम्भावना समाप्त हो जाती है तथा कर्मचारियों की गलत धारणाओं का निराकरण किया जा सकता है। आपसी विचार विमर्श करने के बाद क्रियान्विति सरल हो जाती है। कई बार ऐसी स्थिति आ सकती है कि कर्मचारी अपनी बात किसी माध्यम के मध्यस्थ से नहीं सीधी शीर्षस्थ अधिकारी से कहना चाहते हैं।

इस प्रकार के सामूहिक परामर्श के अतिरिक्त सुविकसित सम्प्रेषण प्रणाली का होना भी नितान्त आवश्यक है। इस व्यवस्था में कर्मचारियों को अपने विचारों कठिनाइयों समस्याओं तथा शिकायतों को उच्चाधिकारियों तक पहुचाने से सन्तोष होगा इससे कर्मचारियों का मनोबल बढ़ेगा। उच्चाधिकारी भी इस सम्बन्ध में ज्ञान रख सकेंगे। इस सम्बन्ध में प्रशासन की भी अपनी भूमिका होती है। उच्चाधिकारियों को मानवोचित व्यवहार करना चाहिए वे अपने को शासक न मानें वरन कर्मचारियों के साथी मार्ग दर्शक तथा हित चिन्तक मान कर कार्य करना चाहिए। दूसरे शब्दों में निदेशक तथा उच्चाधिकारियों की न्यायशीलता तथा निष्पक्ष व्यवहार में सन्देह नहीं किया जाना चाहिए।

कल्याण कार्य

विभाग को अपने कर्मचारियों के कल्याण के कार्यों में भी रुचि लेना चाहिए। कर्मचारियों के कल्याण कार्यों के लिए ही राष्ट्रीय शिक्षक कल्याण प्रतिष्ठान के अतिरिक्त विभाग ने हितकारी निधि की स्थापना की है। इससे जरूरतमंद कर्मचारियों की आवश्यकता के समय उदारतापूर्वक ऋण या सहायता या अनुदान दिया जाता रहा है। इसी भांति महिला अध्यापिकाओं या कर्मचारियों को ही प्रसूता अवकाश भी स्वीकृत किया जाता है। ऐसी किसी व्यवस्था पर भी विचार किया जाना चाहिए कि विभाग में कार्यरत महिला कर्मचारी या शिक्षिकाएँ विवाह होने पर दाम्पत्य जीवन बिताने हेतु पाँच सात वर्ष का निर्वेतन अवकाश चाहें तो उदारतापूर्वक स्वीकाराय विचार किया जाय तथा अवकाश समाप्ति पर उन्हें पुन सेवा में ले लिया जाय। इससे कर्मचारियों में आत्मीयता का विकास होता है तथा मानवीय सम्बन्ध स्वस्थ होते हैं।

अधीनस्थ कर्मचारियों में व्यक्तिक रुचि

निदेशक तथा शीर्षस्थ अधिकारियों की अधीनस्थ कर्मचारियों में रुचि महत्वपूर्ण स्थान रखती है। कर्मचारियों की समस्यायें जानें उन्हें हल करने के लिए परामर्श करें त्रुटियों के लिए केवल दण्ड की व्यवस्था ही न हो बल्कि समझाने तथा नई विधियों का ज्ञान भी दें तथा गल्तियों को दूसरी बार न दोहराने के लिए भी रास्ता सुझावें। इस प्रकार कर्मचारियों के हितों की रक्षा करने से उनका नैतिक स्तर ऊँचा उठेगा तथा अपने कार्य के प्रति निष्ठा बढ़ेगी। मानवीय सम्बन्धों के क्षेत्र में एक बात यह याद रखनी चाहिए कि कई परिवर्तित स्थितियों में स्वामी

तथा नौकर की धारणा समाप्त की जाय तथा अधिकारी वर्ग का ही इस क्षेत्र पहल करने का श्रेय लेना चाहिए।

मानवीय सम्बन्धों की विशेषताएँ

मानवीय सम्बन्धों का अर्थ, परिभाषा, महत्त्व, उद्देश्य तथा तत्त्व पर विचार करने के बाद इस सम्प्रत्यय की विशेषताएँ जाननी चाहिएँ।

इस सम्प्रत्यय में अभौतिक पक्ष पर अत्यधिक जोर दिया गया है। धन एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है पर धन ही एकमात्र आवश्यकता है ऐसा भी नहीं माना जाता। भौतिक वृद्धि तथा सेवा की सुरक्षा अच्छा काम करने की प्रेरणा देते हैं पर इनसे हट कर अभौतिक आवश्यकताएँ सन्तुष्ट करके भी कार्य की मात्रा तथा स्तर बढ़ाया जा सकता है। इसी प्रकार के निष्कर्ष 1920 में एल्टन मेयो ने हारवर्ड विश्वविद्यालय में की गई अपनी शोध से प्राप्त किए हैं। इनके अनुसार अच्छा व्यवहार करके कर्मचारियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। इन अभौतिक आवश्यकताओं में कर्मचारी के व्यक्तित्व का आदर, संगठन या विभाग में मान्यता उसके कार्य की सराहना संक्षेप में कर्मचारी की सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ यथा समय पूरी की जानी चाहिएँ।

कर्मचारी अपने साथियों के बीच रह कर काम करता है। इसे शून्य में मानकर उससे यन्त्रवत काम नहीं लिया जा सकता। इसीलिए किसी विशिष्ट कर्मचारी का व्यवहार समझने के लिए उसके समूह का, उसके संगी-साथियों का व्यवहार भी समझना होगा। पारस्परिक विचारों को भली भाँति समझने के लिए, कर्मचारियों के विचारों की उपयोगिता को मान्यता देने तथा उनके दिलों से भ्रान्तियों तथा शंकाओं को दूर करने के लिए अच्छी सम्प्रेषण प्रणाली पर जोर दिया गया है। समय पर पर्याप्त सही एवं आवश्यकतानुसार सूचनाएँ देने से आधी समस्याएँ तत्काल ही हल हो जाती हैं।

अब तक पर्यवेक्षण में सख्ती पर उच्चाधिकारी विश्वास रखते थे। परन्तु नये दृष्टिकोण के अनुसार कर्मचारियों को मनुष्य समझ कर कार्य पर तथा कार्य से परे भी उनके साथ मानवीय व्यवहार किया जाना चाहिए। विश्वास ही विश्वास को जीतता है। इस दृष्टि से किया गया पर्यवेक्षण ही कर्मचारियों में अधिक उत्तरदायित्व का विकास करता है।

अस्वस्थ मानवीय सम्बन्धों के लक्षण

किसी भी विभाग या संगठन में मानवीय सम्बन्ध निम्न स्तर के हैं या बिगड़े हुए हैं इसे निम्नलिखित बातों से पहचाना जा सकता है।

1 अनुपस्थिति

कर्मचारियों की अनुपस्थिति या निरन्तर अनुपस्थिति अस्वस्थ मानवीय सम्बन्धों का प्रथम लक्षण है। अधिकारी लोग कर्मचारियों की अनुपस्थिति को कम

चारियों के उत्पादन की मात्रा, उनके द्वारा किए जाने वाले कार्य की मात्रा से जोड़ते हैं। दूसरी ओर यदि कर्मचारी को कार्य से सन्तोष है तो वह स्वयं भी कार्य से अनुपस्थित नहीं रहना चाहेगा। स्वस्थ संबंधों का विकास करके अनुपस्थिति को कम किया जा सकता है।

2 अनुशासनात्मक कार्यवाही

अस्वस्थ मानवीय संबंधों का सूचक दूसरा महत्त्वपूर्ण घटक अनुशासनात्मक कार्यवाहियों का बढ़ाना है। सामान्य शिक्षकों और कर्मचारियों में यदि यह विश्वास बढ़ता जाए कि क्षेत्रीय अधिकारी तथा शीर्षस्थ अधिकारी निदेशक आदि उनमें दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं तो अनुशासनहीनता बढ़ने लगती है। उनकी कठिनाइयों के प्रति उदासीनता बरतने पर भी यही स्थिति आ सकती है।

3 पदोन्नति

हर कर्मचारी कम से कम समय में संभावित पदोन्नति चाहता है। हर कर्मचारी की यह इच्छा वास्तविकता में परिणत न हो जाए इसके लिए हर विभाग में औपचारिक नियम बनाए जाते हैं तथा उनका सम्मान किया जाता है कि जिससे कर्मचारियों के हितों में टकराव न हो। इतना होते हुए भी कई बार मनमुटाव होते रहते हैं जो मानवीय संबंधों को कटु व विशाल बना देते हैं।

4 जीवन मूल्यों का न होना

कई अधीनस्थ कर्मचारी तथा अधिकारी अपने जीवन का कोई मूल्य नहीं मानते हैं वे सदैव अधिकारी की हाँ में हाँ मिलाते चलते हैं, खुशामद पसंद अधिकारी आने पर वे चापलूसी कर लेते हैं तथा चापलूसी को घृणित कार्य समझने वाले अधिकारी के आते ही ऐसा व्यवहार करना छोड़ देते हैं। पर सभी अधीनस्थ अधिकारी या कर्मचारी ऐसे नहीं होते। ऐसी स्थिति में थोड़े समय में ही संबंध कटु हो जाते हैं। उच्च अधिकारी को अपनी नीतियों के अनुसार कार्य करवाने तथा आदेशों का पालन करवाने में कठिनाई होती है। दूसरी ओर अधीनस्थ कर्मचारी भी हानि उठाता है जैसे पदोन्नति से वंचना, उसकी प्रतिष्ठा को ठेस आदि। इस प्रकार मानवीय संबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

5 व्यक्ति का अहम्

मनोविज्ञान के अनुसार हर व्यक्ति का अपना स्थान होता है। व्यक्ति का अहम् ही उसको अच्छा कार्य करने की प्रेरणा व उत्साह देता है। अकाट्य अहम् की भावना मानवीय संबंधों में खाई बन जाती है। आवश्यकता यह है कि व्यक्ति का अहम् बिना अपने साथी के अहम् से टकराए सन्तुष्ट होता रहे। इसके लिए आवश्यक है कि कर्मचारियों या अधीनस्थ अधिकारियों में इतना ज्ञान होना चाहिए कि वे अपने अहम् का अपने साथियों के अहम् भाव के साथ तालमेल बिठा सकें।

6. भेंट व प्रदर्शनों की आवृत्तियाँ -

औद्योगिक प्रतिष्ठान की तरह शिक्षा विभाग मे घेराव, तालाबदी हड़ताल प्रदर्शन उतनी ही मात्रा में तो नही होते पर कभी नहीं होते हो, ऐसा भी नही कहा जा सकता। जिला शिक्षा अधिकारी के व्यवहार के खिलाफ उपनिदेशक के सम्मुख प्रदर्शन यदा कदा होता रहा है। इसी भाँति उप निदेशकों के सख्त व्यवहार के खिलाफ निदेशक से शिष्ट मण्डल भेंट करते हैं। कभी कभी तो प्रशिक्षणार्थियों को इच्छानुसार अवधि का अवकाश न मिलने पर वे निदेशक महोदय से भेंट करते हुए भी देखे गए हैं। यदि इस प्रकार की भेंट या प्रदर्शन की आवृत्तियाँ बढती रहती हैं तो स्पष्ट है कि विभाग मे मानवीय सबध मधुर नही हैं तथा कर्मचारियों म अधिकारियो के प्रति असन्तोष, अविश्वास तथा अकल्याण की भावनाएँ विकसित हो चुकी हैं।

7 अन्य कारण

इसके अतिरिक्त कर्मचारियो का एक विभाग से दूसरे विभाग म निरन्तर स्थानान्तरण, काय के प्रति अरुचि बताना, सेवा से त्याग पत्र देना हितकारी संघों को मान्यता न देना, प्रतिदिन की घटनाओं को सही परिप्रेक्ष्य मे न देखना एक दूसरे को समझने म वस्तुनिष्ठता न आना अस्वस्थ मानवीय सबधो के द्योतक हैं।

मानवीय सबधो को मधुर बनाने के लिए सुझाव

मानवीय सबधो की सम्यता दिन प्रतिदिन जटिल होती जा रही है। यह समय की माँग है कि इस समस्या के महत्त्व व प्रभाव को स्वीकार किया जाए, इसे अधिक दिनो तक न टाली जाए तथा सुलझाने के लिए ठोस कदम उठाए जाएँ अन्यथा समस्या के विकृत हो जाने पर मानसिक उलझने बढती हैं। इसीलिए अधिकारियो तथा अधीनस्थो के बीच सबधो को मधुर बनाने के लिए आवश्यक है कि अधिकारी कर्मचारियो से प्रसन्नतापूर्वक एव सहानुभूति के साथ मिलें, धैर्य के साथ उनके अभाव अभियोग सुनें खुले मस्तिष्क से वार्तालाप करें, शान्तिपूर्वक प्रश्नोत्तर करें, वार्ता मैत्रीपूर्ण वातावरण मे हो। निदेशक या मण्डलीय अधिकारी यदि अधीनस्थ कर्मचारियो को आश्वासन देते हैं तो उन्हे उनकी अनुपालना पर भी विचार कर लेना चाहिए क्योकि दिए गए वचन या आश्वासन का पालन हर सूरत में हर कीमत पर किया जाना चाहिए। निदेशक व मण्डलीय अधिकारियो को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्यों आवश्यकताओं, अपेक्षाओं एव आकांक्षाओं का पूर्ण ज्ञान हो शीर्षस्थ अधिकारियों को अभाव अभियोगो के निपटाने की प्रभावी योजना बनानी चाहिए तथा अधीनस्थो को अच्छा नेतृत्व मिल सके, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। मानवीय सबधो को मधुर बनाने के लिए निम्न प्रयास महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं —

1—अधिकारियो द्वारा अधिकतम गभीरता, सदभावना तथा निश्छलता अपनाई जाए। मानवीय सबधों का विकास करने-वाले अधिकारियो का समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान का पूर्ण ज्ञान हो। कारण कि मानव सबधो का अध्ययन बडा नाजुक विषय है। मानव सबधों का स्वभाव तथा सीव व्यक्ति का मन तथा समाज के नियम होते हैं। इन दोनों के सागोपाग ज्ञान के बिना सबधितों से क्रिया-प्रतिक्रिया का सही अनुमान नही लगाया जा सकता। अधिकारी इतना सक्षम हो कि जिस समस्या का वह सुलझाना चाहता है उसके कारणों का अध्ययन करले तथा बीमारी का उपचार करने से पूर्व रोग की प्रकृति जानले।

2—कर्मचारियो के सामने पदोन्नति की सभावनाएँ स्पष्ट होनी चाहिएँ। परिवीक्षण अधिकारियो द्वारा की गई प्रशसा उनका मनोबल बढाती है और आपसी मानवीय सबधो को सकारात्मक रूप से अग्रसर करती है।

3—अनुशासन पूर्ण काम हो इसके लिए सजगतापूवक परम्पराओं का विकास किया जाना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो अनौपचारिक सबधो तथा कर्मचारियो के बीच घनिष्ठता का विकास करने के लिए परिषदें स्थापित की जाएँ, जहाँ कर्मचारी एक दूसरे को निकट से देख व समझ सकें तथा भावनाओं का सम्मान कर सकें। कई बार कर्मचारियों के लिए वैयक्तिक निर्देशन की व्यास्या भी सुनाई जा सकती है।

4—किए जाने वाले परिवर्तनों से अधीनस्थ अधिकारियों व कर्मचारियों को परिचित रखा जाए जिससे वे प्रतिकूल दृष्टिकोण न अपनावें। कोई भी परिवर्तन सयुक्त परामर्श से उसके पक्ष विपक्ष मे विस्तृत सोच विचार के साथ ही लागू किया जाए जिससे वाछित फल प्राप्त किए जा सकें।

5—कर्मचारी तथा अधिकारी अपने कार्य की मान्यता, अपने व्यक्तित्व का आदर चाहते हैं—कार्य की अच्छी सन्तोषजनक दशाएँ व उचित पारिश्रमिक चाहते हैं। इसके लिए कई प्रयत्न शिक्षक सघ या कर्मचारी सघ के माध्यम से करते हैं जो सगठन या विभाग सहयोग की भावना से काम करते हैं व अधिक सफल तथा दीर्घजीवी होते हैं। शिक्षा विभाग को अपने कर्मचारियों के हितो को आगे बढाने वाले सघों को मान्यता देनी चाहिए।

अच्छे तथा मैत्रीपूर्ण व्यवहार द्वारा अधीनस्थ कर्मचारियो को यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि अच्छी तरह कार्य करना स्वय उनके हित मे है, इससे अच्छे सम्बन्ध तथा समृद्धि प्राप्त की जा सकती है। यदि शिक्षा विभाग अपने लक्ष्यों एव उद्देश्यो की प्राप्ति मे सफल होता है तो शिक्षा विभाग के सभी कर्मचारियो सहित मण्डलीय अधिकारियो तथा निदेशक को इसका श्रेय जायगा।

मानवीय सम्बन्धों के सम्प्रत्यय की आलोचना

मानवीय सम्बन्धों का सम्प्रत्यय न्यूनताओं तथा आलोचनाओं से मुक्त नहीं है। व्यावहारिक धरातल पर निम्नलिखित आलोचनाएँ की जाती हैं—

1 मानवीय सम्बन्धों का सम्प्रत्यय तनावों संघर्षों तथा असन्तोषों रहित स्थिति का समर्थक है तथा व्यवहार में ऐसी स्थिति कभी आ नहीं सकती। जीवन ही संघर्षमय है। ऐसी स्थिति में कुछ अंशों में संघर्ष अच्छे प्रयासों की ओर भी अग्रसर करते हैं।

2 इस सम्प्रत्यय के समर्थकों का कहना है कि मानवीय सम्बन्धों के वाछित दिशा में सुधार के लिए कर्मचारियों को शिक्षा दीक्षा दी जा सकती है पर मानवीय सम्बन्धों का *शिक्षा-दीक्षा की अपेक्षा अनुभवों तथा भावनाओं से अधिक सम्बन्ध है।* यह सम्प्रत्यय अनिर्देशित नेतृत्व की माँग करते हैं जो भ्रामक दृष्टिकोण है।

3 मानवीय सम्बन्ध वैयक्तिक हितों की अपेक्षा सामूहिक हितों को मान्यता देता है पर सभी स्थितियों में इसे वांछनीय नहीं कहा जा सकता।

4 मानवीय सम्बन्धों के सन्तोष या असन्तोष को ठीक ठाक भौतिक विज्ञानों की तरह नहीं नापा जा सकता, यद्यपि आजकल इस दिशा में प्रयत्न हो रहे हैं। समाज विज्ञानों में जिन विषयों पर प्रयोग किया जाता है वह मनुष्य या बालक है जिनकी स्थिति हर क्षण बदलती रहती है और इसे भौतिक एवं निर्जीव वस्तुओं के समान *किसी प्रयोगशाला में बन्द नहीं किया जा सकता। अतः दशमलव बिन्दु तक* नापा नहीं जा सकता है और फिर यदि नाप भी लिया तो अगले क्षण यह स्थिति नहीं मिलती है जिससे प्राप्त हल भी वहाँ लागू नहीं हो सकते।

5 इस क्षेत्र में अभी बहुत कम शोध कार्य हुआ है। शोध कार्य प्रारम्भिक अवस्था में है और निर्णयात्मक स्थिति में अन्तिम रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार इस सम्प्रत्यय को दोष मुक्त या आलोचना रहित नहीं कहा जा सकता।

BIBLIOG RAPHY

Mukherjee, S N (Dr) Educational Administration (Theory & Practice), Baroda Acharya Book Dept, 1970

Rastogi, D P : Lok Prakashan Meerut, Sadhana Prakashan 1974

Smith, Alfred G : Communication and Status University of Oregon The Centre for the Advanced Study of Educational Administration 1966 (a)

Smith, Alfred G Culture and Communication, New York, Holt, Rhine hart and Winston 1966 (b)

Sharma, P D : Theory of Public Administration (Hindi) Jaipur College Book Depot, 1970

Singh, R L Lok Prakashan Agra : Ratan Prakashan Mandir 1973

12 सामान्यक एव विशेपज्ञ शिक्षा प्रशासक

शिक्षा प्रशासन म सामान्यक प्रशासक एव विशिष्ट प्रशासक की अपनी अपनी भूमिका हाती है दोनों का अपना अपना स्थान है। कई बार दाना म विरोधाभास बताया जाता है पर मोटे तौर पर निभाइ जान वाली भूमिका को अन्तरात्मा से देखने पर स्पष्ट होता है कि इनमें विचार वभिन्नय नही है, वरन एक दूसरे के पूरक हैं। विराधाभास मानन वाल विद्वाना न सामान्यक तथा विशेपन प्रशासक की ठीक उसी प्रकार ढीली-ढाली परिभाषा की है जिस प्रकार राजनीति विज्ञान के प्रबुद्ध विचारका न समाजवाद की परिभाषा उस टोप के समान की है जो हर किसी के पहनने से विकृत शक्ल का हो गया है। या टोप की शक्ल तत्काल ही पहनन वाले की आवश्यकतानुसार बन जाती है। एक उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाएगी—

शिक्षा विभाग मे जिला शिक्षा अधिकारी तथा तत्सम पद, फिर चाहे वे अधिकारी राज्य शिक्षा सस्थान, या राज्य विज्ञान शिक्षण सस्थान या राज्य भाषा सस्थान या निर्देशन केन्द्र, या मूल्यांकन इकाई या शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय या पाठ्य-पुस्तक मण्डल कही भी नियोजित हो, कुछ काम ता समान रूप स एव निश्चित रूप से सभी अधिकारियों को करन ही पडेंग। हाँ साथ ही इस बात की भी पूरा-पूरी सम्भावना है कि कुछ अधिकारी कुछ विशिष्ट कामो मे पनी दृष्टि प्राप्त कर लेंगे। अधिक स्पष्ट समझने के लिए या कहा जा सकता है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही सबको करनी होती है। विद्यालय म दर से आने पर या विद्यालय के दो शिक्षका मे आपसी झगडे की जाच या विद्यालय मे प्रार्थना के समय व्यायाम शिक्षक द्वारा राष्ट्र घातक या समाज विरोधी बातें कह दने पर जाच, बहुत सम्भव है *जिला शिक्षा अधिकारी अच्छी प्रकार कर सकें।* इसके दूसरी भार पाठ्य-पुस्तक की पाण्डुलिपि समय पर प्रस्तुत नही हुई या शिक्षक प्रशिक्षण प्रमाण पत्र परीक्षा का आन्तरिक मूल्यांकन समय पर प्रस्तुत नही हुआ या पाठ्यक्रम समन्वय अधिकारी किसी विशिष्ट दिन का कार्यक्रम सुचारु रूप से न चला पाने से प्रशिक्षणार्थी इधर उधर भटकते रहे तो इन क्षेत्रो म जाँच कार्य क्रमश पाठ्य-पुस्तक मण्डल, पत्राचार पाठ्यक्रम सस्थान, भाषा सस्थान व प्रशिक्षण विद्यालय या महाविद्यालय के अधिकारी ही अधिक दक्षता तथा अधिक सतर्कता से कर सकेंगे, ऐसी अपेक्षा की

जाती है। इन अनियमितताओं का जाच कार्य, सिर पर आ पडने पर, जिला शिक्षा अधिकारी भी कर लेगा, पर सम्बन्धित अधिकारी की जाँच से प्राप्त सफलता तक वे पहुँच पायेंगे या नही, इसमे सन्देह किया जा सकता है। इसका कारण स्पष्टत यह दीखता है कि सम्बन्धित अधिकारियो को अपने अपने क्षेत्र का दीर्घ अनुभव से विशिष्ट ज्ञान प्राप्त हो गया है।

अनियमितता की जाच दोनो स्थानो पर की जाती है, अनियमितता का निवारण किया जाता है, इस प्रकार अनुशासनात्मक कार्यवाही का जहाँ तक प्रश्न है, दोनो अधिकारियों की भूमिका समान है। दोनो क्षेत्रो मे कार्यवाही की प्रक्रिया भी कुछ अशो मे समान ही होगी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सामान्य शिक्षा प्रशासक तथा विशेषज्ञ शिक्षा प्रशासक की भूमिका विरोधी नही वरन एक दूसरे की पूरक है। इसका आधार भी स्पष्ट है कि अधिकारी अपने पूर्व के जीवन मे सामान्य कार्यवाही के अभ्यास से ही तो पैनी दृष्टि, सजगता तथा विशिष्ट कौशल प्राप्त कर सका है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामान्यक प्रशासक का जन्म शायद तब हुआ होगा जबकि एक इन्जीनियर को सिविल, विद्युत, यान्त्रिकी, केमिकल आदि सभी शाखाओं का अध्ययन करना होता था तथा उसे इनमे से कही भी नियुक्त किया जा सकता था। सम्भव है भविष्य मे ये सभी विषय एक इकाई न रह कर पृथक-पृथक शाखाएँ बन जायें।

शिक्षा विभाग से दूर हट कर देखिए। चिकित्सा के क्षेत्र में रोगी के उपचार के लिए किसी इन्जीनियर को नियोजित नही किया जाता। चिकित्सा के क्षेत्र मे डाक्टर, कम्पाउण्डर की विशिष्ट सेवायें हैं। इसी भाँति इन्जीनियरिंग के क्षेत्र मे विद्युत अभियान्त्रिकी, केमिकल, सिविल की सेवायें आती हैं। आँख, कान, नाक व गले के रोगो के डाक्टर पृथक पृथक हो सकते हैं पर सामान्य चिकित्सा की मोटी मोटी बातें तो सभी चिकित्सक जानते ही हैं और इस बात की सम्भावना से भी मना नहीं किया जा सकता कि आगे चल कर भविष्य मे पर्याप्त विकास होने पर अपने विभाग की सीमाओं मे रहते हुए इन विशिष्ट क्षेत्रो का अपना पृथक पृथक अस्तित्व मान लिया जाय। यही बात इन्जीनियरिंग सेवा के लिए भी कही जा सकती है।

सिद्धान्त रूप मे देखें तो सामान्यक तथा विशेषज्ञ जिला प्रशासक दोनो मे अन्तर का मुख्य आधार उनकी शिक्षा प्रशिक्षण अनुभव व आयु हैं। युवा पीढ़ी, जिसम लगभग सभी विशेषज्ञ हैं अपनी शिक्षा तथा प्रशिक्षण से अपने को अधिक सक्षम समझती है तथा दूसरी ओर अधिक आयु प्राप्त सामान्यक शिक्षा प्रशासक अपने को सामाजिक व्यवहारो मे प्रशासकीय अनुभव के आधार पर अधिक कुशल समझते हैं। सामान्य चिकित्सा विज्ञान का विद्यार्थी स्वास्थ्य सेवा, इन्जीनियरिंग का विद्यार्थी इन्जीनियरिंग सेवा का सदस्य ही होगा। पर शिक्षा प्रशासन के लिए

ऐसा कोई भी स्पष्ट दीखने वाला मानदण्ड निर्धारित नही है। एक समय था जब कोई भी स्नातक उपाधिधारी व्यक्ति शिक्षा की प्रथम उपाधि के पाठ्यक्रम (बी एड) मे प्रवेश प्राप्त कर सकता था पर आज स्थिति यह है कि ऐसे किसी व्यक्ति का बी एड कक्षा म प्रवेश नही हो सकता जिसने स्कूल में पढाये जाने वाले विषयो का स्नातक स्तर पर अध्ययन न किया हो। उदाहरण के लिए—सांख्यिकी, लोक प्रशासन, दर्शन शास्त्र, मनोविज्ञान, विषयो सहित स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण व्यक्ति का भी बी एड कक्षा म प्रवेश नही हो सकता।

इसी भांति बी एड तथा एक निश्चित अवधि का विशिष्ट कक्षाओं का शिक्षण अनुभव होने पर उसे लोक सेवा आयोग द्वारा मुक्त प्रतियोगिता मे सकण्डरी स्कूल के प्रधानाध्यापक पद के लिए उपयुक्त प्रतियोगी मान लिया जाता है। इस प्रकार शिक्षा व्यवसाय म प्रधानाध्यापक के पद को किसी विशेष प्रकार की जिम्मेदारी व कर्त्तव्यों वाला पद अभी स्वीकार नही किया गया है। विशेष प्रकार की जिम्मेदारी व कर्त्तव्यों का निवहन करने के लिए कहीं कोई लम्बी अवधि का औपचारिक एव निर्धारित पाठ्यक्रम सब स्वीकृत नही है। बी एड के बाद एम एड प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम की भी कई जगह व्यवस्था है। पर इस पाठ्यक्रम ने भी शिक्षण वृत्ति के रूप म इस प्रकार कोई मान्यता प्राप्त नही की है कि एम एड प्रशिक्षण सफलता के साथ उत्तीर्ण करने पर उपाधिधारी आशार्थी को राजपत्रित पद पर नियुक्ति मिल ही जाएगी। यह शिक्षण व्यवसाय का दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए। इसके दूसरी ओर चिकित्सा विज्ञान की उपाधि वाले आशार्थी चिकित्सक ही बनेंगे या इजीनियरिंग डिग्री वाले विद्यार्थी इञ्जीनियर ही बनेंगे। शिक्षा सम्बन्धी विशिष्ट प्रकार के उच्चतर पाठ्यक्रमो का महत्व स्वीकार न करने पर (स्वर्गीय) श्री पन्नालाल श्रीमाली ने पीडा प्रकट की है। उनके अनुसार पर्यवेक्षण एव निरीक्षण अधिकारी अनुभव व वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नत किए जाते है। शिक्षा की विभिन्न शाखाओं पर विश्वविद्यालयो तथा शिक्षा महाविद्यालयो म विशिष्ट उच्चत्तर पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं, इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त, अद्यतन विचारो से परिचित, नई चेतना, शक्ति तथा उत्साह के साथ काम करने वालो को उपयुक्त स्थान न मिलने तक स्थिति दयनीय ही बनी रहेगी तथा इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त व्यक्तियो म भग्नाशा का विकास होगा।'[1] न केवल इतना ही, 1963 म डॉ एस एन मुकर्जी के नेतृत्व मे राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान तथा प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली के तत्वावधान म विशिष्ट प्रकार के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पर्याप्त कार्य सम्मिलित करते हुए शिक्षा म स्नातकोत्तर उपाधि धारियो के लिए विशिष्ट पाठ्यक्रम आरम्भ किए थे। आरम्भ के समय ऐसी आशा

---

1 श्रीनरनाथ मुकर्जी (डा) (सम्पादक), भारत म शिक्षा का प्रशासन (अंग्रेजी), बडौदा आचार्य बुक डिपो 1962, पृष्ठ 513

की गई थी कि इन पाठ्यक्रमों से दीक्षित व्यक्ति अपना स्थान, कार्य व पद आदि *राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद के सान्निध्य में स्वयं सम्मानपूर्ण बना* लेंगे। पर इन पाठ्यक्रमों का जन्म होने के दो वर्ष बाद ही स्थगित कर दिया गया।

सामान्य सेवा के दो उपवर्ग बताये जाते हैं—प्रथम, कार्य परक सेवाएँ तथा द्वितीय, सामान्य प्रशासनिक सेवाएँ। कार्य परक सेवाओं में पुलिस, आयकर, आदि। इस प्रकार की सेवाओं का भी एक सुनिश्चित कार्यक्षेत्र रहता है तथा सदस्यों को एक मर्यादित क्षेत्र में ही विशेषज्ञता प्राप्त करनी होती है। दूसरी ओर प्रशासनिक सेवा जिले के प्रशासन के लिए गठित की गई है तथा इसके आगे कोई कार्य क्षेत्र नहीं दीखता—बहुत हुआ तो सचिवालय में पदस्थापन हो गया। इससे ऐसी कल्पना की जा सकती है कि प्रशासन स्वयं एक विशेषज्ञता का क्षेत्र बन गया है जिस पर किसी एक विशिष्ट अनुशासन के विद्यार्थियों का अधिकार नहीं माना जा सकता।

विद्यालय में रहता हुआ शिक्षा सेवा का सदस्य विभिन्न अनुभव प्राप्त करता है—अपने चारों ओर घटने वाली घटनाओं से सीखता है विभिन्न प्रकार के मनोमालिन्य को मिटाता है शिक्षकों में विकसित हुई विरोधी विचार धाराओं का निवारण कर उनमें सुमधुर सम्बन्ध स्थापित करता है, शिक्षकों में फले मन मुटाव को दूर करने के लिए वह विशेष कौशल प्राप्त कर लेता है। विद्यालय जीवन की इस प्रक्रिया में कुछ सदस्य किसी विशिष्ट क्षेत्र में विशिष्ट एवं गहन ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं—वे अपने विशिष्ट क्षेत्र के प्रति उत्साही दीख पड़ते है, फलत उनका दृष्टिकोण सकुचित, अनमनशील तथा एकोन्मुखी हो जाता है।

शिक्षा सेवा का सदस्य बनने के साथ ही या पूर्व या बाद में विभाग द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है। विभाग यह मान लेता है कि इससे वह सदस्य उत्तरदायित्वों तथा कर्त्तव्यों का निर्वाह करने योग्य हो गया है, उसे किसी विशिष्ट प्रकार की परीक्षा पास नहीं करनी पड़ती। विद्यालय सम्बन्धी कार्य इतने अधिक हैं कि शिक्षा सेवा का सदस्य उन सभी में चाहते हुए भी कौशल प्राप्त नहीं कर सकता। आय व्यय अनुमान, साथियों का अवकाश स्वीकृति तथा वेतन वृद्धि, विद्यालय योजना, बाह्य नियन्त्रण आवश्यकता के समय अनुशासनात्मक कार्यवाही, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड को रिटर्न भिजवाना अभिभावकों से सम्पर्क, पुस्तकालय समृद्ध करना, छात्र कल्याणकारी सेवाएँ, आदि आदि। व्यवहार में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति मिल सके जो इन सब कामों को निपटाने में समान रूप से विशेषज्ञ हो। स्पष्ट है कि हर सदस्य की इन या इसी प्रकार की अन्य गतिविधियों में समान रूप से रुचि होगी, बहुत कठिन है तथा न ऐसी आशा ही व्यावहारिक धरातल पर की जानी चाहिए। इन सब कार्यों को नियमानुकूल समय पर सम्पन्न करने के लिए धैर्य तथा व्यवहार कुशलता की नितान्त आवश्यकता है। ज्यों ज्यों शिक्षा सेवा का सदस्य अपने वृत्तिक

जीवन म आगे बढ़ता जाता है, अपने सामाजिक व आर्थिक परिवेश का ज्ञान प्राप्त करता जाता है वह कुशलता प्राप्त करता चलता है। शनै शनै इन बातो से गुजरता हुआ उसका व्यक्तित्व जिला शिक्षा अधिकारी[1] या प्रशासक के रूप म उभरता है। उसे निरंतर कार्य करते हुए शिक्षा विभाग के नियमापनियमो का ज्ञान हो जाता है। वह उनकी बारीकियाँ भी समझ लेता है तथा मन्त्रिमण्डल द्वारा स्वीकृत नीतियों के अनुसार काम करता है काम करवाता है। इसे यो बताया जा सकता है कि विशिष्ट कार्य क्षेत्र से सम्बद्ध प्रशासन स्वयं एक विशेषज्ञता है और बिना कार्य क्षेत्र के उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

कुछ प्रान्तो ने साहस कर शिक्षा विभाग के निदेशक पद पर भी शिक्षा विभाग के ही वरिष्ठ अधिकारी की नियुक्ति की है, इसी भाँति यदा-कदा चिकित्सा तथा इन्जीनियरिंग के क्षेत्र म भी सम्बन्धित विभागों के शीर्षस्थ अधिकारी भी निदेशक के पद पर नियुक्त कर साहस का परिचय दिया है। उनके अनुभव का लाभ उठाया जाय, इस पर कभी दो राय नहीं हो सकती। पर इस प्रकार की किसी परम्परा का देश में विकास हो गया हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। विहंगम दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि शिक्षा विभाग म संयुक्त निदेशक, उप निदेशक, जिला शिक्षा अधिकारी, वरिष्ठ जिला उप शिक्षा अधिकारी (पुरुष महिला), प्रधानाध्यापक प्रधानाध्यापिका तथा प्रधानाचार्य-प्रधानाचार्या के पदों का सामान्य शिक्षा प्रशासकों की श्रेणी म तथा निदेशक मुख्यालय, शिक्षा निदेशालय प्रशिक्षण महाविद्यालय, कला संस्थान के प्रधानाचार्य, प्राध्यापक, राज्य शिक्षा संस्थान, राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थान निर्देशन केन्द्र, मूल्यांकन इकाई, पत्राचार पाठ्यक्रम संस्थान, पाठ्य-पुस्तक मण्डल शारीरिक शिक्षा महाविद्यालय, विभाग के पत्र पत्रिका प्रकाशन एकक के समस्त पद विशेषज्ञ शिक्षा प्रशासकों की श्रेणी मे आते हैं।

विशेषज्ञों की अपनी पैनी दृष्टि होती है, वे अपनी पसन्द के क्षेत्र का काम जल्दी निपटा सकते हैं उपयुक्त विशेषज्ञ को उपयुक्त कार्य पर नियोजित किया जाना है। मान लीजिए—एक अधिकारी पाठ्य पुस्तक रचना का कार्य शीघ्र पूरा कर लेता है या करवा लेता है, इसी प्रकार दूसरा अधिकारी या प्रशासक शैक्षिक शोध का कार्य कुशलता के साथ देख सकता है तो उसे क्यों जिला शिक्षा अधिकारी या प्रशासक बनाकर असंताप का शिकार बनाया जाय। इस सम्बन्ध म द्वितीय वेतन आयोग (1959) की टिप्पणी कितना महत्त्वपूर्ण है कि विभाग या सचिव ऐसा व्यक्ति हो जो प्रशासनिक योग्यता एव सम्बन्धित मामलों पर व्यापक सरकारी दृष्टिकोण के साथ उस क्षेत्र विशेष म तकनीकी पृष्ठभूमि भी रखता हो। ऐसा माना जाता है कि 'बिना शिक्षण वृत्ति म व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त किए कोई भी

---

1 कुछ राज्यों म इस पद को विद्यालय निरीक्षक के नाम से सम्बोधित किया गया है।

सफल शिक्षा प्रशासक नही बन सकता । अत भारतीय प्रशासनिक अधिकारी को जो प्रशासन म दक्षता प्राप्त कर चुका है, शिक्षा प्रशासक के पद पर देखने के पूव वृत्ति, शिक्षा समस्याएँ शिक्षा का विकास शक्षिक नियोजन, शक्षिक वित्त, शिक्षा समाज शास्त्र आदि का गहन तथा विस्तृत प्रशिक्षण दिया जाय । इसी भाति यदि किसी शिक्षा शास्त्री को शिक्षा प्रशासक बनाना हो तो उसे प्रशासन का विस्तृत प्रशिक्षण दिलाया जाय । [1]

यदि विशेषज्ञ का पद स्थापन उपयुक्त स्थानो पर किया जाता है तो काम जल्दी सम्पन्न होगा, क्योकि निरन्तर एक ही प्रकार का काम करने से अपेक्षित ज्ञान व कौशल अर्जित कर लेता है जिससे सम्भव है काय की गुणात्मकता म भी सुधार हो क्योकि उन्ह अपनी रुचि का काय करने का अवसर मिला हुआ है तथा व्यक्ति को भी सन्तुष्टि मिलती है । प्रशासक की विशेषज्ञता के विकास के लिए जो मूल्य चुकाया गया है उसका भी देश को भुगतान प्राप्त होगा । पर सामान्यज्ञ शिक्षा प्रशासक उच्च स्थान गहन उत्तरदायित्व तथा आकषक वेतन पाते हैं । कई चतुर सामान्यज्ञ शिक्षा प्रशासक व्यावसायिक उन्नति उज्ज्वल एव सुनिश्चित भविष्य की चाह मे शीघ्रता से बढते चलते हैं तथा विशेषज्ञो के काय व अधिकार भी हथिया लेते है । वे सामाजिक प्रतिष्ठा, उच्च वेतन, तथा सेवा सुविधाओ का लाभ उठाते हुए तकनी शियनों के लिए कायक्रम तयार करते हैं । इस भाँति सामान्यज्ञ प्रशासक नीति निर्माता की भूमिका निभाते है । कई बार वे विशेषज्ञो से पत्रो का प्रारूप भी तयार नही करवाते हैं उन्ह मात्र सूचना देने वाले समझते हैं विशेषज्ञो की राय को वे रग दकर नीति निर्माताओ के सामने प्रस्तुत करते हैं । वे नमनीय तथा स्थिति को शीघ्र समझने की सूझ-बूझ के धनी होते हैं, ऐसे प्रशासक काम के प्रति समर्पित होते हुए पर्दे के पीछे से अपनी निष्पक्ष भूमिका का निवाह करते हैं, इसीलिए नीति नियन्त्रण के नाम पर वे विशेषज्ञो को नीची निगाह से देखते हैं । कई बार सहज गति से ऐसा कहते सुना जाता है कि विशेषज्ञ शिक्षा प्रशासक से काम लेना ही सामान्यज्ञ शिक्षा प्रशासक की योग्यता है । यही कारण है कि कई प्रान्तो मे चिकित्सा इन्जीनियर शिक्षा के निदेशक अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यो को बना दिया जाता है फलत सामान्यज्ञ प्रशासक की आज जनता जन प्रतिनिधि अधीनस्थ कमचारी तथा विशेषज्ञ आलोचना करते है और इससे विशिष्ट वृत्ति के सदस्यो में कुण्ठा हीन भावना तथा असन्तोष उत्पन्न होता है ।

---

1 जमना लाल बायती शिक्षा प्रशासन का बदलता हुआ सम्प्रत्यय (अग्रेजी) प्रशासनिका, जयपुर । एच सी एम स्टेट इन्स्टीटयूट आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन खण्ड 3 सख्या 4, अक्तूबर दिसम्बर 1974, पृष्ठ 37

जिला प्रशासन के क्षेत्र म विशेषनता के महत्व से इकार नहीं किया जा सक्ता। श्री पुरुषात्तम लाल तिवाडी के अनुसार "एक बार शिक्षा विभाग न विद्यालय योजना का आदेश निकालते हुए यह निर्देश जारी किया था कि योजना ऐसी बननी चाहिए जिसम खास आदमी की ही जरूरत न रहे या कि आदमी क बदल जाने पर भी वह योजना बरकार रहे—ऐसी उसे होना चाहिए। इस निर्देश म सचिवालयी बुद्धि काय कर रही थी और वह बुद्धि अपने को सुरक्षित कर रही था कि कही याजना के नाम पर ही उसके स्थानान्तरण कर सकने के अधिकार सीमित न हो जाय। शिक्षा के दायर म जब सामान्य प्रशासन की रीति नीति, अवरोध प्रतिरोध और निषेधाचार की कूट बुद्धि हस्तक्षेप करने लगती है तब ऐसे आदेश या निर्देश जारी होते हैं जो शिक्षा मे नवचिंतन, नव प्रयाग, व्यक्ति गुण-लाभ और प्रवृतन की गुञ्जायश को रोक लगा देते हैं। मुझे पता है कि जिस कलम से उपरोक्त आदेश निकला था उसी कलम से एक स्कूल के एक मास्टर को एक विशेष योजना के लिए अनिवाय बता कर उसके वहा से स्थानान्तरण पर रोक लगा दी थी और इस तरह उसी कलम न योजना म आदमी की अहमियत स्वीकार करली थी। किन्तु आदेश तो आदेश ही था। इसलिए उस कलम के स्थानान्तरण के बाद भी वह आदेश प्रभावशाली ही बना रहा और कालान्तर म उस मास्टर के साथ उस योजना का जनाजा निकलना ही था—निकल ही गया।[1]

मान लीजिए—कोई शिक्षक कक्षा म किसी दिन पढाता नहीं है ता ऐसे शिक्षक के साथ रेल म निरथक जजीर खींचने के समान या समय पर लगान जमा न कराने पर क्रमश रेल या राजस्व विभाग के अनुसार दण्ड या जुर्माना या सजा या दोना नहीं दिया जा सकता। ऐसे समय गुजारने वाले शिक्षक को अपराधी मान कर शिक्षा विभाग ही समुचित कायवाही कर पायेगा। अन्य विभाग, सम्भव है, न तो उपयुक्त कायवाही कर पाय तथा न ही इस प्रकार की कायवाही करन म रुचि ले। इसी प्रकार प्राथमिक शिक्षा सभी बालका को मिले पर जिन बच्चा को ग्रामीण माता पिता विद्यालय नहा भेजते उन पर शिक्षा प्रशासन या व्यवस्था जुर्माना तो नही करती। जुर्माना करना तो दूर शिक्षा प्रशासन एसे बालको के लिए "तीन घंटे का स्कूल' या अनौपचारिक शिक्षा देने पर विचार करती है। इससे स्पष्ट है कि वह विशिष्ट प्रकार का प्रशासन है।

---

1 पुरुषात्तम लाल तिवाडी शिक्षा प्रशासन तथा सामान्य प्रशासन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय, बीकानेर के शिक्षा प्रशासन सकाय एव प्रस्तार सेवा विभाग द्वारा फरवरी 1975 म आयोजित काय सगोष्ठी म पठित आलेख से, पृष्ठ 4–5

विशेषज्ञता का महत्त्व इस बात से जाना जा सकता है कि डॉ भामा ने केन्द्रीय लोक सेवा आयोग के माध्यम से अणु शक्ति संस्थान के कर्मचारियों का आप्रवेशन नहीं किया। विशेषज्ञता का अधिकतम लाभ उठाया जाना चाहिए, यही लोक कल्याणकारी राज्य का सिद्धान्त है। इसी सम्बन्ध में प्रशासन सुधार आयोग ने विशेषज्ञों के योगदान की सराहना की है तथा उनकी विशेषताओं को मान्यता दी है। विशेषज्ञ दो दृष्टियों से उपयोगी सिद्ध होता है। प्रथम, यह कि जो कार्य उसे सम्पन्न करने को दिया गया है, उसके लिए वह पूर्ण रूप से उत्तरदायी है तथा द्वितीय, उसकी कार्य पद्धति समग्र संगठन की कार्य पद्धति से पूर्णतया भिन्न है। इस भांति वह संगठन के उद्देश्यों की दिशा में अग्रसर होता है।

शिक्षा प्रशासन में विशेषज्ञों की उपयोगिता का उनके कौशल व अर्जित ज्ञान का अपव्यय नहीं किया जाना चाहिए। किन्तु इसका यह मतलब भी कदापि नहीं है कि जो शिक्षा प्रशासन के क्षेत्र में विशिष्टता प्राप्त अधिकारियों को, जो अधीनस्थ सेवाओं में हैं तथा समुचित अनुभव, सूझ बूझ तथा प्रशासनिक अनुभव भी नहीं है शीर्षस्थ स्थानों पर पदोन्नत किया जाए।

सरकार के विभिन्न पदाधिकारी वर्ग के कार्य भूमिका तथा अधिकार पदाधिकारी के वेतन तथा स्थान से सम्बद्ध होते हैं पर शिक्षा प्रशासन में व्यवहारतः कई बार देखा जाता है कि किसी कार्यालय या संस्थान में समय व पहुँच वाला विशेषज्ञ प्रशासक आते ही उनके अधिकार व कर्त्तव्य बढ़ जाते हैं और सरकार भी ऐसे व्यक्तियों को कई अतिरिक्त कार्य सौंपती रही है। इस प्रकार सरकार भी विशेषज्ञ की कार्य कुशलता अनुभव तथा ज्ञान का लाभ उठाना चाहती है।

विशेषज्ञ शिक्षा प्रशासकों का सामान्य शिक्षकों से सम्मान मिलना चाहिए, उन्हें उनमें मान्यता मिलनी चाहिए। स्वयं विशेषज्ञों को शिक्षकों में फैले इस विश्वास का खण्डन करना चाहिए कि विशेषज्ञ शिक्षा प्रशासक असफल प्रशासक है। शिक्षा प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञता प्राप्त प्रशासकों को उपयुक्त काम नहीं दिया गया तो यह शिक्षा जगत का सबसे बड़ा दुर्भाग्य होगा। वे सामान्य शिक्षा प्रशासक की अपेक्षा अपने धंधे में अधिक निष्ठा के साथ लगे रहना चाहते हैं। उनका कार्य करने के लिए उत्साहवर्द्धक स्थितियाँ मिलनी चाहिए। ऐसा न होने पर उनमें शीघ्र ही भग्नाशा फलती है वे लज्जा अनुभव करते हैं किसा काम में पहल नहीं करेंगे तथा शिक्षा प्रशासन में नवाचारों की परवाह नहीं करेंगे। आदमी केवल रुपये के लिए ही कार्य नहीं करते, सामाजिक प्रतिष्ठा भी महत्त्वपूर्ण है। इसलिए व्यवस्था ऐसी करनी चाहिए कि नीति निर्माताओं को विशेषज्ञों से विचार विमर्श करने का अवसर मिल सके। योजना या नीति निर्धारण के अन्तिम समय विशेषज्ञ की राय को महत्त्व दिया जाय, यदि ऐसा नहीं किया गया तो राष्ट्रीय प्रशिक्षित जनबल की क्षति होगी।

शिक्षा प्रशासन में विशेषज्ञता की स्थिति में, चाहे उनमें कितने ही लाभ हों काम करते समय कुछ अंशों में एकरसता (MONOTONY) उत्पन्न हो जाती है जो कार्य करने की कुशलता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। मितव्ययता के स्थान पर अपव्यय आरम्भ हो जाता है। अन्य विभागों के समान शिक्षा विभाग के विशेषज्ञ अधिकारी साध्य की अपेक्षा साधन पर ही अधिक बल देता है, वह वस्तुओं को उनके समग्र रूप में नहीं देखता है तथा उनका अर्थ व अपने पूर्वाग्रहों पर आश्रित हो कर लगाते हैं। फलतः कई बार विभिन्न विभागों या उप विभागों में तालमेल नहीं रहता है, अधिकारियों में असंतोष उत्पन्न हो जाता है कारण कि पदोन्नति के पर्याप्त अवसर समाप्त हो जाते हैं। कई बार यह भी देखा जाता है कि विशेषज्ञ अधिकारी दम्भी बन जाते हैं तथा उनमें संकुचित दृष्टिकोण उत्पन्न हो जाता है, वे केवल काम को ही महत्त्व देते हैं तथा प्रशासन को गुणवत्तामुखी मानते हैं।

सारांशतः शिक्षा प्रशासक के रूप में विशेषज्ञों का कार्य क्षेत्र एकोन्मुखी है, उनका दृष्टिकोण संकुचित है उनकी सोचने विचारने की परिधि सीमित होती है और (माफ कीजिए) वे अपने विशेषज्ञता के क्षेत्र में कूप मण्डूक होते हैं। बहुत सम्भव है ऐसे शिक्षा प्रशासक सामाजिक तथा आर्थिक कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए उद्देश्यों तथा उनको प्राप्त करने के तरीकों में सामंजस्य भी न बिठा पायें। इसीलिए कई बार यह तर्क दिया जाता है कि जो एक क्षेत्र में विशेषज्ञ शिक्षा प्रशासक है अन्य क्षेत्रों में वही प्रशासक उतना ही हीन तथा अदक्ष प्रशासक सिद्ध होता है। यदि कहीं यह स्थिति प्राप्त होती है तो निश्चय ही कहीं न कहीं सकारात्मक प्रयत्नों की कमी रही है। यदि किसी शिक्षा प्रशासक में कोई न्यूनता या हीनता पायी जाती है तो स्पष्ट है कि शिक्षा आयोजन तथा शिक्षण वृत्ति में तालमेल नहीं है, उनका विकास त्रुटि पूर्ण हुआ है और इससे अधिक कि उच्चाधिकारियों ने उनको अपने वृत्तिक जीवन में न्यूनताओं को दूर करने के लिए उपयुक्त अवसर उपलब्ध नहीं किए हैं।

महत्त्वपूर्ण यह है कि विकासोन्मुखी एवं बहुमुखी शिक्षा प्रशासनिक व्यवस्था में विभिन्न सरकारी पदाधिकारियों के बीच भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए। भेद तो वास्तव में योग्य तथा अयोग्य के बीच, कर्त्तव्य निष्ठ एवं परिश्रमी तथा केवल समय गुजारने वाले शिक्षा प्रशासकों के बीच करना चाहिए।

यदि शिक्षा प्रशासन में विशेषज्ञता का लाभ उठाना है तो उन्हें समुचित अभिप्रेरणा भी देनी होगी। केवल आर्थिक प्रोत्साहन ही सब कुछ नहीं है अन्य सेवाओं के साथ समानता की भावना अपने व्यवसाय में सम्मान की भावना एवं गौरवानुभूति जगाई जानी चाहिए उनकी विशेषज्ञता का आदर करना चाहिए मान्यता मिलनी चाहिए। इस विचार का विकास किया जाना **चाहिए** कि शिक्षा

विभाग राष्ट्र निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण विभाग है तथा वह अन्य किसी विभाग से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

वेतन शृंखला इस प्रकार संयोजित की जानी चाहिए कि बिना प्रशासकीय उत्तरदायित्व ग्रहण किए भी आशार्थी को उस क्षेत्र म उच्चतम स्तर तक पहुँचने का अवसर मिल सके। समय समय पर वेतनमानो म संशोधन एवं परिवद्ध न हो जो क्रमानुसार वृद्धि की ओर अग्रसर हो।

एक ऐसे प्रशासक वग का आवश्यकतानुरूप विकास किया जाना चाहिए जिसम प्रशासनिक चिकित्सक अथवा इञ्जीनियर प्रशासक अथवा प्रशासनिक शिक्षक सम्मिलित हो सकें। प्रयत्न यह हो कि मेधावी आशार्थियो का चयन हो तथा उनका समुचित दिशा म विकास हो। समन्वयक पूरे प्रशासनाधिकारियो के समूह मे से स्वत दीख पडे। उसका चयन किसी पूव निर्धारित पदाधिकारियो की श्रेणी म से न हो।

शिक्षा के क्षेत्र मे जसा कि पहले कहा गया है सामान्यक तथा विशेषज्ञ प्रशासक म कोई विरोध नही है, दोनो ही शिक्षको के लिए अमूल्य निधि सिद्ध हो दोनो ही प्रशासको से अधिकाधिक लाभ उठान का एकमात्र यही तरीका है कि दोनो जनहित के दृष्टिकोण से काय करें—एक दूसरे के साथ कदम से कदम मिला कर आगे बढें तथा उनम ऊँच नीच की भावना का विकास न होने दिया जाए।

———

13 युद्ध : शान्ति शिक्षा अर्थतन्त्र

शान्ति कितना प्यारा शब्द है ! कितना कल्याणकारी शब्द है ! इसके दूसरी ओर युद्ध कितना भयानक एव कितना वेदनासूचक । दोनो ओर छोर पर हैं । प्राय युद्ध को शान्ति का विलोम शब्द कहा जाता है । पर गौर से देखने पर ज्ञान होता है कि शान्ति तथा युद्ध दोनो शब्दो म ससार की सभी वस्तुएँ समाविष्ट नहीं होती है । युद्ध न होने की स्थिति म भी सम्भव है शान्ति न हो । दूसरे शब्दो म युद्ध न हो तो शान्ति होगी ही । यह कोई आवश्यक नहीं है । कई लेखक शान्ति को नियुद्ध की स्थिति से परिमापित करते हैं पर हर स्थिति मे ऐसा कहना सही नहीं हो सकता । इससे अधिक वे शान्त शब्द की व्यावहारिक परिभाषा की आवश्यकता ही नही समझते हैं । निःशस्त्रीकरण का अर्थ भी इसी भांति शान्ति नहीं है । शस्त्र न हो तो शान्ति होगी ही, यह भी कोई आवश्यक नहीं है । इसका एक अन्य अर्थ शस्त्रो पर होने वाला खर्च सहन न कर सकना भी हो सकता है । एक समय था जब दूसरो को सघर्ष की भट्टी म झोकना तथा दूसरे आक्रान्ताओ के सघर्ष को सहन न करना निःशस्त्रीकरण समझा जाता था ।

दो या दो से अधिक राष्ट्र अपने भौतिक साधनो के बल पर क्रिया प्रतिक्रिया या प्रतिस्पर्द्धा द्वारा भुखमरी, निधनता, रोग, प्राकृतिक प्रकोप सामाजिक अन्याय को प्रोत्साहन देते हैं, यही शीत युद्ध है तथा प्रगति समृद्धि एव न्याय के बिना शान्ति नही मिलती है । आर्थिक होड तब तक समाप्त नहीं होगी जब तक कि अस्त्र शस्त्र की होड चल रही है जिसके फलस्वरूप आज विश्व के सामने रूस चीन विवाद भारत चीन सीमा विवाद भारत-पाकिस्तान विवाद बगला देश का प्रश्न बर्लिन व जर्मनी का एकीकरण वियतनाम की समस्या अरब इजराइल विवाद, दक्षिणी अफ्रीका की रग भेद नीति आदि ऐसी समस्याएँ बिना हल हुए अधर म झूल रही हैं कि जिनसे कभी भी तृतीय विश्व युद्ध की घोषणा की जा सकती है ।

युद्ध को जविक आवश्यकता बताया जा सकता है । जब अस्तित्व के लिए सघर्ष आरम्भ होता है तो अनुपयुक्त या अवांछनीय या निर्बल व्यक्ति समाज से अलग हो जाते हैं । समाज म मित्र मण्डली मे समञ्जित होने पर ही उसे प्रगति के शिखर पर पहुँचने म मदद मिलती है पर चरमोत्कर्ष तक पहुँचने के लिए भी रास्ते समाज सम्मत ही चुनने पडते हैं ।

आज जबकि विभिन्न राष्ट्रों में संघर्ष होते हैं तो सफलता दिलाने वाली कार्यक्षमता कई घटकों से प्रभावित होती है जैसे घटकों की संख्या उनका समुचित एवं निकटता समन्जन, अस्त्र शस्त्रों की उत्तमता एवं नागरिकों का मनोबल। मनुष्य केवल हाड मांस का भौतिक पुतला मात्र ही नहीं है बल्कि वह कई बार अपनी जन्मजात प्रवृत्तियों एवं भावनाओं के अनुसार भी कार्य करता है। युद्ध के समय इनका बड़ा महत्त्व है।

कनाडा की शांति शोध संस्थान के नारमन एलडार के अनुसार युद्ध का निश्चय किया जा सकता है देश में अस्त्र शस्त्रों के निर्माण के स्तर एवं उनकी वृद्धि से। उनका यह भी कहना है कि युद्ध की 50 प्रतिशत आशंका शस्त्रों पर सामान्य से अधिक व्यय होते ही बढ़ जाती है।

राष्ट्रों के तनाव अस्त्र शस्त्र निर्माण को प्रोत्साहन देते हैं जिसके फलस्वरूप क्या यह माना जाय कि शस्त्र संग्रह युद्ध का घातक है। मूलतः शस्त्रीकरण तथा युद्ध साइकिल के पहिये के समान चलने वाला तन्त्र है। इस विचार को यों समझाया जा सकता है। मान लीजिए कि कोई राष्ट्र प्रारम्भिक स्तर पर असन्तुष्ट है ईर्ष्या द्वेष बढ़ता है, महत्त्वाकांक्षाएँ बढ़ती है नादानी बढ़ती है मूर्खता बढ़ती है जिससे राष्ट्र शस्त्रों की तैयारी करते हैं। यहाँ यह सम्भव है कि राष्ट्र का उद्देश्य अपनी सुरक्षा की गारण्टी करना है पर अन्य राष्ट्र उसको सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। इस प्रकार विश्व के राष्ट्रों में सन्देह से सन्देह घृणा से घृणा अविश्वास से अविश्वास तथा द्वेष से द्वेष बढ़ता है। फलतः अन्य राष्ट्र भी शस्त्रों की तैयारी आरम्भ कर देते हैं। जब तक एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की शस्त्र सम्बन्धी तैयारी देखता है तो वह अपनी तैयारी की गति को और भी तीव्र कर देता है तथा यही गति आपसी प्रतिस्पर्द्धा या होड़ का स्थान ले लेती है। आज रूस तथा अमेरिका में यही होड़ लगी हुई है। दोनों एक दूसरे की आलोचना करते हैं। मानव हित के रक्षार्थ इन दोनों देशों में मैत्री सम्बन्धों का विकास करना होगा। इसी में मानव का हित है तथा विश्व सभ्यता सुरक्षित रह सकती है।

एलडार के अनुसार अस्तु तनाव या प्रारम्भिक स्तर दो देशों के विचारों में असमानता है जिसके आधार पर वे एक दूसरे को शत्रु ठहराते हैं। इसके दूसरी ओर दो सर्वाधिक सन्तुष्ट देश किसी भी महत्त्वहीन बात पर झगड़ सकते हैं तनाव पैदा कर सकते हैं, मनोमालिन्य बना सकते हैं। जिस प्रकार सम्पृक्त घोल से दाने बनते हैं इस घोल में वस्तु को और मात्रा नहीं घुलती, उसी प्रकार पूर्ण रूप से सन्तुष्ट देश भी झगड़ने को उधार आते हैं।

शिक्षा का योगदान

शिक्षा का ध्येय मानस का विकास करना है, बालक के सोचने विचारने का क्षेत्र विस्तृत बनाना है, बडे लाभ के लिए छोटे लाभों का त्याग करना सिखाना है, बालक को जिम्मेदार नागरिक के रूप मे तयार करना है वह कुशल उपभोक्ता बने अपने पडोसियो के साथ रहना सीखे उनके सुख दु ख म सहायक हो सके। तात्पय यह है कि बालक का शिक्षा से बौद्धिक शारीरिक एव आत्मिक विकास प्रकृतिदत्त सीमाओं तक अधिकतम होना चाहिए। एक बार एटली ने तो यहाँ तक कह दिया कि युद्ध मानव के मस्तिष्क मे पदा है अत मानव के मस्तिष्क को शान्ति से रहने के लिए प्रशिक्षित किया जानी चाहिए।

शकराचाय ने भारतीय जन जीवन म धार्मिक प्रभाव को स्वीकार किया। उन्होने द्वारिका बद्रिकाश्रम, रामेश्वरम तथा जगन्नाथपुरी म मठ स्थापित कर देश को एकता के सूत्र मे बाँधने का सराहनीय प्रयास किया। कई बार नागरिक देश का भाषा वार विभाजन करने का नारा बुलन्द करते हैं। पर वास्तविकता यह है कि देश म बुद्ध जनों का प्रवाह भाषा की आड लेकर नहीं रोका जाना चाहिए। प्रशासन की सुविधा के लिए तो देश को विभिन्न इकाइयों म बाँटना ही पडता है। देशी रियासतों का एकीकरण हुआ। भाषाओं के अनुसार देश का इकाइयों मे विभाजन सराहनीय नही कहा जा सकता। विस्तृत उप विभाग मे भौतिक स्थिति एव जलवायु की एकरूपता की आशा नही की जा सकती है। पर इतना होते हुए भी अनेकता म एकता के दर्शन होते हैं। इसीलिए कोठारी शिक्षा आयोग (1964–66) ने कुछ ख्याति प्राप्त विश्व विद्यालयों के कुछ महत्त्वपूर्ण विभागों मे सतर्कतापूवक उच्च स्तर बनाए रखने का सकेत किया है। इसीलिए सभी शक्षिक कायक्रमों म देश की एकता को प्रोत्साहन देने का ध्यान रखा जाना चाहिए।

आकडों के अनुसार शिक्षा का बहुत विकास हुआ है शिक्षण सस्थाएँ असख्य हो गई हैं। पर राष्ट्रीय चरित्र का बहुत कम विकास हुआ है। आज भी हम सार्व-जनिक नल से पानी बिखरता हुआ देखकर बद करना पसन्द नहीं करते हैं, नये बनने वाले मकान की ईटें रातोरात चुरा ली जाती हैं। राष्ट्र की आशाओं म वृद्धि हुई है पर स्तर के बारे म कुछ नही कहा जा सकता है। नागरिकों को नेतृत्व की शिक्षा मिली है पर उपयुक्त नेतृत्व की नही, उनके हाथों म देश कितना प्रगति कर सकेगा ? यह विचारणीय प्रश्न है। उनकी शक्षिक नीतियों का प्रभाव आने वाले दशकों म स्पष्ट होगा। आज भी हर स्तर पर अदक्षता दखी जाती है। शिक्षा की सबसे नीचे वाली सीढी इसका प्रत्यक्ष शिकार है। प्रशासकों की इच्छानुसार निर्मित पाठ्यक्रम के माध्यम से जिन्होंने शिक्षा पायी है वे ही कुछ व्यक्ति प्रभावी पदों पर पहुँच गए हैं। फलत पूरे वातावरण पर ही अदक्षता का साम्राज्य छाया हुआ है।

व्यवसायो मुखी शिक्षा की चर्चा हर कहीं की जाती है, पर वास्तव म इस क्षेत्र मे कुछ काय हुआ हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। भाषायी विभाजन स दश का भला नहीं हो सकता। हम उच्च स्तर का विनान तथा अद्यतन तकनीक सीखन को तत्पर हाना चाहिए। इसके लिए केवल भारतीय भाषाओ पर भी निभर नहा रहा जा सकता। अंग्रेजी के उन्मूलन से, निश्चय ही, भार हल्का हुआ है तथा उपाधि का अजन सरल हो गया है।

सनिक शिक्षा को अनिवाय न बनाना सम्भवतया एक बडी त्रुटि है। इससे व्यवहारो मे परिमाजन एव अनुशासन को प्रोत्साहन मिलता है। विद्यार्थियो म समाज सेवा के कार्यो मे रुचि बढाई जानी चाहिए। कोई अवाछनीय काय विद्यार्थी करें ही यह उनकी प्रकृति म नहीं है। किसी नवयुवक से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह सन्यासी की तरह दुनिया के सब दु ख दद भूल जाएगा। कितने चोटी के नेता रचनात्मक काय कर रहे हैं? समाजोपयोगी काय करन की आदत बचपन से ही डाली जानी चाहिए।

देश को हर विपम परिस्थिति के लिए तयार रहना चाहिए। देश को कृषि व औद्योगिक मोर्चो पर भी सजगतापूवक आग बढते रहना चाहिए। दश की सना की तीनो प्रकार की सेनाओ म सामजस्य एव समय समय पर विचारो का आदान प्रदान होते रहना चाहिए। विद्यार्थियो का इन सब कार्यों क लिए प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। दश म एक के बाद एक आयोग व समितिया बनती जा रही हैं, पर उनकी केवल वे संस्तुतियाँ ही मानी जाती हैं जो प्रशासकों के लिए उपयुक्त है उनके विचारो स तालमल बठता है।

शाति का अथ शास्त्र

प्राय व्यवहार मे देखा गया है कि इन दोनो शब्दो की व्याख्या करने से समझने की अपेक्षा असमजस या उलझन ही अधिक पदा हुई है। शाति शब्द का अथशास्त्र से भी कुछ सम्ब ध है, इसे सही रूप म समझने का प्रयत्न करना चाहिए। शाति एक प्रकार का खेल है तथा इस खेल म कुछ खिलाडियो की जरूरत होनी है। इन खिलाडियो को खेल के नियम मानते हुए खेल खेल की भावना से खेलना है अन्यथा खेल ही नहीं चल पाएगा। न केवल यह वरन सभी खिलाडियो का अपने दल के भले के लिए कुछ न कुछ त्याग करना होगा, योगदान भी करना होगा।

कई देश शस्त्र निर्माण के क्षेत्र मे बहुत पिछडे हुए हैं। वहाँ की शिक्षा का उस क्षेत्र म योगदान शून्य है। पर इसकी किसी दूसरे क्षेत्र म क्षतिपूर्ति हो सकती है। रेलगाडी स्वत त्रतापूवक माल या सामान एक जगह से दूसरी जगह ले जाती है चाहे वे विदेशो के सामान की शीघ्र भारवाही न करती हो।

सैनिक शक्ति का भी अपना महत्त्व है। सेना में सभी धर्म या जाति के व्यक्ति होते हैं। केरल एवं त्रिपुरा के सैनिक समान गति एवं मात्रा से युद्ध में कन्धे से कन्धा मिला कर लड़ते हैं। युद्ध से यह पाठ सीखा जाना चाहिए कि देश की सुरक्षा हेतु देश के हर भाग के नागरिक समान रूप से उत्तरदायी हैं। देश की सुरक्षा हेतु यदि सेना में जाति, धर्म, वर्ग, भाषा, क्षेत्रीयता के अनुसार विचार होने लगे तो देशों के मानचित्र ही बदल जायें। यातायात के शीघ्र मालवाही साधनों से देश का कोई भाग प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

शान्ति तथा अर्थशास्त्र से गुंथी हुई अर्थतन्त्र के समायोजन की समस्या भी महत्त्वपूर्ण है। यदि एक बार निःशस्त्रीकरण की स्थिति पैदा हो गई तो उत्पादन तथा अन्तर-व्यवसाय के नये रूप प्राप्त होंगे। प्राविधिक विकास का यह अर्थ कदापि नहीं है कि शस्त्रों का विकास रोका जाए या उन पर नियन्त्रण लगाया जाए। पर बड़ी-बड़ी फौजों को रखना तथा युद्ध सामग्री पर अनाप सनाप खर्च करने से अन्य कई आवश्यक कार्यों पर खर्च करने से रुकना पड़ता है। यदि कोई राष्ट्र अपनी आय का 10 प्रतिशत भाग भी युद्ध तथा युद्ध सामग्री पर खर्च करे तो अन्य कई महत्त्वपूर्ण काम रोकने पड़ते हैं। डॉ० गांगुली के अनुसार पूर्ण तथा सामान्य निःशस्त्रीकरण अन्य दो समस्याओं को जन्म देता है सामान्य सतुलन, आर्थिक स्थायित्व, विकास के लिए निश्चय तथा शीत युद्ध के सदर्भ में भौतिक तथा मानवीय समस्याओं का निश्चय करना। सामान्य निःशस्त्रीकरण की सम्भावना ने शोध का एक नया क्षेत्र अर्थशास्त्र को दिया है जिस पर पाश्चात्य देशों में बहुत कुछ लिखा जा रहा है, जिसमें लाभ उठाया जाना चाहिए। शांति के विकास हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयासों का खुल कर प्रचार नहीं किया गया है। शांति की स्थापना के लिए पारस्परिक व संतुलित प्रयास किए जाने चाहिएँ।

अर्थतन्त्र की शक्ति

अर्थशास्त्र का एक ऐसा भाग भी है जिसमें शक्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। शान्ति के ऊपर दिए गए विवेचन को ध्यान में रखते हुए प्राप्त परिस्थितियों में, परिवर्तन के लिए आग्रह पर यदि जोर दिया जाए तो प्रश्न उठता है कि 'क्या विद्यमान अर्थतन्त्र में शांति सम्भव है या अधिक विकास तथा प्रगति के लिए जो तोड़ कर प्रयत्न करना चाहिए। कई व्यवस्थाओं या उप व्यवस्थाओं में पाश्चात्य विचारधारा के अनुसार प्रतिस्पर्द्धा बनी रहती है। इस वक्त हर घटक अपना अपना प्रभाव बताता है जो व्यक्ति या राष्ट्र इस प्रकार की व्यवस्था नहीं कर सकते, उन्हें कष्ट होता है, उसे शीघ्र ही निकाल दूर किया जाता है तथा इस समय वास्तव में आर्थिक क्रियाएँ प्रतिस्पर्द्धा से दूर हट जाती हैं जो पाश्चात्य ढंग के अर्थतन्त्र में कुछ सीमा तक डार्विन का विकासवादी सिद्धान्त आशावित के रूप में परिभाषित किया जाता है। पर

स्पर्द्धा भी सीमित है। अपूर्ण बाजार से, एकाधिकार से, वस्तु की पसदगी से या अन्य तरीको से प्रतिस्पर्द्धा पर नियत्रण पाया जा सकता है तथा ऐसी क्रिया अपसी सम्बन्धो मे परिवर्तन लाती है। ऐसा परिवर्तन शैक्षिक प्रक्रिया एव सामाजिक इञ्जीनियर लाता है। शान्ति की अपनी परिभाषा से दूर रूप में मौन भाव करने के तरीके ने प्रभाव दल के रूप मे प्रदर्शन किया है। सामान्य काल मे श्रम का शोषण, बेरोजगारी, मुद्रा प्रसार स्वचालन (AUTOMATION) विज्ञापन एव अयाजित अपव्यय ने आधुनिक देशो के सम्मुख अशान्ति का वातावरण प्रस्तुत किया है।

विकासोन्मुख अर्थतन्त्र पर ध्यान देने से ही चित्र स्पष्ट होता है। कुछ दशको पूर्व जो गाव स्वावलम्बी थे अब वे परिवर्तन के लिए तत्पर हैं। एकीकरण तथा आधुनिकीकरण के विकास के साथ साथ नवीन गणतन्त्र में प्रतिस्पर्द्धा का जन्म होता है। विकसित व निर्धन देशो में निरन्तर अन्तर बढता जा रहा है। विशिष्ट योग्यता की सही उपयोगिता का जब विचार करते हैं तो राजनीतिज्ञो के सामने केवल एक ही विकल्प ब्रेन ड्रेन का रहता है। वास्तव में, विकास के लिए किए गए बहुत सारे कार्य तथा प्रयत्न जडत्व की स्थिति मे अशान्ति का नाश करके वर्तमान जीवन के प्रति असन्तुष्ट होकर परिवर्तन लाते हैं तथा नये तरीके स्वीकार करते हैं। इसी भाति असतुलित विकास भी अशान्ति लाता है।

शान्ति के लिए क्या न अन्य तरीको पर विचार किया जाए। सामान्य सभावित नव आर्थिक विकास पर नये दृष्टिकोण से देखा जाए। क्या समृद्धि तथा अशान्ति की अपेक्षा गरीबी में रहना अच्छा है? हुआ यह कि इन प्रश्नो पर नीति बनाने वाला तथा आर्थिक विकास की योजनाओ के बनाने वालो ने ध्यान ही नहीं दिया है। *ये प्रश्न आज महत्वपूर्ण तथा चुनौती देने वाले हैं। सभावनाओ पसदगियो* एव समाज के उत्तरदायित्वो का ज्ञान रखने वाला तथा मान निर्धारण करने वाला अर्थशास्त्री चुनौती का सामना करने के लिए बुलाया जाता है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि आर्थिक विकास के प्रश्नो का अर्थशास्त्र को शुद्ध विज्ञान मानकर उत्तर नही दिया जा सकता। विज्ञान के रूप में अर्थशास्त्र केवल दी हुई स्थितियों में अन्तर-सम्बन्धो पर ही विचार करता है तथा बताए हुए कार्यों के अनुसार फल की आशा करता है। केवल अर्थशास्त्री ही मान निर्धारण नहीं करता। उसे इसके लिए आर्थिक समस्याओ के सदर्भ मे विचार करना पडता है। यह ध्यान देने योग्य है कि शान्ति की परिभाषा का समाज के कार्यों के मान निर्धारण मे कोई सम्बन्ध नही है। फिर भी यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि शान्ति की अधिकाश स्थितिया युद्ध की ही स्थितियाँ हैं पर युद्ध की स्थितियो के लिए बिना सोचे समझे ऐसा नही कहा जा सकता। सद्धान्तिक रूप में वास्तविक जीवन से जुडे कई प्रश्नो का निर्णय अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। विज्ञान के रूप में अर्थशास्त्र दैनिक जीवन

की कई बातों की व्याख्याओं तथा उनका वर्णन करने में मदद करता है पर उनकी पसन्गी के चुनाव की मन्द नहीं करता।

केवल यही एक तरीका हो, ऐसी बात नहीं है। कई लोग निश्चित रूप से शांति का अधिक महत्त्व देंगे, वे हर बात का शांति की परिभाषा के क्षेत्र में लाने का प्रयास करेंगे तथा शांति का उदर विस्तृत बतायेंगे। शांति की व्यावहारिक तथा मानयुक्त परिभाषा देने का यही लाभ है। शांति को अत्यधिक महत्त्व देने का अर्थ है कि अन्य अनिवार्य पसंदगियों पर ध्यान न दिया जाए। कोई भी उपभोक्ता सभी वस्तुएँ एक साथ चाहता है और मोटे रूप से शांति जिस व्यक्ति की अपनी क्षमताओं के सन्दर्भ में समझ लेना चाहिए उससे अधिक चाहने पर, अधिक की अभिलाषा करने पर अशांति प्राप्त होती है।

आज आवश्यकता है इस क्षेत्र में अधिकाधिक शोधकार्य करने की, अर्थशास्त्र की शांति पर तथा शांति का अर्थशास्त्र पर प्रभाव आंकने की, समझने की। इस क्षेत्र में जो कार्य हुआ है उसे किसी भी रूप में महत्त्वहीन नहीं बनाया जा सकता तथा न ही महत्त्वहीन बताया जाना चाहिए। शस्त्रास्त्रों की दौड़ में अमेरिका तथा रूस से कौन लोहा ले सकता है? ब्रिटेन तथा फ्रांस का भी यही हाल है। यदि कभी तीसरा युद्ध हुआ तो ये चारों देश ८० प्रतिशत युद्ध सामग्री के निर्माण तथा वितरण के लिए उत्तरदायी होंगे। मोटे रूप में कहा जा सकता है कि शस्त्रास्त्रों पर खर्चा घटाना ही शांति की ओर अग्रसर होना है, शांति के पथ पर आगे बढ़ना है।

14 शिक्षक शिक्षा में नवीन धाराएँ

समाज गत्यात्मक है, उसका स्वरूप विकासमान है। समाज की रीति-नीति से मेल खाने वाले समन्जित नागरिक उपलब्ध हो यह चुनौती शिक्षा के सामने सत्व हो रही है। यदि शिक्षा को इस चुनौती का सामना करना है तो शिक्षक शिक्षा इस सन्दर्भ में और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। इस दृष्टि से शिक्षक शिक्षा को और भी गत्यात्मक होना चाहिए। गत्यात्मक इस अर्थ में कि शिक्षक की शिक्षा पाठ्यक्रम समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुसार अपने में समयानुसार परिवर्तन कर सके। विद्यालयी शिक्षा में सिद्धान्त की अपेक्षा क्रिया पर जोर दिया जा रहा है। इसी का फल है कि शिक्षक प्रशिक्षण (Training) की जगह शिक्षक शिक्षा (Education) कहा जाने लगा है। ऐसा माना जाता है कि प्रशिक्षण तीन आर (Three 'R s) तक ही सीमित है या शारीरिक कौशल (Motor Skill) पर ही जोर देता है। इस दृष्टि से प्रशिक्षण की अपेक्षा शिक्षा का विस्तृत अर्थों में प्रयोग किया जाता है।

सन 1961 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद उसके तत्त्वावधान में राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान तथा क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय और राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान में शिक्षक शिक्षा विभाग शिक्षा के क्षेत्र में सराहनीय प्रयास है। निरीक्षकों तथा अन्य प्रशासनिक अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के लिए केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने नेशनल स्टाफ कालेज फार एजूकेशनल प्लानर्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेटर्स की स्थापना का सुझाव दिया था जो कार्यान्वित किया जा चुका है तथा राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा मण्डल का भी गठन हो चुका है। आगरा तथा हैदराबाद में क्रमशः हिन्दी तथा अंग्रेजी व अन्य भाषाओं के केन्द्रीय संस्थान, विश्वविद्यालय, अनुदान आयोग के साथ शिक्षक शिक्षा की स्थायी समिति, आन्ध्र प्रदेश व राजस्थान में एन सी ई आर टी के समानान्तर राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (SCERT) राज्य शिक्षा संस्थान, राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थान (मुख्यतः प्राथमिक शिक्षा के स्तरोन्नयन के लिए) कुछ प्रान्तों में सर्वांग (Comprehensive) शिक्षा महाविद्यालय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान उच्च शिक्षा का अध्ययन केन्द्र (CASE) बड़ौदा एवं राज्यों में शिक्षक शिक्षा मण्डल को भी नहीं भुलाया जा सकता।

शिक्षक शिक्षा मण्डल पाठ्यक्रम में परिवर्तन, उसकी अवधि, प्रशिक्षण देने का तरीका प्रवेश की पात्रता तय करना, अन्य प्रान्तों के प्रशिक्षण की समतुल्यता तय करने व इसी प्रकार की अन्य बातों के लिए राज्य सरकार को परामर्श देता है। पिछले कुछ वर्षों से किसी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय या शिक्षा महाविद्यालय में स्थायी रूप से काय कर रहे दो प्रशिक्षकों को सभी वेतन एवं भत्ते देकर सी ए एस ई में वर्ष भर के लिए अध्ययनार्थ विश्वविद्यालय अनुदान आयोग प्रतिनियुक्त करता है। इसमें प्रशिक्षक 'CASE' में रह कर अपने आप को विषय सामग्री तथा शिक्षण तकनीक में अद्यतन सम्बद्ध करते हैं।

पिछले वर्ष तक बी एड परीक्षा के पाठ्यक्रम में नीचे लिखे केवल चार प्रश्न पत्र हुआ करते थे—

1 (अ) शिक्षा के सामाजिक तथा दार्शनिक आधार (आ) विद्यालय सगठन

2 (अ) शिक्षा मनोविज्ञान (आ) स्कूल स्वास्थ्य शिक्षा

3 शिक्षा की समस्याएँ

4 दो विद्यालय विषयों में शिक्षण का सैद्धान्तिक विवेचन

पाचवा प्रश्न पत्र पुस्तकालय सेवा निर्देशन समाज शिक्षा बालिकों की शिक्षा पूर्व प्राथमिक शिक्षा आदि विषयों पर वैकल्पिक प्रश्न पत्र के रूप में हुआ करता था। प्रशिक्षकों ने अनुभव किया कि इन प्रश्न-पत्रों के आधार पर प्रशिक्षणार्थी का समग्र रूप से प्रशिक्षित नहीं किया जा सकता अत प्रश्न पत्रों की संख्या बढ़ाकर छ कर दी गई है—

1 शिक्षा के सामाजिक-दार्शनिक आधार

2 शिक्षा मनोविज्ञान

3 विद्यालय सगठन निर्देशन तथा विद्यालय स्वास्थ्य शिक्षा

4 शिक्षा की समस्याएँ

5–6 दो विद्यालय विषय में शिक्षण का सैद्धान्तिक विवेचन (पृथक-पृथक प्रश्न-पत्रों में)

पाँचवा वैकल्पिक प्रश्न पत्र अब भी पूर्ववत चालू है पर अब वह प्रश्न-पत्र पाँचवाँ न होकर सातवाँ रहेगा। कुछ विश्वविद्यालयों में पाँचवें तथा छठे प्रश्न पत्र में विषय की शिक्षण विधि के साथ विषय की पाठ्य-सामग्री भी जोड़ दी गई है। ऐसा इसलिए किया गया है कि प्रशिक्षणार्थी विषय सामग्री के प्रति लापरवाह न हो जायें तथा निरन्तर उसके सम्पर्क में बना रहे।

मई विश्व विद्यालया मे 'शिक्षा की समस्याएँ" प्रश्न-पत्र के स्थान पर 'शिक्षा का इतिहास' पढाया जाता है। कुछ विश्वविद्यालयों म उदाहरणार्थ आगरा विश्वविद्यालय म सभी प्रशिक्षणार्थियों को शक्षिक शोध विधि का प्रारम्भिक ज्ञान भी कराया जाता है। जोधपुर विश्व विद्यालय म शक्षिक मूल्यांकन पर स्वतन्त्र रूप से एक प्रश्न-पत्र की व्यवस्था है। इसी भांति B T or L T की जगह बी एड नामकरण हो रहा है। कुछ शिक्षक प्रशिक्षक शिक्षा का समाज शास्त्र, शिक्षा का अर्थशास्त्र विषय भी पाठ्यक्रम म जोडने का आग्रह कर रहे हैं। इसी भांति पिछले कुछ दिनो से एक विषय के रूप म जनसख्या शिक्षा भी शिक्षक शिक्षा म जोडने का प्रयास किया जा रहा है।

टगार के अनुसार शिक्षक को सदव पढते रहना चाहिए। इस दृष्टि से शिक्षक प्रशिक्षण की उपाधि प्राप्त करना शिक्षा का अन्त नही है, इसे तो काय का आरम्भ मानना चाहिए। इसका अथ यो भी लिया जा सकता है कि शिक्षण व्यवसाय ही नही है बल्कि एक सेवापूर्ण धधा है। शिक्षक शिक्षा जीवन भर चलती रहनी चाहिए। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अन्त कालीन शिक्षा शिक्षक का अभिन्न अग बन गया है। सवत्र यह मान लिया गया है कि शिक्षण व्यवसाय म प्रवेश के पूव की शिक्षण सम्बन्धी शिक्षा पर्याप्त नही है। इस दृष्टि स सेवा प्रसार विभाग, कायगोष्ठी, अध्ययनावृत, पत्राचार अश कालीन पाठ्यक्रम, मल प्रदशनी फिल्म शो, विज्ञान क्लब समाचार छोटे छोटे सम्बन्धित सामग्री पर प्रकाशन महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। विद्यालयों तथा महाविद्यालयो म कार्य कर रहे सेवा प्रसार विभाग सेवारत शिक्षको के व्यावसायिक विकास के लिए अपने द्वार सदव खुले रखते हैं। वे वहा आयें तथा अपना ज्ञान, कौशल तथा दक्षता बढाएँ। सेवा प्रसार विभाग भी समय समय पर इन शिक्षको म साहित्य वितरित करता रहता है। प्रत्यास्मरण पाठ्यक्रम ग्रीष्मकालीन संस्थान, सन्ध्या कालीन कक्षाएँ व अन्य ऐसे ही कायक्रम स्थायी रूप ले चुके है। आवश्यकता इस बात की है कि इनका शक्षिक मूल्य तथा उपयोगिता बढाई जाए। यह काय बहुत आसान है यदि विद्यालय प्रशिक्षण सस्थान तथा राज्य शिक्षा विभाग, मिलकर लक्ष्यो को ध्यान म रखत हुए काय की योजना बनाए। नई पुस्तकें, प्रकाशन, पत्र पत्रिकाए, शिक्षण के नए सुधारे हुए तरीके तथा प्रविधियाँ रुचिसम्पन्न शिक्षक की मदद करती हैं। शिक्षाविद अब पचपदीय सोपान की जगह इकाई योजना पर आग्रह कर रहे हैं। प्रशिक्षणार्थियों पर व्यक्तिगत ध्यान देने के लिए ट्यूटोरियल क्लासेज की भी व्यवस्था की जा रही है। परीक्षा का सम्प्रत्यय भी बदल रहा है। परीक्षा की अपेक्षा मूल्यांकन पर जोर दिया जा रहा है। मूल्यांकन सतत चलने वाली प्रक्रिया है तथा विस्तृत अर्थों म ली जाती है। इसके विपरीत परीक्षा शब्द सकुचित अर्थों म लिया जाता है वस परीक्षा शब्द मूल्यांकन म समाविष्ट हो

जाता है। मूल्यांकन का उद्देश्य केवल छात्राध्यापक का परीक्षण करना ही नहीं है बल्कि उसका उद्देश्य छात्राध्यापक को प्रदत्त अधिकतम सीमा तक विकास करने में मन्द देना भी है। कुछ विश्वविद्यालयों में परम्परागत निबन्धात्मक परीक्षा के साथ साथ वस्तुनिष्ठ प्रश्न पत्र भी जोड़े गए हैं। छात्राध्यापकों के सामुदायिक या सतत जीवन का मूल्यांकन भी जोर पकड़ता जा रहा है। मूल्यांकन को सतत प्रक्रिया मान लिए जाने पर केवल एक वार्षिक परीक्षा का महत्व कम होता जा रहा है। जहां तक मूल्यांकन व परीक्षण का सम्बन्ध है छात्राध्यापकों के सत्र भर का कार्य तथा उपलब्धियों पर विचार किया जाना चाहिए। कई विश्वविद्यालयों में आन्तरिक मूल्यांकन का प्रभाव पूर्ण स्थान पा सका है। आन्तरिक मूल्यांकन चूंकि शिक्षकों की मनोदशा पर निर्भर करता है तथा वस्तुनिष्ठ न हो पाने के कारण उदासीनता से देखा जा रहा है। जो भी हो सिद्धान्त आन्तरिक मूल्यांकन निरर्थक नहीं है। शिक्षकों के कार्य तथा व्यवहार का विश्वास किया ही जाना चाहिए। इस आधार पर आन्तरिक मूल्यांकन का विकास किया ही जाना चाहिए। कुछ विश्वविद्यालयों में आन्तरिक मूल्यांकन के अंकों को श्रेणी निर्धारण में नहीं गिने जाते क्योंकि इनमें पक्षपात बरता जाता है तथा स्थानीय शिक्षक अंक प्रदान करने में उदारता बरतते हैं। ऐसा कहा जाता है। यदि कहीं ऐसा भी है तो इसे न्यूनातिन्यून किया जाना चाहिए तथा इस पर नियंत्रण के तरीके खोजे जाने चाहिएं।

आज से लगभग 25 वर्ष पूर्व ही राधाकृष्णन आयोग ने अनुशंसा की थी कि शिक्षक शिक्षा में व्यावहारिक भाग को उपयुक्त स्थान नहीं दिया गया है। अधिकांश विश्वविद्यालयों में इसे प्रशिक्षण के सम्पूर्ण कार्यक्रम का पांचवां भाग दिया गया है कुल अंकों का पांचवा भाग ही व्यावहारिक पक्ष को दिया गया है। इसका अर्थ यह भी लिया जा सकता है कि शिक्षक तथा छात्राध्यापक अपने समय व ध्यान का पांचवा भाग ही व्यावहारिक प्रशिक्षण के लिए लगाएं। जबकि अच्छा शिक्षक होना इस बात पर निर्भर करता है कि वह कक्षा का किस प्रकार सामना करता है? शिक्षण में किन किन प्रविधियों का प्रयोग करता है? शिक्षण बालकों के लिए कितना रुचिप्रद बनता है? किस प्रकार वह उद्योतन पर सहायक शिक्षण सामग्री तैयार करता है? गुणात्मक सुधार के लिए खण्ड अभ्यासमता (Block Practice Teaching) या इसी प्रकार की अधिक समय की प्रशिक्षण व्यवस्था पर भी शिक्षाविद ध्यान दे रहे हैं। बंगलोर में 1957 में हुई शिक्षक प्रशिक्षकों की परिषद् में यह प्रस्ताव पारित किया गया कि छात्राध्यापकों को एक प्रशिक्षण के भाग दर्शन में किसी स्कूल के प्रधानाध्यापक के पास एक निश्चित अवधि के लिए छोड़ दिए जायें जहां वे स्कूल के कार्यों में भाग लें, विद्यालय संचालन के कार्यों में हाथ बंटायें तथा सामान्यतः सभी शिक्षण कार्य भी पूरा करें। क्योंकि सिद्धान्तों के अध्ययन के साथ साथ व्यावहारिक

प्रशिक्षण ही अच्छा शिक्षक तयार कर सकता है। इसी परिप्रेक्ष्य में यह प्रस्ताव भी पारित किया गया कि सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक कार्य को समान भार दिया जाए महत्त्व दिया गया। विश्वविद्यालयों की अकादमिक परिषदें तथा शिक्षक शिक्षा संस्थानों के प्रधानों के वाक्पीठ। (Forum) को व्यावहारिक कार्य के मूल्यांकन का नया तरीका तयार करना चाहिए।

शिक्षण में अभिस्थापन अन्तर्विषयी विचार तथा अध्यापन विधि में गत्यात्मकता भी शिक्षक प्रशिक्षण में जोड़ जा रहे हैं। शिक्षा में अनुसंधान व प्रयोग पर दिन प्रति दिन अधिकाधिक जोर दिया जा रहा है। बी एस सी बी एड या बी एस सी एड प्रकार के शिक्षक शिक्षा के समन्वित चार वर्षीय पाठ्यक्रम भी क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों में आरम्भ किए गए हैं। इसी प्रकार का एक पाठ्यक्रम बी ए एड कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय ने आरम्भ किया था जो पिछले दिनों बन्द कर दिया गया। पिछले सालों से शिक्षण कार्य में लगे अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए पत्राचार पाठ्यक्रम भी आरम्भ किए गए हैं। केवल दिल्ली के शिक्षकों के लिए दिल्ली स्थित केन्द्रीय शिक्षा संस्थान में सभी क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों तथा राजस्थान के दोनों राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में भी इस प्रकार के पाठ्यक्रम उपलब्ध है। इनमें प्रवेश हेतु अनुभव व योग्यता भिन्न भिन्न है। क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों के साथ एक एक प्रायोगिक विद्यालय भी कार्यरत है जहाँ शिक्षक महाविद्यालय के प्रशिक्षक अनुसंधान तथा शिक्षा में नये प्रयोग कर सकें। गरगोठी की जी के इन्स्टीट्यूट ऑफ रूरल एजूकेशन में तीन वर्षीय शिक्षा पर आधारित ग्राम्य सेवाओं का डिप्लोमा पाठ्यक्रम भी उपलब्ध है।

राजस्थान में प्राथमिक शिक्षक के प्रशिक्षण को अन्य प्रान्तों के प्रशिक्षण के समान बनाने के लिए तथा शिक्षा आयोग (1964-66) की अनुशंसाओं को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम को समृद्ध करके दो वर्षों का बना दिया है। पर प्रशिक्षणार्थियों पर भार न बढ़े इस दृष्टिकोण से दूसरे सत्र का प्रशिक्षण पत्राचार से प्राप्त करना होता है। पर प्रथम वर्ष का प्रशिक्षण संस्थान के केम्पस पर रह कर ही प्राप्त करना होता है। वैसे प्रथम वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त कर प्रशिक्षणार्थी अध्यापन कार्य स्वीकार कर सकते है पर ऐसी स्थिति में उनको अप्रशिक्षित मानकर 110-230 के वेतनमान में 105-00 मात्र पर तब तक कार्य करने दिया जाएगा जब तक कि वे दूसरे वर्ष का प्रशिक्षण सफलतापूर्वक प्राप्त न कर लें। सामुदायिक जीवन का मूल्यांकन भी प्रमाण पत्र में दर्शाया जाने लगा है।

सहगामी क्रियाओं की पुनर्व्यवस्था पर भी विचार आवश्यक है। प्रशिक्षकों से यह आशा की जाने लगी है कि वे छात्राध्यापकों के साथ खेल-कूद व अन्य प्रवृत्तियें

म भाग लें। सभी जरूरत मन्द छात्राध्यापकों को निर्देशन सेवायें उपलब्ध कराई जाएँ। शिक्षकों की सेवा स्थितियों के सुधार के लिए नियुक्ति तथा अनुवर्ती सेवाओं पर शोध की जाए। प्रशिक्षकों को छोटे छोटे प्रयोग एवं प्रायोजनाओं पर काम करने के लिए प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इन गतिविधियों से नवयुवक शोधार्थियों को सूझ बूझ और प्रेरणा मिली है। इन शोधों के निष्कर्षों के आधार पर पाठ्यक्रम, शिक्षण, विधियों, मूल्यांकन तथा अन्य क्षेत्रों में परिवर्तन किए जाने चाहिएँ। इन शोधों से भावी शोध के भी कुछ क्षेत्रों या शीर्षकों की जानकारी मिलती है। शिक्षक प्रशिक्षक को अपने द्वारा किए जाने वाले शोध कार्यों के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, राज्य के शिक्षा विभाग, राज्य शिक्षा संस्थान तथा राज्य के स्कूल शिक्षा बोर्ड या माध्यमिक शिक्षा बोर्ड उदारता पूर्वक आर्थिक अनुदान देते हैं।

शिक्षक प्रशिक्षक को शिक्षा जगत की नवीनतम गतिविधियों में, शिक्षण विधियों में परिवर्तन से परिचित रखने के लिए चलते फिरते पुस्तकालय की सेवाएँ उपलब्ध है। इन्हीं गतिविधियों की जानकारी लम्बे समय से सेवा कर रहे प्रशिक्षकों को सेवा प्रसार विभाग या प्रसार व्याख्यान माला से हो जाती है। पुस्तकालय पठन तथा सहगामी क्रियाओं में सहभागत्वभद्धातिक पाठ्यक्रम में जोड़ा जाना चाहिए। शिक्षण में सामुदायिक साधनों का भरपूर उपयोग किया जाए पर यह भी ध्यान रखा जाना चाहिये कि इससे समाज के वृद्ध नागरिकों से सम्पर्क न टूट जाए। छात्राध्यापकों में मौलिक तथा आलोचनात्मक चिन्तन तार्किक तथा कल्पना शक्ति का विकास किया जाना चाहिए।

कुशल तथा योग्य प्रशासकों की बड़ी कमी है। इसका मुख्य कारण है कि शिक्षा महाविद्यालय या प्रशिक्षण महाविद्यालय तथा सामान्य महाविद्यालय के व्याख्याताओं के वेतन मानों में भारी अन्तर है। इस अन्तर को जितना शीघ्र समाप्त किया जा सके समाप्त करना चाहिए। इससे शिक्षक प्रशिक्षकों की सामाजिक प्रतिष्ठा को ऊपर उठाने में मदद मिलेगी। दो वर्षीय शिक्षाशास्त्र विषय में एम ए या एम एस सी या एम एड पाठ्यक्रम प्रतिभावान तथा योग्य विद्यार्थियों के लिए आरम्भ किए जाने चाहिएँ। ऐसे पाठ्यक्रमों में एम ए या एम एस-सी प्रथम या उच्च द्वितीय श्रेणी वाले विद्यार्थियों को ही प्रवेश दिया जाय तथा पाठ्यक्रम शिक्षण तकनीक तथा पाठ्य सामग्री से निश्चित रूप से समृद्ध रहे। इस विचार के पीछे धारणा यह है कि कोई भी विद्यार्थी एम ए या एम एस सी परीक्षा पास करके बेचलर ऑफ एजूकेशन डिग्री के प्रशिक्षण के लिये प्रवेश हेतु प्रसन्न **नहीं दीखता।** ऐसे पाठ्यक्रमों में पढ़ने वाले छात्रों के लिए उदार [illegible]

नहीं हैं। वे प्रशिक्षण महाविद्यालयो मे शिक्षा तथा शादी के बीच का समय बिताने के लिए प्रवेश लेती हैं। जितनी महिलायें प्रवेश लेती हैं, उनमे से कई तो प्रशिक्षण पूरा ही नही कर पाती हैं तथा कई प्रशिक्षण को अधूरा ही छोड देती हैं तथा जो प्रशिक्षण का सफलतापूर्वक समाप्त करती हैं वे अब भी शिक्षण काय नही अपनाती हैं। इस प्रकार अनिश्चय की स्थिति वाली इन महिलाओ को प्रवेश देने से कई सुपात्र व उपयुक्त विद्यार्थी प्रवेश पाने से वचित रह जाता है क्योकि अनिश्चय वाले विद्यार्थियो के माता पिता या अभिभावक सस्था प्रधान पर एक या अन्य तरीका से प्रवेश के लिए प्रभाव काम मे ले लेते हैं तथा प्रवेश दिलाने मे सफल भी होते हैं। फलत शिक्षण व्यवसाय की हानि के साथ राष्ट्र की हानि होती है। पर ऐसा लगता है कि पिछले कुछ दिना से इन स्थितियो म काफी सुधार हुआ है। पर इस तरफ और ध्यान दिय जान तथा दृढता बरतने की आवश्यकता है।

शिक्षको के बच्चो, भाइयो बहिनो, पुत्रो पुत्रियो का शिक्षक शिक्षा के सस्थान मे प्रवेश के समय वरीयता दी जानी चाहिए क्योकि उनको शिक्षण काय की पृष्ठ भूमि मिली हुई है तथा शिक्षकों की सगत म रहे हैं। पर हर एक उदाहरण मे ऐसा ही हो यह भी जरूरी नही है। अत प्रवेश के लिए चयन के समय सावधानी बरती जानी चाहिए। सहगामी क्रियाओ खेला बालचर, साहित्यिक प्रवृत्तियाँ नाट्याभिनय, वाद विवाद प्रतियोगिताओ मे प्रवेशार्थियो द्वारा बताये उत्कृष्टता तथा कौशल पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। क्योकि इन्ही सब बाता पर उत्तम शिक्षक का विकास निर्भर करता है।

कोठारी शिक्षा आयोग (1964–66) की शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र मे अनुशसाएँ इस प्रकार हैं—

अध्यापक शिक्षा का विश्वविद्यालय के जीवन से आज जो अलगाव है उसके निवारण के लिए, शिक्षण का स्थान शिक्षा शास्त्र से पृथक माना जाकर उसे एक स्वतन्त्र अध्ययन विषय माना जाना चाहिए और उसे प्रथम तथा द्वितीय उपाधि परीक्षा के विषय के रूप म मान्यता मिलनी चाहिए। (707)

कुछ चुने हुए विश्वविद्यालयो मे विश्वविद्यालयो के अन्य शास्त्रो के सहयोग से अध्यापक शिक्षण और शिक्षा म अध्ययन तथा शोध के लिए शिक्षण स्कूलो की स्थापना की जानी चाहिए। (708)

प्रशिक्षणार्थी–अध्यापका द्वारा अभ्यासार्थ अध्यापन की व्यवस्था कुछ ऐसे चुने हुए स्कूलो के सक्रिय सहयोग स की जानी चाहिए। जिनका शिक्षा विभाग से सहयोगी स्कूल के रूप मे मान्यता तथा सामग्री और पर्यवेक्षण की सुविधा के लिए विशेष अनुदान प्राप्त हो और सहयोगी स्कूलो के अध्यापको की प्रशिक्षण शालाओ

मे और प्रशिक्षण शालाओं के अध्यापकों की सहयोगी स्कूलों में परस्पर कुछ अवधि के लिए प्रतिनियुक्ति करने की व्यवस्था की जानी चाहिए। (708)

प्रत्येक राज्य में योजना पूर्वक सर्वांगपूर्ण शिक्षा महाविद्यालय स्थापित किए जाएँ। (708)

प्रत्येक राज्य में एक एक राज्य अध्यापक शिक्षण मण्डल स्थापित किया जाए और जो सभी स्तरों के और सभी क्षेत्रों के अध्यापक शिक्षण से सम्बन्धित सभी छात्रों के लिए उत्तरदायी हो। (708)

अभ्यासार्थ अध्यापन में सुधार करके और उसे पूर्वकालिक छात्रत्व का सर्वांगीण कार्यक्रम बनाकर। (708)

शिक्षण के स्नातकोत्तर वृत्तिक पाठ्यक्रम सुलभ होने चाहिएँ और उनकी आयोजना ऐसी होनी चाहिए कि शिक्षा के शास्त्रीय और व्यावहारिक अध्ययन को बढ़ावा दे सकें और विशेष विषय के ज्ञान और विषय परिचय वाले विशिष्ट क्षेत्रों के लिए अध्यापक तैयार कर सकें। पाठ्यक्रम की अवधि बढ़ाकर तीन वर्ष कर देनी चाहिए। इस स्तर पर गुणवत्ता का ध्यान रखना परम आवश्यक है और इसलिए अध्यापन उन्हीं संस्थाओं में होना चाहिए जिनमें योग्यता प्राप्त अध्यापक और सुविधायें हों। (709)

माध्यमिक प्रशिक्षण कॉलेजों के अध्यापकों के पास दो स्नातकोत्तर उपाधियाँ होनी चाहिए, एक विषय विशेष की और दूसरी शिक्षा विषय की। (709)

मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, विज्ञान, और गणित जैसे विषयों के मान्य विशेषज्ञ ही नियुक्त किए जाने चाहिएँ चाहे उन्हें विशेषज्ञ वृत्तिक प्रशिक्षण प्राप्त न हो। (709)

अध्यापक वृन्द के प्रति सेवा प्रशिक्षण के लिए ग्रीष्मावकाश कालीन संस्थान चलाए जाने चाहिएँ। (709)

जो प्राथमिक अध्यापक अपनी योग्यता सुधारना चाहें उनके लिए पत्राचार पाठ्यक्रम और उदारतापूर्वक अध्ययन छुट्टी की व्यवस्था कराई जाय। (709)

क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, राज्य शिक्षा संस्थान (प्राथमिक शिक्षकों के लिए) राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थान (माध्यमिक शिक्षकों के लिए)।

प्रशिक्षण शालाओं में अध्यापन शुल्क पूरी तरह समाप्त कर दिया जाय और वृत्तिकाओं तथा ऋणों के लिए भी उदारता पूर्वक व्यवस्था की जाए। (710)

अध्यापक शिक्षण में स्तरों की शिक्षा का दायित्व राष्ट्रीय स्तर पर विश्व विद्यालय अनुदान आयोग के पास होना चाहिए और राज्य स्तर पर शिक्षा के स्तरों को ऊँचा उठाने का दायित्व राज्य शिक्षक शिक्षा मण्डल का होना चाहिए। (711)

15 पदोन्नति का आधार-वरिष्ठता या योग्यता ?

सामान्यतया शिक्षकों की भर्ती दो प्रकार से की जाती है। प्रथम, सीधी भर्ती तथा दूसरी, पूर्व से नियोजित निम्न वर्ग के कर्मचारियों या शिक्षकों को, यदि वे वांछित योग्यता रखते हैं तो, पदोन्नति देकर। सीधी भर्ती भी दो प्रकार से की जा रही है—नियोजन कार्यालय द्वारा उपयुक्त प्रत्याशियों की तालिका मंगा कर उनसे साक्षात्कार करके या साक्षात्कार के दिन नियोजन कार्यालय से उपयुक्त प्रत्याशियों को उपस्थित होने की सूचना देकर तथा दूसरी स्थिति में नियोजित करने वाला अधिकारी समाचार पत्रों में रिक्त स्थानों के लिए विज्ञापन दे कर प्रार्थना-पत्र आमन्त्रित करते हैं तथा रिक्त स्थानों के एवं निश्चित अनुपात में प्रत्याशियों को साक्षात्कार के लिए बुला कर चयन किया जाता है। ऐसे प्रत्याशियों से भी कई बार उन्हें अपने को *नियोजन कार्यालय में पंजीकरण करवा लेने तथा पंजीकरण संख्या आवेदन पत्र में* लिखने का भी संकेत किया जाता है।

दूसरी स्थिति में मौलिक रूप से नई भर्ती नहीं होती है। पूर्व से नियोजित निम्न वर्ग के कर्मचारियों का वरिष्ठता या योग्यता के अनुसार (जो भी हो) यदि वे उच्च पद के लिए वांछित योग्यता रखते हैं तो पद स्थापित कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति में इसे भर्ती न कह कर पदोन्नति भी कही जा सकती है। मान लीजिए जिला शिक्षा अधिकारी के यहां कुछ पद द्वितीय वेतन शृंखला के शिक्षकों के रिक्त हैं तो वह एक निश्चित अंश तो सीधी भर्ती से पूर्ति कर लेता है तथा शेष में से निश्चित अनुपात में वह इन शेष पदों को अपने आधीन कार्य कर रहे तृतीय श्रेणी के शिक्षकों तथा उस जिले में पंचायत समितियों में नियोजित तृतीय श्रेणी के शिक्षकों में आवंटित कर देगा। कई बार पूर्व से कार्य कर रहे शिक्षक आवश्यक योग्यताओं के दृष्टिकोण से उपयुक्त संख्या में प्राप्त नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति में उन पदों पर भी सीधी भर्ती से नियुक्त कर लिया जाता है। इसी भांति पंचायत समितियां में द्वितीय *श्रेणी के शिक्षक नहीं होते हैं और यदि शिक्षा विभाग में वरिष्ठ अध्यापकों* के पद रिक्त हैं तो उन पदों की संख्या राज्य में कार्य कर रहे द्वितीय श्रेणी के शिक्षकों (जो स्नातकोत्तर परीक्षा भी उत्तीर्ण हों) तथा सीधी भर्ती में बांट दी जाती है। कई बार आंग्ल भाषा, संस्कृत, विज्ञान वाणिज्य के कार्यरत शिक्षक वांछित संख्या में नहीं मिलते हैं तो शिक्षा विभाग के अधिकारियों को सीधी भर्ती ही करनी पड़ती है।

प्रखर बुद्धि एवं प्रतिभावान शिक्षक सरकारी विद्यालयों में अध्यापन कार्य के लिए आकृष्ट हों तथा अध्यापन-कार्य में रत शिक्षक नौकरी छोड़कर अन्य कार्य ग्रहण न करें, इसके लिए आवश्यक है कि उनके लिए पदोन्नतियों की उचित व्यवस्था हो। फिर भी यह तो निर्विवाद रूप से मानना ही पड़ेगा कि सभी कार्यरत शिक्षक सर्वोच्च पदों पर नहीं पहुँच सकते—क्योंकि उच्च पदों की संख्या मुट्ठी भर होती है। उदाहरणार्थ—राजस्थान में अन्य प्रान्तों की भाँति शिक्षक निदेशक तो कभी बन ही नहीं सकते, (क्योंकि राज्य सरकार के नियमानुसार राजस्थान में शिक्षा निदेशक के लिए I A S उच्चाधिकारी व्यक्ति ही योग्य है।) उससे नीचे के पदों तक वे पहुँच सकते हैं जिनकी संख्या अल्प है, संयुक्त निदेशक के २-३ ही पद हैं। उपनिदेशक के भी महिलाओं सहित ६-७ पद हैं, इसी भाँति विद्यालय निरीक्षक के भी २५-३० पद ही हैं। कार्यरत शिक्षकों की संख्या तो हजारों तक पहुँचती है। इन हजारों शिक्षकों में से इन पदों पर लगभग 40 शिक्षकों की ही तो पदोन्नति हो सकती है। ऐसी स्थिति में स्पष्ट है कि कई व्यक्ति तो शिक्षक के रूप में ही सेवानिवृत्ति प्राप्त करेंगे। तब आवश्यकता इस बात की है कि जिन शिक्षकों को पदोन्नति नहीं मिली है उन्हें यह अनुभव कराया जाना चाहिए कि उन्हें ऊटपटांग ढंग से पदोन्नति से वंचित नहीं रखा गया है और न ही पदोन्नत शिक्षकों को अधिकारी की इच्छा से ही पदोन्नति का अवसर मिला है। यदि अधिकारी अपनी इच्छा से ही, बिना किसी आधार या सिद्धान्त के पदोन्नति करेंगे तो शिक्षकों में नैतिक बल की कमी आ जाएगी, फलतः वे शालाओं में कार्य करने से भी जी चुराएँगे तथा उनका असन्तोष द्विगुणित हो जाएगा। इससे बचने के लिए आवश्यक है कि पदोन्नतियाँ ठोस आधार पर हों।

सामान्यतया पदोन्नति के दो सिद्धान्त व्यवहार में प्रचलित हैं, यथा

1 वरिष्ठता (Seniority) तथा

2 योग्यता (Merit)

वरिष्ठता

इस सिद्धान्त के अनुसार पदोन्नति का आधार यह है कि सम्बन्धित शिक्षक कब से सेवा कर रहा है? इस प्रकार जिस शिक्षक का सेवाकाल जितना अधिक लम्बा होगा, उसकी पदोन्नति उतनी ही शीघ्र होगी। इसे दूसरे शब्दों में यों भी कहा जा सकता है कि एक शिक्षक को अन्य शिक्षकों की तुलना में उच्च वेतन-स्तर या उच्च श्रेणी की वेतन शृंखला में इसलिए पदोन्नति का लाभ दिया जाता है कि उसने अन्य शिक्षकों की तुलना में अधिक समय तक सेवा की है। इस प्रकार वरिष्ठ व्यक्ति को पदोन्नति का लाभ मिलता है।

वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति के लिए तर्क

1 वरिष्ठता एक वस्तुगत एवं यथवत तथ्य है, इसे गोपनीय नहीं कहा जा सकता। पदोन्नति के समय इसे दृष्टि से ओझल नहीं **किया** जाना चाहिए। दो

शिक्षकों के बीच अन्तर को स्पष्ट देखा जा सकता है अत पदोन्नति के परिणाम के दायित्व को मापने की जरूरत नहीं रहती है।

2 इस सिद्धान्त के अनुसार हर शिक्षक को पूर्व निश्चित मानदण्ड के अनुसार देर सवेर क्रमश पदोन्नति का अवसर मिल जाता है। ऐसी स्थिति म यह सही व न्यायपूर्ण सिद्धान्त है। इससे शिक्षकों म सद्भाव तथा नैतिक बल का विकास होता है।

3 पदोन्नति के समय वरिष्ठता सिद्धान्त का दृढ़ता से पालन करने पर राजनीतिज्ञों के हस्तक्षेप को स्थान नहीं मिलता है।

4 वरिष्ठ व्यक्ति दीर्घानुभवी होता है तथा अधिक अनुभव पदोन्नति के लिए मापदण्ड है।

5 शिक्षकों को ज्ञात रहता है कि उनका वरिष्ठताक्रम क्या है तथा सम्भवत कब तक उनकी पदोन्नति हो सकेगी। यह परिणामों का स्पष्ट ज्ञान अच्छे शिक्षकों को सरकारी सेवा म आने को आकृष्ट करता है।

6 वरिष्ठता सिद्धान्त इतना स्पष्ट व सरल है कि शिक्षकों मे पारस्परिक जलन तथा द्वेष की भावना उत्पन्न होने का कोई कारण नहीं रह जाता है। और

7 अन्तिम पर महत्त्वपूर्ण है कि सभी शिक्षक इसी के पक्ष मे हैं।

पदोन्नति का वरिष्ठता सिद्धान्त सभी दोषों से मुक्त हो, इसम कोई कमी न हो आलोचना से मुक्त हो, ऐसी बात भी नहीं है। वरिष्ठता के सिद्धान्त म कई कमियाँ हैं जिनको लेकर यह शिक्षक समाज मे भयंकर असन्तोष का कारण बना हुआ है। असन्तोष के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं—

1 यह सिद्धान्त केवल वरिष्ठता सेवा काय की अवधि पर ही विचार करता है। योग्यता को वरिष्ठता के सामने बलि दे दी जाती है। ऐसी स्थिति में यह अनिवार्य रूप से आवश्यक नहीं है कि वरिष्ठ शिक्षक सदव कनिष्ठ की अपेक्षा योग्य ही होंग। अर्थात वरिष्ठ व्यक्ति योग्य ही हो यह कोई अनिवार्य शर्त नहीं है।

2 इस सिद्धान्त के अनुसार यह भी निश्चय नहीं किया जा सकता कि हर शिक्षक शिक्षा निदेशालयान्तगत उच्च/उच्चतम पदों पर पहुँच ही जाएगा तथा वह वहाँ उचित अवधि तक बना भी रहेगा।

3 यदि पदोन्नति के लिए केवल वरिष्ठता ही एकमात्र आधार रहा तो वे सुधार का कोई प्रयत्न नहीं करेंगे। कारण कि राजकीय तन्त्र म सभी शिक्षक सोचते हैं कि वरिष्ठता की पंक्ति म खडे है समय पर पदोन्नति हो ही जायगी तथा यही सोच कर वे बराबर काय करना बन्द कर देते ह।

4 वरिष्ठता तथा उम्र का संयोग कोई अनिवार्य नहीं है। खास करके उस क्षेत्र में जहाँ कुछ पदों पर सीधी भर्ती होती है तथा कुछ पदों पर पदोन्नति के आधार पर। यदि कोई नवयुवक सीधी भर्ती से किसी अपेक्षाकृत अधिक उम्र वाले कर्मचारी के ऊपर रख दिया जाय तो स्थिति बड़ी उपहासास्पद हो जाती है। कई बार व्यवहार में देखा जाता है कि कर्मचारी उम्र बढ़ने के साथ जीवन की प्रतियोगिता के आदान प्रदान में पिछड़ जाते हैं फलतः वे छोटी-छोटी बातों पर भी असहिष्णु या क्रोधी हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में अधीनस्थ कर्मचारियों की कार्यक्षमता का पूरा पूरा उपयोग नहीं होगा, उनको प्रोत्साहन नहीं मिलेगा तथा वे निरुत्साही हो जायेंगे। यही बात महत्वाकांक्षी लोगों पर भी लागू होगी क्योंकि उनके सम्मान, व्यक्तित्व, साहस, आत्मविश्वास, प्रगतिशील दृष्टिकोण को प्रोत्साहन देने वाले तत्त्व समाप्त हो जायेंगे। इससे एक इस प्रकार का दृष्टिकोण पैदा होता है कि "जो है, जैसा है वैसा बनाये रखो।" तथा इसी में वे आत्म-सन्ताप अनुभव करते हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वरिष्ठता का सिद्धान्त कुछ पूर्व निश्चित गलत मान्यताओं पर आधारित है—

1 एक वेतन शृंखला के शिक्षक लोग पदोन्नति के योग्य होते हैं।

2 वरिष्ठता सूची प्रायः शिक्षकों की उम्र के साथ मेल खाती है इसलिए यह कल्पना करना कि उच्च पदों की संख्या इतनी अधिक है कि सभी शिक्षकों को अवसर मिल जायगा।

3 उच्च पद क्रमशः खाली होते रहेंगे।

यह एक आकाश कुसुम के समान आदर्श स्थिति है जो कभी प्राप्त नहीं हो सकती। व्यवहार में देखा जाता है कि एक वेतन शृंखला के सभी शिक्षक पदोन्नति के योग्य नहीं होते, प्रायः पदोन्नतियाँ कम होती हैं, उनकी प्रक्रिया बड़ी जटिल होती है। सभी शिक्षकों की पदोन्नतियाँ हो जाएँ, इतने पद भी नहीं होते हैं और न ही इतने पदों का सृजन किया जा सकता है।

योग्यता का सिद्धान्त

वरिष्ठता सिद्धान्त का उल्टा योग्यता सिद्धान्त है। इसके अनुसार पदोन्नति के समय शिक्षकों की योग्यताओं तथा उपलब्धियों पर विचार किया जाता है। शिक्षकों ने कितने दिन सेवा की है या उनका सेवाकाल कितना लम्बा है, इस पर कोई विचार नहीं किया जाता। इस सिद्धान्त के अनुसार सर्वाधिक योग्य व्यक्ति पदोन्नति के लिए चुना जाता है। यह सिद्धान्त योग्य शिक्षकों को नौकरी में बराबर बनाए रखने में सहायता देता है, शिक्षकों को मेहनत व लगन से कार्य करने के लिए

प्रोत्साहन देता है। इस भांति शिक्षकों मे नैतिक बल तथा कौशल बनाए रखने मे सहायता पहुँचाता है।

परन्तु वरिष्ठता की तरह योग्यता का विचार सरलता से समझा नही जा सकता है। स्पष्ट है कि योग्यता का विचार बडा जटिल है। योग्यता के निर्धारण मे, सम्भव है, दो अधिकारी भी समान राय न रख पाएँ। योग्यता के अन्तर्गत बुद्धि, व्यक्तित्व, व्यवहारकुशलता, नेतृत्वक्षमता, चारित्रिक दृढता आदि अनेक बातें आ जाती हैं। ये तथा इसी प्रकार के अन्य गुण प्रकृतिदत्त होते हैं तथा किसी भी शिक्षक के साथ एक या अन्य कारण से पक्षपात भी हो सकता है। फलत साथी शिक्षकों मे जलन व द्वेष का जन्म हो सकता है। सभी पदोन्नति की योग्यताएँ रखने वाले शिक्षकों की योग्यता की जाच करने मे भी व्यावहारिक कठिनाइयाँ आती हैं। उम्मीदवार की योग्यता का निर्णय करने के लिए जो विभिन्न पद्धतिया हैं उनकी भी अपनी मर्यादाएँ हैं, उनको भी आलोचना से परे नही कहा जा सकता—उन पर भी विचार करना आवश्यक है।

योग्यता निर्धारण की कसौटी

1 लिखित परीक्षा
2 शिक्षा निदेशक का निजी निर्णय
3 सेवा योग्यताक्रम

लिखित परीक्षा के तीन प्रकार हो सकते हैं—(i) मुक्त प्रतियोगिता, इसमे कोई भी शिक्षक, जो योग्यताएँ व अनुभव पूरे करते हों, भाग ले सकता है। (ii) सीमित प्रतियोगिता, इसमे केवल उन्ही शिक्षकों को परीक्षा देने की अनुमति दी जा सकती है जो पहले से ही राजकीय सेवा मे हो, तथा (iii) उत्तीर्ण परीक्षा—इस प्रकार की परीक्षा म शिक्षकों को पदोन्नति के लिए केवल उत्तीर्ण होना आवश्यक है। इन तीन प्रकार की प्रतियोगिता परीक्षाओं के भी अपने अपने गुण-दोष हैं।

शिक्षा निदेशक का निजी निर्णय उनकी मनोदशा से प्रभावित (Sub jectivity) हो सकता है, क्योकि शिक्षा निदेशक हर शिक्षक के निकट सम्पर्क मे नही रहता है, ऐसी स्थिति म इस दोष से बचने के लिए पदोन्नति के लिए मण्डल बनाया जा सकता है। इस मण्डल को विभागीय पदोन्नति समिति (Departmental Promotion Committee) के नाम से जाना जा सकता है।

तीसरी विधि के अनुसार उम्मीदवार शिक्षक की योग्यता का मूल्यांकन उसके सेवा अभिलेख से किया जाता है। हर शिक्षक की सेवाओं का लिखित रिकार्ड रखा जाता है, उसमे उसके कार्यों का ब्योरा रहता है। ऐसे अभिलेख से पदोन्नति के समय शिक्षकों की योग्यता के निर्धारण म मूल्यवान सहायता मिलती है।

ऊपर दोनों सिद्धान्तों के पक्ष व विपक्ष में दिए गए तर्कों के आधार पर वरिष्ठता या योग्यता के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है। पदोन्नति के लिए वरिष्ठता के सिद्धान्त का साधारण अर्थ यही है कि सेवाकाल कितना लम्बा है ? जरा सा दूर हटकर यदि इस सिद्धान्त मे यह जोड दें कि जो शिक्षक पदोन्नति के योग्य हैं उनको वरिष्ठता के क्रम से पदोन्नति दे दी जाय या उनकी पदोन्नति के लिए विचार किया जाय। तथा जो अयोग्य हैं, उन्हे छोड दिया जाय, तो इसे वरिष्ठता सह योग्यता (Seniority Cum Merit) सिद्धान्त कह सकते हैं। इसी सिद्धान्त का एक रूप यह भी हो सकता है कि वरिष्ठता के आधार पर केवल अधीनस्थ सेवाओं के लिए विचार किया जाय जबकि उच्च पदो पर केवल योग्यता के अनुसार पदोन्नतियां दी जाएँ। सामान्यतया शिक्षक लोग इन बातों पर सहमत हो सकते हैं—

1 उच्च पदों पर केवल योग्यता के आधार पर ही पदोन्नतियां हों। इन पदों के लिए वरिष्ठता का विचार बिल्कुल छोड दिया जाना चाहिए।

2 मध्यम पदों पर पदोन्नति के समय योग्यता को निर्णायक तथा वरिष्ठता को गौण तत्त्व माना जाना चाहिए। और

3 अधीनस्थ पदों पर पदोन्नति के लिए वरिष्ठता को निश्चित रूप से अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए।

वरिष्ठता सिद्धान्त की इतनी आलोचना होने के बाद भी यह कहा जा सकता है कि आज भी व्यवहार में पदोन्नतियों के समय वरिष्ठता को ही अधिक महत्त्व दिया जाता है। व्यवहार में वरिष्ठता की उपेक्षा करना बडा कठिन होता है। आयु तथा वरिष्ठता की प्रतिष्ठा अब भी बनी हुई है। पदोन्नति का चाहे कोई सा वरिष्ठता या योग्यता सिद्धान्त हो उसके अनुसार सभी योग्यता प्राप्त शिक्षकों, उनके अनुभव तथा नूतन काम के सम्पादन करने की क्षमता पर विचार किया जाना चाहिए तथा इन सब गुणों का आंशिक रूप से निर्धारण पहले के सेवा अभिलेख से आंशिक रूप से निजी विशेषताओं द्वारा और आंशिक रूप से किसी न किसी प्रकार की परीक्षा द्वारा किया ही जाना चाहिए। ऐसा ही पदोन्नति का सिद्धान्त अधिकतम शिक्षकों को अधिकतम सन्तोष प्रदान कर सकेगा।

विभागीय पदोन्नति के समय अधिकारी तथा प्रत्याशियों के या सेवा दल शिक्षकों के मेरिट को भी ध्यान में रखते हैं। कई बार सभी स्तरों पर प्रत्याशियों को बिना वरिष्ठ होते हुए भी पदोन्नति दी जाती है। जहाँ तक इस सिद्धान्त का प्रश्न है सिद्धान्त उत्तम है क्योंकि इससे शिक्षकों को अपने विद्यालयों मे अच्छा कार्य करने के लिए प्रेरणा मिलती है। वे कक्षा शिक्षण मे सुधार करते हैं खेलों में रुचि लेते हैं अपना सामान्य व्यवहार समाज सम्मत मान्यताओं और परम्पराओं के

अनुकूल रखते हैं। वे हर सम्भव प्रयत्न करते हैं कि उनका अधिकारी उनका वार्षिक गापनीय प्रतिवेदन सर्वाधिक रूप से सर्वोत्कृष्ट प्रस्तुत करे। किन्तु इसके दूसरी ओर कुछ अकमण्य व काम को टालने की प्रकृति के तथाकथित शिक्षक, जो अपने कत्तव्य के प्रति उपेक्षाभाव रखते हैं, मेरिट के आधार पर तो कोई पदोन्नति प्राप्त कर नहीं सकते किन्तु वरिष्ठता का सम्बन्ध उन्हें पदोन्नति दिलाकर उच्च पद पर पहुँचा देता है।

प्रश्न यह है कि जिन लोगो की मेरिट के आधार पर पदोन्नतियाँ हुई हैं, क्या इन पदोन्नतियो से सभी शिक्षक सन्तुष्ट हैं? मेरिट के आधार पर पदोन्नतिया देने का मानदण्ड इतना स्पष्ट होना चाहिए कि यदि अमुक शिक्षक की मेरिट के आधार पर पदोन्नति नही हुई तो उस शिक्षक म क्या-क्या कमियाँ रही हैं। शिक्षा निदेशक कायालय से सुदूर स्थित डूगरपुर या बाडमर म बठे हुए शिक्षक इस बात से परिचित होने चाहिएँ कि मेरिट का मापदण्ड क्या है? यदि उनके साथी शिक्षक मेरिट के आधार पर पदोन्नत हुए हैं तो उनम क्या क्या विशेषताएँ रही हैं। इससे लाभ यह होगा कि यदि कोई शिक्षक स्वय को मेरिट के आधार पर आगे लाना चाहता है तो यह वाछित गुण या विशेषताए स्वय म विकसित करे।

मूल बात यह है कि केवल निदेशक महोदय या सचिव महोदय की राय ही मेरिट नहीं बननी चाहिए। इसके लिए उन शिक्षकों का पिछला परीक्षाफल भी एक आधार हो सकता है, पिछले पाँच वर्षों या इससे भी अधिक समय की अवधि मे रहे उस शिक्षक के प्रधानाध्यापको की राय भी ली जा सकती है और वतमान समय म जहाँ शिक्षण काय कर रहे हैं उस विद्यालय के विद्यार्थियो एव जन समाज की राय भी ली जा सकती है।

शिक्षण तकनीक और शिक्षण सम्बन्धी साहित्य के सृजन म उनका क्या योगदान रहा है, यह भी महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस भी मेरिट के विचार के समय नहीं भूलना चाहिए। देश की विभिन्न शक्षिक पत्र पत्रिकाओ म वे कितना लिखते पढते है तथा उनकी कितनी रुचि है और इन सब बातो के सिवाय यदि सम्भव हो तो मेरिट नात करने के लिए किन्ही उपयुक्त आधारो पर शिक्षा विभाग मे कायरत शिक्षको के लिए प्रतिस्पर्द्धा कोई परीक्षा की व्यवस्था की जा सकती। इस परीक्षा मे केवल वे ही शिक्षक भाग लें जो अपने आपको निश्चित हुए मानदण्ड के अनुसार *मेरिट के सूत्र पर पदोन्नति चाहते हो। उच्च शिक्षा निदेशक के सामान्य महा* विद्यालयो मे काम करने वाले कुछ व्याख्याताओ को मेरिट पे की समय-समय पर समाचार-पत्रो मे घोषणा की है। यह कदम स्वागत योग्य है। इसका प्रसार प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र म भी किया जाना चाहिए। उच्च शिक्षा निदेशक ने मेरिट पे एव सौ रुपया रखी है। निदेशक प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षा इस मेरिट

पे की दर भले ही पाँच रुपया ही रखे, पर अच्छा काम करने के लिए कुछ आकर्षण तो है। मेरिट के लिए प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाओं की व्यवस्था इंग्लैंड में काफी समय पहले से ही प्रचलित है।

एक विचार और है। जैसा कि जनसाधारण को ज्ञात है पुलिस तथा सेना में काम करने वाले कर्मचारियों को उनकी उल्लेखनीय सेवाओं के लिए पदक, पुरस्कार या मेरिट पे दी जाती रही है। किन्तु पदक, पुरस्कार या मेरिट पे प्राप्त करने के पश्चात् यदि कोई सैनिक या अधिकारी भविष्य में कोई अवांछनीय कार्य (यथा-रण क्षेत्र से भाग आना आदि) कर बैठते हैं तो उनका पदक, पुरस्कार या मेरिट पे तो रोक ही ली जाती है, साथ ही उनकी सेवा निवृत्ति पर पेन्शन भी बन्द करदी जाती है। क्या इस सिद्धान्त का पालन शिक्षा जगत में नहीं किया जा सकता? यदि एक बार किसी शिक्षक को पदक या 'मेरिट पे' स्वीकार की गई है और आगे चल कर उनका व्यवहार शिक्षकोचित नहीं रह पाता—यथा, गबन, भ्रष्टाचार या सरकारी सम्पत्ति के दुरुपयोग के मामले प्रकाश में आते हैं तो विभाग को ऐसे शिक्षक से दिए गए सम्मान, पदक, पुरस्कार तुरन्त वापस ले लेने चाहिएँ। इस भय से एक आदर्श एवं स्वस्थ परम्परा का वे पालन करेंगे अन्य लोगों के प्रेरणा स्रोत बन सकेंगे तथा विभाग द्वारा दिए गए पदक, पुरस्कार व सम्मान का भी इस प्रकार मूल्य रह सकेगा। ऐसी आशा की जा सकती है।

इस सम्बन्ध में शिक्षा आयोग (1964 66) की अनुशंसाओं पर भी ध्यान देना चाहिए—

"विशिष्ट विषयों के अध्यापकों या अतिरिक्त योग्यताओं के शिक्षकों को" कोठारी शिक्षा आयोग के अनुसार, "अग्रिम वेतन-वृद्धियों या विशेष भत्तों के रूप में प्रेरक दिए जा सकते हैं।'

'महाविद्यालयों में कार्य करने वाले कनिष्ठ व्याख्याताओं तथा उच्च माध्यमिक शालाओं में कार्य करने वाले समान योग्यता वाले शिक्षकों को समान वेतन दिया जाना चाहिए। उच्च माध्यमिक शालाओं में कार्यरत शिक्षक जब प्रशिक्षण प्राप्त करलें तो उनके प्रशिक्षण का सम्मान देने के लिए दो अग्रिम वेतन वृद्धियाँ दी जानी चाहिएँ प्रथम श्रेणी के स्नातक एवं अधिस्नातकों को भी अग्रिम वेतन वृद्धियां दी जाय। इसी भांति एम एड प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों को भी अधिक वेतन वृद्धियां दी जाय।"

10 से 15% योग्य प्रशिक्षित प्राथमिक शिक्षकों की पदोन्नति उच्च माध्यमिक विद्यालय के प्रधानाध्यापक या विद्यालय निरीक्षक/जिला शिक्षा अधिकारी के पदों पर की जानी चाहिए। इसी भाँति इतने ही प्रतिशत उच्च स्तर का कार्य करने वाले प्रशिक्षित स्नातकों को अधिस्नातकों की वेतन शृंखला दी जानी चाहिए।"

पर नये मशीनी युग के लिए कार्यकर्त्ता तैयार करेंगे। पर क्योंकि कम श्रमिक कम घंटे काम करेंगे ऐसी स्थिति में बच्चों को शाला में प्रतिदिन अधिक समय तक भी रोका जा सकेगा। वहाँ उन्हें अवकाश का उपयोग करना सिखाया जाएगा। यदि उद्देश्यों पर दृढ रहा जाए तो बच्चों को अधिक समय तक काम नहीं लगाया जाएगा तथा स्कूल मे अधिक रोका जाएगा। अधिक शिक्षा के प्रतिफलस्वरूप अधिक सम्पत्ति का उत्पादन होना है। अधिक व्यक्ति अवकाश बिताएँ तो इसके लिए जरूरी है कि या तो कुछ व्यक्ति अधिक काम करें या वे नीचा जीवन स्तर बितायें। यदि मनुष्य काम नही करेंगे तो पारिश्रमिक मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस कठिनाई से मुक्ति पाने के लिए अतिरिक्त सम्पदा का अधिक बुद्धिमत्ता से विनियोग करना होगा। इसके आगे एक विचार और है कि प्राकृतिक सम्पदा भी तो निश्चित होती है। वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग से उसी कच्चे सामान से अधिक उत्पादन हो सकता है।

अर्थतन्त्र के प्रकार

औद्योगिक अर्थतन्त्र की अपेक्षा कृषि अवस्था मे शैक्षिक मूल्य निम्न होते हैं। कृषि मे कठोर परिश्रम तथा लम्बे समय तक काम करना पडता है जिससे बच्चे अधिक समय तक स्कूल में नही पढ सकते। कृषि अवस्था में बचत भी अनिश्चित होती है। प्रारम्भ में कृषि एक कला थी, तथा पुस्तकीय ज्ञान की बहुत कम आवश्यकता थी, अब कृषि विज्ञान भी बन गई तथा अधिक समय स्कूलों मे पढना भी आवश्यक हो गया है। कृषि मे यन्त्रों का भी प्रयोग होने लगा है। यन्त्रों के प्रयोग से मनुष्य का स्थान गौण हो गया श्रम का विभाजन होने लगा—कुछ लोग प्रबन्धक बन गए तथा कुछ श्रमिक बन गए। इसी का प्रभाव शिक्षा मे भी दीखने लगा। दोनों को अलग अलग प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता हुई। श्रमिक दूसरों की मशीनों के पुर्जे मात्र बन गए। मशीनों पर काम करने के लिए श्रमिकों को प्रशिक्षण लेना आवश्यक हो गया। आजकल तो खेत, कारखाने सभी जगह मशीनों का प्रयोग होने लगा है। इसी भाँति प्रबंधकों के लिए भी वाणिज्य ज्ञान की शिक्षा आवश्यक हो गई, जिससे वे जान सकें कि कब क्या वस्तु बाजार में बेची व खरीदी जानी चाहिए। इस प्रकार मशीन युग के समाज को दो भागों मे बाटा जा सकता है—अवकाश प्राप्त तथा बिना अवकाश प्राप्त। अवकाश प्राप्त व्यक्ति धनी होते हैं विनोद करते हैं जीवन स्तर ऊँचा होता है बच्चे कम होते हैं, उन्हें उच्च व उच्च किस्म की शिक्षा दिलाते हैं, वे नई सभ्यता का निर्माण करते हैं। इसके विपरीत बिना अवकाश प्राप्त पेट भरने के लिए निरन्तर काम करते हैं, मनोरंजन के साधन प्राप्त नहीं होते जीवन स्तर नीचा होता है, बच्चे अधिक होते हैं, दरिद्र होते हैं बच्चों को अच्छी शिक्षा नही दिला सकते, उच्च शिक्षा तो दूर रही। इस प्रकार समाज सम्पन्न एवं विपन्न दो वर्गों मे बँट जाता है।

मयतन्त्र का शिक्षा पर प्रभाव

पिछले वर्षों मे शिक्षा पर व्यय निरन्तर बढ़ता रहा है। फिर भी शक्षिक वित्त की बडी समस्या बनी हुई है। आवश्यकता इस बात की है कि प्राप्त साधनो के अनुसार शिक्षा के लिए आवटन उचित प्रकार से हो। विशेषज्ञो की राय है कि वह उपयुक्त स्तर से नीचे ही रहा है। उदाहरणार्थ—शिक्षको के वेतन मान को लेकर राजनीतिज्ञो मे कई बार वाद विवाद होता है तथा वे इस निर्णय पर आते हैं कि वृद्धि की दर बहुत कम रही है जबकि वस्तुओ के मूल्य अधिक ऊँची दर से बढे हैं, जिससे शिक्षक उपभोक्ताओ के लिए मुद्रा की क्रय शक्ति कम हो गई है और यही कारण है कि कई अध्यापको का अध्यापन के सिवाय बचे हुए समय म ट्यूशन, लिपिक मुनीम टाइपिस्ट या कोई अन्य काम करना पडता है। जहाँ तक शैक्षणिक योग्यता का प्रश्न है अधिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति अन्य की तुलना म अधिक वेतन पाता है फिर भी जहाँ तक भारत का प्रश्न है वह अपनी सभी आवश्यकताएँ पूरी नही कर पाता, उसे सोच समझकर चलना पड़ता है।

आर्थिक सस्थाओ के धर्मनिरपेक्षता तत्त्व ने भी शिक्षा पर अत्यधिक प्रभाव डाला है। आज के समय म कार्पोरेशन यूनियन व सरकारो का प्रभाव बढा है। छोटे व्यापारी नौकरी के लिए निकल पडे—कुर्सी पर बठ कर काम करने वालो की सख्या कई गुनी बढ गई है। कार्यालयो मे लाल फीताशाही का बोलबाला हो गया है। बडे बडे एव सम्पन्न कॉर्पोरेशन्स ने जन-कल्याण हेतु कुछ राहत के काम किए हैं, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष मदद की है शिक्षा म जहा-तहा शोध भी करवाया है कुर्सी पर बठ कर काम करने वालो की एक नई जाति शहरो म रहने वालो की तयार हो गई है। इनमें कुछ लोग तो दक्ष श्रम करन वाले हाते हैं जो अपनी रुचि एव सामर्थ्य के अनुसार उच्च प्रशिक्षण प्राप्त किये हुए होते हैं।

व्यवसाय व शाला प्रणाली मे अन्तर्निभरता है। इससे व्यवसायियो म शिक्षा के प्रति रुचि अधिक बढी है। इससे शिक्षा सस्थाओ का वातावरण भी प्रभावित हुआ है, परन्तु व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था नही हो पा रही है। आज भी कई विद्यार्थी शिक्षा को जीविकोपार्जन का बीमा मानते हैं। सभी शिक्षित व्यक्तियो को जीविका नही मिलने स असतोष एव निराशा बढती है।

आज भी प्रशिक्षित शिक्षको की बडी कमी है जिससे विज्ञान व प्राविधिक शिक्षा का पूरा पूरा विकास नही हुआ है। तकनीकी के प्रशिक्षण के लिए सावजनिक रूप से विचार नही किया जा सकता। कुछ आलोचको का कहना है कि तकनीकी विकास हेतु मानवता की बलि दे दी जायगी यह वाछनीय नही है। कुछ लोगो का यह भी कहना है कि यत्रानिको का हम पूरा-पूरा उपयोग नही कर पा रहे है। इसका प्रमाण यह है कि कुछ सस्थाएँ असफल हाकर बन्द होती जा रही हैं।

शिक्षा का अर्थतन्त्र पर प्रभाव

शिक्षण से मानवीय साधनों का विकास होता है जो उत्पादन के मुख्य घटक हैं। इस प्रकार शिक्षा पर किया गया व्यय उपयोगी विनियोग है। शिक्षा व आर्थिक प्रगति मे कोई सम्बन्ध न हो, ऐसी बात नही है। शिक्षा व वयक्तिक या क्षेत्रीय उन्नति मे इसी प्रकार का सहसम्बन्ध है। कई देश संस्कृति के विकास की दृष्टि से बहुत आगे हैं। पर वही देश आर्थिक नेतृत्व नही कर सकते—शोधो से पता लगा है कि *प्रति व्यक्ति आय बढने से शिक्षा पर होने वाला सम्पूर्ण व्यय भी बढता है।* यद्यपि कुछ उद्योगपतियो का यह भी कहना है कि कुछ महत्त्वपूर्ण पदो पर निरक्षरता से भी कोई हानि नही है। फ्लोयड महोदय[1] के अनुसार 'सामान्यत अर्थतन्त्र से शिक्षा के स्तरो पर लाभ हो तथा यह भी सम्भव है कि किसी खास फर्म को कोई फायदा न हो यही कारण है कि शिक्षा को चालू रखने के लिए कई प्रकार के कर लगाये जाते हैं। किन्ही कम्पनियो का उत्पादन उच्चतम हो सकता है पर यह भी सम्भव है कि वह स्तर राष्ट्र क दृष्टिकोण से उच्चतम न हो। सामान्यत उच्चस्तर के अर्थतन्त्रो मे बाह्य बचतें होती हैं। शिक्षा के लाभ अप्रत्यक्ष है यही इस शक्षिक वित्त की सबसे बडी कमजोरी है। शिक्षा को सरक्षण देन के लिए कर लगाया जाता है।

हमारे प्राकृतिक साधनो तथा नागरिको के उनको उपभोग करने की प्रवत्ति पर भी बहुत कुछ निभर करता है। यदि उत्पादन अति तीव्र गति से किया जाता *जाता है तो कच्चा माल बाहर से मँगाना होगा।* *दूसरी ओर आशावादी विचारधारा* वाले कहते हैं कि मनुष्य विवेकशील प्राणी है इसीलिए प्राकृतिक सम्पदा का महत्त्व है और वह साधनो के बारे मे विवेकयुक्त भावी कायक्रम अपना सकता है। दूसरे अर्थशास्त्री उत्पादन के ह्रास नियम के आधार पर उत्पादन म नवीनता की बलि दे देते है। किसी भी विचारधारा पर दृढ रहा जाय, *शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण घटक है।* एव स्थिति म यह आवश्यक है कि नए साधनो की खोज की जाए तथा जाने हुए एव पुरान साधनो का अधिक याय सगत उपभोग किया जाय तथा दूसरी स्थिति म ऐसी नई विधियों की खोज की जाय जो ऐसे साधनो का, जो अब तक प्रयोग नही किए गए हैं प्रयोग कर सकें।

सर्वांगीण शिक्षा का उद्देश्य ही प्रखर बुद्धि की खोज, बालक की प्रकृति एव स्भाव, वशानुगत बुद्धि प्रवत्ति आदि गुणो का अधिकतम विकास है। बालक की योग्यताओ के उपयोग से बालक को व उसके परिवार का लाभ होता है। मोटे रूप से राष्ट्र लाभान्वित होता है। कई छात्र हायर सकण्डरी क बाद ही पढना बन्द कर देते हैं उनके सामने आर्थिक कठिनाइ हो सकती है, पर यदि वे आगे के पाठ्यक्रमो

1 Floyd J S Jr Effects of Taxation on Industrial Location U *North Caroline 1952 p* 155

के लिए उपयुक्त है तो आर्थिक बाधा गौण होनी चाहिए, उनका निवारण राष्ट्र का उत्तरदायित्व होना चाहिए, राष्ट्र को योग्य एवं जरूरतमंद छात्रों के लिए छात्रवृत्तियों, शिक्षावृत्तियों व शुल्क मुक्ति की व्यवस्था करना चाहिए जिससे प्रतिभा सम्पन्न बच्चे हर सम्भव विकास कर सकें। जनतन्त्रीय शिक्षा पद्धति के दर्शन के आधार पर बच्चों को न्यूनतम शैक्षणिक सुविधाएँ उपलब्ध की जा सकती हैं। न्यूनतम स्तर इस आधार पर तय होगा कि किस प्रकार के नागरिकों की जरूरत है। कई बच्चे उस न्यूनतम स्तर से आगे भी पढ़ेंगे, पर कोई उससे नीचे न रहेगा। इसी प्रकार सामान्य नागरिकों के लिए, शिक्षकों के लिए भोजन, वस्त्र व निवास में न्यूनतम स्तर की भी व्यवस्था की जा सकती है। इसके विपरीत कम योग्यता वाले छात्रों को प्रवेश देने से अपव्यय एव अवरोधन होता है क्योंकि वे आगे चलकर कम अङ्क पाने पर या अनुत्तीर्ण होने पर अध्ययन बन्द कर देते हैं।

राष्ट्रीय अर्थतन्त्र में शोध को उत्पादन के घटक के रूप में अब महत्त्व समझा जाने लगा है। अन्य देशों की तुलना में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में इस पर बहुत राशि व्यय की जाती है। यही कारण है कि वहाँ के आर्थिक विकास की दर बहुत ऊँची है। शोध पर किया गया व्यय सृजनात्मक विनियोग है, इससे नये उत्पादन होते हैं तथा नए उद्योग आरम्भ होते हैं तथा उत्पादन लागत कम आती है। शैक्षणिक शोध का सम्बन्ध अप्रत्यक्ष पर महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक है। नवीनीकरण का न केवल विकास के लिए ही महत्त्व है वरन वह आर्थिक महत्त्वपूर्ण घटक भी है। इससे बचत के विपरीत विनियोग में वृद्धि होती है जिससे व्यापारिक भेदों को मिटाया जा सकता है इससे उद्योगों में प्रतिस्पर्द्धा आती है जिससे बड़े उद्योग गतिशील रहते हैं तथा उपभोक्ता अधिक वस्तुएँ उपभोग करते हैं। कीमतें घटने से शोध व नवीनीकरण, कुछ अंशों में, मुद्रा प्रसार स्थिर रखते हैं।

आर्थिक नवीनीकरण प्राविधिक शिक्षा तक ही सीमित नहीं है। शिक्षा संस्थान व उद्योग संस्थान के बीच का गहरा सम्बन्ध कई रूपों में नवीनीकरण को प्रोत्साहन देता है। विश्वयुद्ध के बाद कॉलेजों में बिजनिस मेनेजमेंट, इण्डस्ट्रियल रिलेशन लेबर रिलेशन वाणिज्य शिक्षा तकनीकि शिक्षा को प्रोत्साहन दिया गया। इन पाठ्यक्रमों में प्रशिक्षित व्यक्ति शिक्षा व व्यवसाय दोनों का महत्त्व समझते हैं तथा सफलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं।

वितरण भी शिक्षा के प्रभाव से अछूता रहा हो, ऐसी बात नहीं है। आर्थिक असमानता की खाई को पाटने का प्रयत्न किया जा रहा है। आर्थिक असमानता मूलतः माँग व पूर्ति पर आधारित है। इस सम्बन्ध में सरकार एक महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकती है कि श्रमिकों को उसके मजदूर सघ के माध्यम से प्रत्यक्षतः अधिकाधिक क्रयशक्ति प्रदान करे। इससे आर्थिक असमानता को भरने में मदद मिलेगी भी

देखा गया है कि प्रत्यक्ष क्रयशक्ति देने से कई अवांछनीय आदतों का विकास हो सकता है, उदाहरणार्थ मद्यपान। इससे अच्छा यह होगा कि क्रयशक्ति के बजाय जरूरत की वस्तुओं का वितरण किया जाय। उत्पादन पर सीधा खर्च करने की अपेक्षा मनुष्यों के वेतन व मजदूरी बढ़ाई जाय, इससे उनकी आय में वृद्धि होगी, वे बच्चों को अच्छी शिक्षा दे सकेंगे, उनके जीवनस्तर में वृद्धि होगी, वे पौष्टिक वस्तुएँ भोजन में सम्मिलित करेंगे। उनकी जरूरतें बढ़ेंगी फलतः अधिक वस्तुओं की मांग होगी जिससे उत्पादन को प्रोत्साहन मिलेगा। उदार शिक्षा प्रायः अदक्ष श्रमिक ही तैयार करती है पर फिर भी वे जीवन स्तर में तो सुधार ला ही सकते हैं। निर्धनता व कम आय वालों का अध्ययन करने वालों ने यह सुझाया है कि शिक्षा के अवसरों में वृद्धि करना इसका उपचार है। निर्धनों के लिए चिकित्सा की भी निःशुल्क व्यवस्था की जा सकती है। पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में व्यक्ति को हक होता है कि वह जैसे चाहे स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी सम्पत्ति का उपभोग करे, उससे वह आर्थिक लाभ कमाए, वह मजदूरों को न्यूनातिन्यून मजदूरी देकर शेष बचत लाभ के रूप में अपने लिए रख लेता है। वह चाहे तो मजदूरों को नौकरी से बाहर निकाल सकता है, वह उनका हर प्रकार से शोषण करता है। अपना लाभ मद्देनजर रखकर बाजार में मांग वाली वस्तु को अधिकाधिक महँगी एवं अधिकाधिक मात्रा में बेचना चाहता है। जिस प्रकार अभिभावक अधिक लाभ के लिए बाजार में होड़ करते हैं, उसी भांति बच्चे भी शालाओं में होड़ करने लगते हैं परीक्षा में अंक पाने में पुरस्कार व सम्मान प्राप्त करने में प्रतिस्पर्द्धा करते हैं। पर आज बहुत कम स्कूल ऐसे हैं जो प्रेरणा के लिए स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा का विकास कर शिक्षा का स्तर सुधार सकें, शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त कर सकें। कई समृद्ध एवं विकसित देश होड़ से बचने का यत्न करते हैं, वे नैतिक एवं शैक्षिक आधार पर सहकारिता की प्रेरणा देते हैं। इस प्रकार होड़ की भावना का सामाजीकरण किया जा सकता है। एक अच्छी शिक्षा व्यवस्था वह होगी जो सुदूर चल कर भावी पीढ़ी के हित का भी ध्यान रखे।

शिक्षा प्रखर एवं दक्ष श्रम को गतिशील बनाकर समाज में समानता लाती है। कुछ क्षेत्रों में जन्मजात प्रखरता के आधार पर व्यक्ति सीमित होते हैं। कुछ लोग सम्पन्न न होने से उच्च शिक्षा प्राप्ति से वंचित रह जाते हैं वे अपनी इच्छानुसार व्यवसाय का चुनाव नहीं कर सकते, वे व्यावसायिक मर्यादाओं के कारण किसी व्यवसाय का वांछित स्तर बनाए नहीं रख सकते। अदक्ष श्रम की अपेक्षा दक्ष श्रम में अधिक प्रतिस्पर्द्धा होती है। दक्ष श्रमिकों में दक्ष श्रम की मात्रा एवं गुण में भी भिन्नता हो सकती है, फलतः उनके वेतन मानों में भी यह भिन्नता स्पष्ट दीख पड़ती है पर वरिष्ठता के आधार पर इस भिन्नता को भी पाटा जाता है।

शिक्षा उपभोग की वस्तु के समान ही उत्पादन का तत्त्व है। शिक्षा साध्य भी है तथा अन्य साध्यो की प्राप्ति के लिए साधन भी। इस दृष्टिकोण से जीवन म आनन्द प्राप्ति के लिए मूल्यो का चुनाव करना पडता है। कुछ नये मूल्य पुराने मूल्यो के साथ घुलमिल जाना चाहते है। मनुष्य व उसकी दुनिया को अधिकतम जानकारी मूल्य निर्णय मे मदद करती है। यह जानकारी पतृक साहित्य, इतिहास, दर्शन पर निर्भर करती है। आज की व्यापारिक सभ्यता उत्पादन तथा आनन्द के साधना पर बहुत प्रभाव डाल रही है—ऐसी स्थिति मे उदार शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। शिक्षा के साथ अवकाश का महत्त्व सयुक्त है, इससे उपभोग म वृद्धि होती है जो अन्त मे आर्थिक सम्पन्नता को जन्म देती है। कुर्सी पर बठे रहने वालो के अवकाश के असामाजिक उपभोग से खतरा भी उत्पन्न हो सकता है। आज के समय मे हस्त कला, सृजनात्मक उद्योग चित्रकला व सगीत मे रुचि का विकास हो रहा है। शालाओ मे अवकाश के सही उपयोग की शिक्षा पर ध्यान नही दिया जा रहा है।

शिक्षा से उपभोक्ता को यह भी ज्ञान मिलता है कि वह विज्ञापनो व अन्य बिक्री की विधियो से अपनी आमदनी को दृष्टि मे रखते हुए कितना प्रभावित हो। परिवार की आय की अधिकांश राशि गृहिणी खच करती है पर वह एक ही चीज की दजन भर किस्मो मे चुनाव नही कर सकती। कई उपभोक्ताओ को बाजारो की पूरी सूचनाएँ प्राप्त नहीं होती हैं। फलत वे अविवेक पूर्ण खच करते हैं तथा घटिया वस्तुएँ उपभोग करते हैं। उपभोग म अपव्यय का आकना कठिन है। स्वतन्त्र उत्पादन अर्थतन्त्र म व्यवसायी उन वस्तुओ का उत्पादन अधिक करेंगे जिनको उपभोक्ता अधिक उपभोग करते हैं एसा करके वे अपने शुद्ध लाभ को बढा लेते है। यदि माग पर बिना पूव अनुमान किए उत्पादन अधिक मात्रा म कर लिया जाता है तो माल बिना बिका पडा रह सकता है जिससे उद्योगपति को हानि होने की सभावना बढ जाती है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री फ्रासिस वाकर के अनुसार राष्ट्र के पास आज जो धन सम्पदा है, भविष्य के लिए उसका महत्त्व नगण्य है अपेक्षा इसके यह महत्त्वपूर्ण है कि उस राष्ट्र के निवासियों की उस प्राप्त धन सम्पदा के उपभोग की आदतें क्या हैं, जिनकी सन्तुष्टि के लिए वे इन साधनो का प्रयोग करते है।'[1]

---

1 Walker Francis A Political Economy 2nd Edition 1887 p 537

17 राजस्थान के शैक्षिक कार्यक्रमो मे नवाचार

जहा तक शिक्षा मे प्रयोगो का प्रश्न है, राजस्थान ने सदव ही पहल कर नेतृत्व प्रदान किया है। परीक्षा सुधार, व्यापक आन्तरिक मूल्याङ्कन योजना, पाठ्यपुस्तक रचना आदि सभी क्षेत्रो म सराहनीय प्रयास हुए है। शिक्षा के क्षेत्र मे लगभग पिछले एक दशक मे राजस्थान म जिन नये कायक्रमो पर काय हो रहा है, उनको इस प्रकार बताया जा सकता है—

क्रियाशील अवकाश

क्रियाशील अवकाश के क्षेत्र म चार बातो पर काय इस समय विद्यालय मे हो रहा है—

1 उपचारात्मक शिक्षण
2 पुस्तकालय एव वाचनालय सेवायें
3 खेलकूद, और
4 *कार्यानुभव तथा सीखो-कमाओ।*

(अ) उपचारात्मक शिक्षण

उद्देश्य—

—नदानिक परीक्षा की सहायता से विषय के विशिष्ठ क्षेत्रो म विद्यार्थिया की व्यक्तिगत कमजोरियाँ ज्ञात करना।

—उपचारात्मक शिक्षण से ऐसी कमजोरियो को दूर करना।

—वयक्तिक मागदशन से मधावी छात्रो का गुणात्मक सुधार।

—कमजोर विद्यार्थिया को अपनी शक्षिक सम्प्राप्ति सुधारने के लिए मदद करना।

—अपने विद्यालय के परीक्षाफल को सुधारने के लिए शिक्षकों तथा विद्यार्थियो को प्रोत्साहित करना।

—सामान्य शक्षिक स्तर मे सुधार करना, और

—ग्रीष्मावकाश का लाभप्रद उपयोग करना।

प्रखर बुद्धि, कठोर परिश्रम तथा अनुभवी शिक्षको द्वारा 10 से 15 छात्रो के दलो म चार घटे प्रतिदिन (सुबह शाम दो दो घटे) मुख्य मुख्य विषयो का शिक्षण।

(आ) पुस्तकालय एव वाचनालय सेवाएँ

उद्देश्य—

—विद्यार्थियो तथा शिक्षकों मे नियमित अध्ययन की आदत का विकास करना।

—कक्षा काय के पूरक के रूप मे पुस्तकालय का उपयोग करने की योग्यता का विकास

—विद्यार्थियों मे सन्दर्भ साहित्य का उपयोग करने का कौशल उत्पन्न करना।

—विद्यार्थियो को अपनी प्रतिमा को स्वय पहिचानने का अवसर प्रदान करना।

—कुशाग्र बुद्धि बालको को अपनी विशेष प्रतिभा के अनुसार विकसित होने का अवसर दना।

—प्रत्येक विद्यार्थी—आजीवन शिक्षा प्राप्त करने की लगन तथा तयारी के साथ—विद्यालय छोडें, ऐसी व्यवस्था करना।

—अवकाश के समय मे सत्साहित्य पढने को प्रेरित करना और

—पुस्तकालय एव वाचनालय की सेवाएँ ग्रामवासियो को प्रदान कर विद्यालय को सामुदायिक केन्द्र बनाना।

यदि उपलब्ध हो तो प्रशिक्षित पुस्तकालयाध्यक्ष अन्यथा अन्य सेवा भावी शिक्षक द्वारा पाच घण्टे प्रतिदिन (तीन घण्टे प्रात तथा दो घण्टे सन्ध्या) विद्यालय के पुस्तकालय म।

(इ) खलकूद

उद्देश्य—

—छात्रा का नियमित खलकूद की सुविधाएँ प्रदान करना।

—खेलकूद के माध्यम स उनको स्वस्थ रहना सिखाना।

—उनको विभिन्न खेलकूदो म भाग लेने को प्रोत्साहन देना।

—छात्रों म खिलाडी की भावना का विकास करना, और

—उनके अवकाश के समय का अधिक लाभप्रद उपयोग करना।

विद्यालय के क्रीडागणो म दो दो घटे सुबह शाम 40–40 **विद्यार्थियों** के दला म व्यायाम शिक्षक की देखरेख म विभिन्न खेलों का सचालन।

(ई) सीखो–कमाओ तथा कार्यानुभव

उद्देश्य—

—अध्ययन के साथ-साथ छात्रों को आर्थिक मदद देना।

—अवकाश के समय का फलदायी उपयोग करना।

—विद्यार्थियों में सहकार, स्वसहायता तथा अनुशासन की भावना का विकास करना।

—विद्यार्थियों में आत्मनिर्भरता तथा श्रम के प्रति आदर की भावना का विकास करना, तथा

—पढ़े-लिखे तथा बे पढ़े लिखे के बीच का अंतर मिटाना।

कार्यानुभव के उद्देश्य

(अ) राष्ट्रीय विकास की समस्या को हल करने के लिए

—शिक्षा को उत्पादकता तथा काम से सम्बद्ध करना

—सामाजिक सतुलन तथा राष्ट्रीय समन्वय का विकास

—आर्थिक विकास से सम्बद्ध मूल्यों का विकास करना, तथा

—आधुनिकीकरण को गति देना।

(आ) मानव ससाधनों के विकास हेतु

—सामान्य एवं तकनीकी ज्ञान सहित उपयोगी एवं शिक्षित व्यक्तियों की उपलब्धि

—विद्यार्थियों में श्रम के प्रति आदर मानव सुरक्षा कठोर परिश्रम करने की आदत, स्वनिर्भर, अनुशासन, उत्तरदायित्व की भावना, सहकार व प्रजातांत्रिक मूल्यों एवं नेतृत्व के गुणों का विकास

—साधन सम्पन्नता तथा श्लाघागुणों का विकास

—विद्यार्थियों की अतिरिक्त शक्ति तथा उत्साह का उपयोगी कार्यों में मार्गांतरीकरण करना।

(इ) काम की दुनियाँ तथा रोजगार से परिचित कराना

—भावी जीवन के लिए व्यावहारिक प्रशिक्षण

—व्यवसायों की विद्यार्थियों को जानकारी

—विज्ञान का उपयोग तथा उत्पादन प्रक्रिया से सम्बद्ध सूझ बूझ का विकास

(ई) सीखो–कमाओ योजना से छात्रों की आर्थिक मदद करना

योजना के दो चरण—

1 कार्यानुभव (सीखने की प्रक्रिया)

2 सीखो कमाओ

कार्यानुभवो की सख्या असीमित हो सकती है। हर स्थान के अपने कुछ उद्योग धंधे हो सकते हैं जिन्हें आसानी से कार्यानुभव के लिए चुना जा सकता है। इन कार्यों में लड़कियों की विशेष रुचि अथवा देहाती क्षेत्रों के स्कूलों की गतिविधियों पर भी ध्यान रखना चाहिए। नीचे कुछ कार्यानुभवों की सूची दी जा रही है जो केवल सुझाव के रूप म ही मानी जानी चाहिए।

प्राथमिक विद्यालयों मे

1 कागज काटना तथा कागज की वस्तुएँ बनाना
2 मिट्टी, पेपर मेशी तथा प्लास्टिक के खिलौने तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ बनाना
3 सिलाई, बुनाई तथा कसीदे का काम
4 शाक सब्जी उगाना
5 गत्ते से उपयोगी वस्तुएँ बनाना
6 चाक, मोमबत्ती, अगर बत्ती आदि वस्तुएँ बनाना
7 साबुन बनाना

उच्च प्राथमिक विद्यालयों मे

1 बैंत व प्लास्टिक के तारो से कुर्सी मेज आदि की बुनाई तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ बनाना
2 धातु के तारो से छींके, टोकरी, रैक, चाय की ट्रे आदि उपयोगी वस्तुएँ बनाना
3 बाँस का काम
4 तयार लकड़ी के टुकड़ो से उपयोगी वस्तुएँ बनाना
5 मिट्टी के प्याले, तश्तरियाँ, खिलौने आदि बनाना तथा पकाना
6 बुनाई सिलाई
7 रगाई
8 कृषि
9 चमड़े तथा रेगजीन का काम
10 फ्रेम वर्क
11 पुस्तकों पर पक्की जिल्द बनाना, फाइलें बनाना आदि।

माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक विद्यालयों म

1 काष्ठ कला
2 धातु का काम, वेल्डिंग तथा कलई सहित
3 सिलाई

4- आचार मुरब्बे आदि बनाना

5 खाना बनाना, वस्त्र धोना, रगाई, कसीदा निकालना डबल रोटी बनाना, केक बनाना

6 मिट्टी, चूने, सीमेण्ट की सहायता से दीवार चुनना, फर्श बनाना, छत बनाने के काम मे सहायता करना

7 खेतो मे काम करना

8 फैक्टरी अथवा कारखानो म काम करना

9 बिजली फिटिंग तथा मरम्मत

10 प्रसाधन सामग्री तयार करना

11 दरी, निवार, गलीचे, आसन, चटाई तथा वस्त्रो की बुनाई

12 *वस्त्रो को खोलना, सफाई करना तथा मरम्मत*

13 प्लास्टिक की उपयोगी वस्तुए तयार करना

14 चमडे व रेगजीन की वस्तुएं बनाना

15 सौन्दय प्रसाधन की वस्तुएं

16 लेमन स्क्वेश साँश आदि तयार करना

17 स्थानीय कारखाना तथा व्यापारियो के यहाँ प्रयुक्त होने वाली सामग्री तयार करना ।

साज-सामान, तकनीकी सहायता क्रय विक्रय, वित्त बनी हुई वस्तुओ की गुणात्मकता, हिसाब का अकेक्षण, लाभाश का अनुपात या प्रतिशत आदि सब बातों के लिए विभिन्न समितियाँ बनी हुई हैं तथा मागदशन एव सहायता के लिए लिखित मे व्यवस्था की गई है ।

कार्यानुभव के मागदशक सिद्धान्त

1 *योजना व्ययसाध्य न हो, विद्यालय के साधन तथा आवश्यकताओं को* ध्यान मे रख कर योजना बनाई जाय, स्थानीय साधना का लाभ उठाइए ।

2 कार्यानुभव शिक्षा पर नहीं, उत्पादन पर आधारित हो ।

3 कार्यानुभव का लाभाश काम करने वाला को प्राप्त होना चाहिए ।

4 कार्यानुभव स्वच्छिक प्रवृत्ति है ।

5 इस योजना के फलस्वरूप पाठय विषयो पर प्रतिकूल प्रभाव न पडे ।

6 काय की प्रकृति के अनुसार समय का आवटन एव विभाजन ।

7 औद्योगिक प्रशिक्षण सस्थान, बहु कला सस्थान आदि के विशेषज्ञो की सेवाओ का लाभ उठाया जाय ।

8 जब भी अवसर प्राप्त हो, तकनीकी साधनों का उपयोग सिखाया जाय। उदाहरणार्थ—गावों के विद्यालयों म भूमि न हो तो बालकों को स्थानीय किसानों के खेतों म कार्यानुभव के अवसर प्रदान किए जायँ।

9 बच्चे यदि चाहें तो उन्हे पतृक धंधा मे दक्षता प्रदान की जाय।

10 आवश्यकतानुसार श्रम के विशेषीकरण के आधार पर श्रम विभाजन हो सकता है।

11 किसी एक प्रक्रिया मे कौशल प्राप्त करना भी उत्पादन मे गति लाने के लिए आवश्यक है पर बालक समग्र वस्तु का निर्माण कर सकें, ऐसी व्यवस्था की जाए।

12 कोई भी कार्यानुभव स्वयं अपने आप मे पूर्ण हो।

(उ) प्रधानाध्यापक वाकपीठ

उद्देश्य—

—जिला शिक्षा अधिकारी तथा प्रधानाध्यापकों के बीच मधुर सम्बन्धों का विकास करना।

—शैक्षिक चिन्तन तथा प्रोन्नति के लिए तात्कालिक महत्व के विषयों पर पत्र-वाचन करवाना।

—विचारों, साधनों तथा अनुभवों का आदान प्रदान एक दूसरे को सही रूप मे समझना आदि के लिए सामान्य मच बनाना।

—साधनों का अधिकतम उपयोग कर कार्यों को प्रभावी रूप से सम्पन्न करवाना।

—समाचारों का तत्काल सम्प्रेषण।

—जिले की शिक्षा सम्बन्धी सामान्य कठिनाइयों का उच्चाधिकारियों को सम्प्रेषण।

—अभिभावक शिक्षक सहयोग को प्रभावी रूप देना और

—शैक्षिक प्रायोजनाएँ बनवा कर उनके अनुसार शोध कार्य करवाना।

स्वरूप—

1 जिले भर के एक स्तर के सस्था प्रधानों का एक सगठन।

2 कहीं कहीं महिलाओं व पुरुषों तथा शहरी एव देहाती क्षेत्रों म पृथक पृथक भी।

3 सहायता प्राप्त, सेवा नियुक्त प्रधानों के लिए भी ऐसे सगठनों की सदस्यता का खुला होना / न होना

4 प्राय ग्रीष्मावकाश मे व दशहरा अवकाश मे बठकों का आयोजन।

(क) शक्षिक अनुसधान वाकपीठ

उद्देश्य—

— जिले मे शक्षिक अनुसधान को नियोजित, कार्यान्वित, सगठित एव सयोजित करना।

—शक्षिक शोध कर्त्ताओ को समस्या चयन से लेकर उस पर काय करने, प्रतिवेदन लिखन, उपकरण-साधन जुटाने तथा अन्य तक्नीकी सहायता देना।

—शक्षिक शोध म सम्भावित दोहरेपन से बचना।

—शक्षिक शाध निष्कर्षों परिणामो का प्रचार प्रसार करना, जरूरतमद शोधकर्त्ताओ को इन्हे उपलब्ध करवाना।

— जिले भर के शक्षिक शोध कायकर्त्ताओ को सगठित करना उनके हितो की रक्षा, अभाव अभियोगो को अधिकारियो तक पहुँचाना।

—शिक्षा म अनुसधान काय के लिए रुचिशील शिक्षको को प्रोत्साहन देना श्रेष्ठ काय की प्रशसा-पुरस्कार, उनके शोध रिपोर्ताज को यदि सम्भव हो तो पत्र पत्रिकाओ में प्रकाशन के दृष्टिकोण से भिजवाना।

—शक्षिक अनुसधान कायकर्त्ताओ के लिए पत्र-पत्रिकाओं पुस्तको अनुसधान उपकरणो से युक्त समृद्ध पुस्तकालय की व्यवस्था करना।

सदस्यता—

जिले के सभी शिक्षाधिस्नातक (एम एड) उपाधि प्राप्त शिक्षकों के लिए इस वाक्पीठ की सदस्यता अनिवाय।

(ए) दलीय परिवीक्षण

उद्देश्य—

—दलीय परिवीक्षण से जिला शिक्षा अधिकारियो को अपने काय म मदद करना।

—प्रभावी परिवीक्षण की स्तरोन्नति के लिए कारगर साधन बनाना।

—दलीय परिवीक्षण के माध्यम से प्रधानाध्यापक को अधिक सक्षम तथा प्रभावशील बनाना।

—शिक्षक तथा परिवीक्षणकर्त्ता या निरीक्षक के बीच सुमधुर सम्बन्धो का विकास करना।

—विषय के निष्णात शिक्षको का मागदशन प्राप्त होना।

—विषय शिक्षको के अनुभवो का आदान प्रदान होना।

—निरीक्षण या परिवीक्षण म बारीकी आना, विद्यालय की दनिक गतिविधियो तथा काय कलापो की जानकारी मिलना।

—विद्यालय की सहगामी प्रवृत्तियो तथा अध्ययन काय के बीच सतुलित तालमेल बिठाना ।

दल की रचना—

परिवीक्षण अधिकारी के साथ तीन विषय शिक्षण के निष्णात-समाज विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान तथा भाषाओ के एक एक शिक्षक शिक्षको सहित दल का एक से अधिक दिन तक की आवश्यकतानुसार विद्यालय म रह कर निरीक्षण । परिवाक्षण करना ।

(ए) विद्यालय सगम

उद्देश्य—

—एक दूसरे को सही रूप मे समझना, साधनों का आदान प्रदान, पारस्परिक सहयोग का विकास जिससे साधना का अधिकतम उपयोग ।

—किसी विषय के निष्णात शिक्षक की सेवाएँ अन्य शिक्षको को प्राप्त करवाना ।

—समय पर काम पूरा करवाना—शिक्षको के अहम् को सन्तुष्ट कर उनका कार्यों के साथ तादात्म्य स्थापित करना ।

—विभिन्न सहगामी प्रवृत्तियो की कम से कम व्यय के साथ सामूहिक रूप से (विज्ञान मे प्रायोगिक काय खेलकूद प्रतियोगिता, वाणिज्य में टकण काय आदि) सुसचालन ।

—जिला शिक्षा अधिकारी को सम्भव स्तर तक काय एव उत्तरदायित्व से मुक्त कर सहायता करना ।

—विद्यालय सगम के उद्देश्यो को ध्यान में रखत हुए इनके कार्यों का यों बताया जा सकता है—

1 विद्यालय सगम की वार्षिक योजना बनाना, उसका सत्रीय योजनाओ म बाँटना ।

2 सगम के प्रत्यक विद्यालय की विद्यालय याजना बनवाना तथा उसको सत्रा मे विभाजित करवाना ।

3 शक्षिक उन्नयन के कायक्रम—

(अ) विषय समितियो के माध्यम से विषयाध्यापन मे सुधार ।

(आ) प्रदशन पाठो का आयोजन ।

(इ) परीक्षा पद्धति म सुधार—यदि जिले में समान परीक्षा योजन कायशील न हो तो सम्मिलित परीक्षा का आयोजन करना ।

) विद्यालयों के प्रधान द्वारा परिवीक्षण ।

Floyd J S (Jr) Effects of Taxation on Industrial Location U North Coroline, 1952

Francis, Walker A Political Economy, 2nd Edition, 1887

Frenseth, Jane Supervision as leadership New York Row, Peterson and Company, 1961

Kirpal Prem (Dr)A Decade of Education in India, Delhi The Indian Book Co , 1968

Mukherjee, S N (Dr) (Ed) Administration of Education in India Baroda Acharya Book Depot 1962

Mukherjee, S N (Dr) Secondary School Administration Baroda Acharya Book Depot 1964

Mukherjee S N (Dr) Educational Administration (Theory and Practice) Baroda Acharya Book Depot 1970

Ranganathan Education for Leisure Delhi Indian Adult Education Association 1948

Report of the Secondery Education Commission (1952-53) Ministry of Education, Government of India New Delhi The Manager of Publications Division Sixth Reprint June 1965

Report of Health Survey and Planning Committee Ministry of Health, Government of India New Delhi The Manager of Publications Division 1962

Report of the Kothari Education Commission (1964-66) Ministry of Education Government of India New Delhi The Manager of Publications Division 1966

Samuel A Kirk Teaching Reading to SLow Learning Children Boston Houghton Miffilin Co 1941

Schonell Fred J and Schonell Eleanor I Backwardness in the Basic Subjects London Oliver and Boyd 1965

Skinner, Charles E (Ed) Educational Psychology New Delhi Practice Hall of India (Pvt) Ltd 1964

Smith Alfgred, G Communication and Status University of Oregon The Centre for the Advanced Study of Educational Administration, 1966 (a)

Smith, Alfred G Culture and Communication New York : Holt Rinehart and Winston, 1966 (b)

Thorndike and Hegan Measurement and Evaluation in Psychology and Education New York John Wiley and Sons Inc , 1962

UNESCO Manpower Aspects of Educational Planning Publication No 75 Paris 7c Place De Fontenoy 1968

Woolf and Woolf Remedial Reading-Teaching and Treatment London Mc Graw Hill Book Co Inc, 1957

आ पत्रिकाएँ

हिन्दी

जन शिक्षण (शैक्षिक हिन्दी मासिक) उदयपुर विद्या भवन सोसायटी।
वर्ष 36, अंक 11, नवम्बर 1968
वर्ष 38, अंक 4, अप्रेल 1970
वर्ष 39, अंक 4, अप्रेल 1971

तिवाडी, पुरुषोत्तमलाल शिक्षा प्रशासन तथा सामान्य प्रशासन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय, बीकानेर के शिक्षा सर्वाय एवं प्रस्तार सेवा विभाग द्वारा फरवरी 1975 में आयोजित कार्य संगोष्ठी में पठित आलेख।

धर्मयुग साप्ताहिक बम्बई, 26 जनवरी, 1969।

नया शिक्षक (त्रैमासिक) शिक्षा विभाग राजस्थान, बीकानेर वर्ष 12 अंक 2 अक्तू दिस 1969

वायती जिमनालाल (डा) शिक्षा प्रशासन का परिवर्तनशील सम्प्रत्यय, (अंग्रेजी) प्रशासनिका, जयपुर एच सी एम स्टेट इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन वर्ष 3 अंक 4 अक्तू दिस 1974

योजना (हिन्दी पाक्षिक) योजना भवन, नई दिल्ली 11 अगस्त 1968

साहित्य परिचय शिक्षा समस्या विशेषांक आगरा विनोद पुस्तक मन्दिर 1969

अंग्रेजी

Education Monthly Lucknow Education Office Vol XLVI No 10 Oct 1970

Journal of Education (Board) Quarterly Board of Secondary Education Rajasthan Ajmer
Vol II No 4 Oct Dec 1970
Vol VI No 4 Oct Dec 1970

Technical Manpower (Various Issues of) New Delhi Council of Scientific and Industrial Research 1965 66 67

The Hindustan Times New Delhi 10 Feb 1969